मई १९६८ वर्ष ८--अंक ५ रजि० क्र० ६६८६/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

भारत-संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी का जुलाई अंक

डा॰ मुखर्जी अंक

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि शाश्वतवाणी डा॰श्यामाप्रसाद मुखर्जी के जन्म दिवस के अवसर पर विशेषांक निकाल रही है। इस अंक में डा॰ मुखर्जी के जीवन, व्यक्तित्व एवं विचार-दर्शन पर लेख प्रकाशित किये जाएंगे। इस अंक के लेखक होंगे—श्री बलराज मधोक (भूतपूर्व प्रधान भारतीय जनसंघ) श्री मुखर्जी के सहबन्दी श्री गुरुदत्त एवं श्री टेकचन्द शर्मा, प्रोफेसर महावीर (दिल्ली प्रदेश जनसंघ के प्रधान) इस अंक में अन्य लेख पूर्ववत् रहेंगे।

अंक का मूल्य ५० पैसे रहेगा तथा वार्षिक ग्राहकों को डाक से पूर्ववत् भेजा जायगा।

एजेन्टों से निवेदन—

इस अंक की अतिरिक्त प्रतियाँ उतनी ही छापी जाएँगी, जितनी प्रतियों का हमें आर्डर प्राप्त होगा। अतः एजेन्टों से निवेदन है कि वे अपनी आवश्यकतानुसार इस अंक का आर्डर भेज कर अपनी प्रतियाँ सुरक्षित करा लें। एजेन्टों को इस अंक पर विशेष कमीशन दी जायगी। कमीशन के विषय में पत्र-व्यवहार करें।

शाश्वत वाणी

३०/९० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।

ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

●

परामर्शदाता
पं० भगवद्दत्त
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

●

सम्पादक
अशोक कौशिक

●

सम्पादकीय कार्यालय
७-एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

●

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

●

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

अराजकता और प्रजातन्त्र

"अराजकता" देश में व्यापक एवं भयंकर रूप ग्रहण करती हुई प्रतीत हो रही है। इसके मूल में दो प्रकार की प्रवृत्तियां हैं। एक प्रकार की प्रवृत्ति तो अपने देश के साथ संबंध रखती है और दूसरी प्रकार की संसार में व्यापक प्रतीत होती है।

संसार में व्यापक प्रवृत्तियों का मूल कारण प्रजातन्त्र प्रपंच है। इस प्रजातन्त्र के अतिरिक्त गांधीवाद की प्रवृत्ति अपने देश की विशेषता है। गाँधीवाद प्रजातन्त्रवाद से पृथक है। प्रजातंत्र का अभिप्राय, जैसा कि अधिकांश प्रजातंत्रात्मक देशोंमें समझा जाता है, जन साधारण की इच्छा के अनुसार समाज के समस्त कार्यों का संचालन है। यह ऐसी भावना है जो न तो युक्तियुक्त है और न ही व्यवहारिक।

प्रजातंत्रवाद में अयुक्ति-संगत बात यह है कि अनधिकारी व्यक्ति को अधिकार प्राप्त हो जाता है। वे लोग जो विषय की जटिलताओं को नहीं समझते, वे उन विषयों में भी अपनी प्रभावी सम्मति देते हैं। उदाहरणार्थ राज्य-कार्य एक अति जटिल

विषय है। इस कार्य में देश की सुरक्षा और देश के शासन को चलाने की व्यवस्था जैसे कार्य भी सम्मिलित हैं। अब तो राज्य-कार्यों के अन्तर्गत और भी बहुत से विकास-कार्य सम्मिलित कर लिये गये हैं। उदाहरण के रूप में उद्योग-धन्धों का चलाना, धर्म-व्यवस्था देना, न्याय की परिभाषा एवं संचालन की व्यवस्था करना, समाज में व्यक्तिगत व्यवहार पर नियन्त्रण रखना। ये सब राज्य-कार्य मान लिये गये हैं। यह कार्य इतने जटिल और इतने व्यापक हैं कि इनका निर्णय और इनका संचालन जन-साधारण की सम्मति से नहीं किया जा सकता, परन्तु प्रजातंत्रात्मक पद्धति में यह करना होता है। यदि राज्य कर्मचारी कुछ ऐसी बात करे जो सर्वसाधारण के बहुमत के अनुकूल न हो तो कर्मचारी दण्डनीय हो जाता है और उसको विवश किया जा सकता है कि वह बहुमत का मान करे। अभी अभी अमेरिका के राष्ट्रपति जौनसन का यह निर्णय कि वह वियतनाम के युद्ध से अमेरिका को पृथक कर देगा और स्वयं राष्ट्रपति के भावी निर्वाचन में प्रत्याशी नहीं बनेगा, इस बात का प्रमाण है कि प्रजातंत्रात्मक देश में सर्वसाधारण व्यक्ति कैसे बड़े से बड़े पदाधिकारी को पदच्युत कर सकता है।

संसार में समाजवाद और साम्यवाद का आज जो बोलबाला है वह भी इसी प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का परिणाम ही है। जन साधारण अयोग्य और असमर्थ होता है। उसमें अपनी महत्वाकाँक्षाओं को प्राप्त करने की सामर्थ्य नहीं होती। इस कारण उसको सामर्थ्यवान, योग्य और धन-सम्पदा से सम्पन्न व्यक्ति अनधिकार चेष्टा करते हुये दिखायी देने लगते हैं। बिना इस बात को जाने कि सामर्थ्यवान और सम्पन्न व्यक्ति अपनी योग्यता और कुशलता से ऐसे हुए हैं अथवा अधर्माचरण से, वह इनको पद से च्युत और सम्पन्नता से विपन्नता की स्थिति में लाने का यत्न करने लगता है अथवा उन की सम्पन्नता और कुशलता का लाभ अयोग्यों में बाँट देने का यत्न करने लगता है। यही साम्यवाद है और यही समाजवाद भी है। यह प्रजातंत्रात्मक पद्धति की उपज है।

इस समय संसार में पूर्ण उथल-पुथल समाजवाद और साम्यवाद के कारण हो रही है और ये दोनों, जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्रजातन्त्रात्मकवाद का परिणाम हैं। यदि भूमण्डल के देशों पर एक विहँगम दृष्टि डाली जाये तो यही दृष्टिगोचर होगा कि किसी भी देश में शान्ति नहीं है। साम्यवादी देशों में तो शाँति मृत्यु का सा रूप धारण किये हुये है। किन्तु उस मृत्यु की सी अवस्था में भी कुछ चिनगारियाँ उठती रहती हैं जो जनता में

जीवन के लक्षण प्रकट करती हैं।

विश्व में अशान्ति और अराजकता का मूल कारण प्रजातंत्र है। जिसका अर्थ है अनधिकारी एवं अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में उत्तरदायित्वपूर्ण अधिकार सौंप देना।

भारतवर्ष में तो इस प्रजातंत्रवाद के साथ साथ एक अन्य अयुक्ति-संगत और अव्यवहारिक वाद की सृष्टि हुई है। यह वाद गांधीवाद के नाम से विख्यात है। गाँधीवाद का अर्थ, जैसा कि हम अपने पिछले मास के लेख में बता चुके हैं, सब के साथ सहिष्णुता और सहयोग प्राप्त करना है। यहां एक भूल की जा रही है। वह है सहिष्णुता और सबका सहयोग के अर्थों का मिथ्या मूल्यांकन। वैसे तो भगवद्गीता में समत्व-बुद्धि को योगी का लक्षण बताया है। समत्व-बुद्धि के अर्थ हैं कि सबको बराबर समझना। मित्र और अमित्र, दोनों को ही।

समत्व-बुद्धि का अभिप्राय यह है कि यदि मित्र दुष्ट, दुराचारी और व्यभिचारी हो तो उसे वैसा ही समझना चाहिये जैसे अमित्र दुष्ट और दुराचारी को समझा जाता है। इसी प्रकार किसी भले, ईमानदार और धर्मानुयायी अमित्र को भी वैसा ही समझना चाहिये जैसा भले, ईमानदार और धर्मात्मा मित्र को समझा जाता है। परन्तु गाँधीवाद में इस बात का विचार किये बिना ही कि कोई धर्मात्मा है अथवा अधर्मी, दुराचारी है अथवा सदाचारी, सब के साथ मित्रता का सा ही व्यवहार किया जाता है। यह समत्व-बुद्धि का अर्थ नहीं है। फिर इसका परिणाम तो और भी भयंकर हुआ है।

गाँधीजी अपने जीवन-काल में उन लोगों से मित्रता का व्यवहार करते रहे और उनको अपना सहयोगी मानते रहे जो देश-द्रोही थे, धर्म-कर्म को व्यर्थ की बात मानते थे और सदाचार तथा सहिष्णुता को दुर्बलता समझते थे। जवाहर लाल तो डंके की चोट कहा करते थे कि वह कम्युनिस्ट हैं, समाजवादी हैं। राष्ट्रवाद को वह गली-सड़ी वस्तु मानते थे। उनके लिये धर्म एक मजहब मात्र था। हिन्दु नाम से वे घृणा करते थे और गांधी स्वयमेव सत्य और धर्म की कूक लगाते हुये, ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति प्रकट करते हुये, अपने आपको हिन्दू, हिन्दुस्तानी और एक ज्ञानवान, चेतन-शक्ति मानते हुये, जवाहर लाल को न केवल सीने से लगाये रहे, वरंच अपने सार्वजनिक कार्यों में भी उसे उन्होंने अपने सिर पर बैठाये रखा।

परिणाम स्वरूप कैरों, पटनायक, मालवीय और मेनन सदृश स्वार्थी,

तानाशाह और ठगी मनोवृत्ति वाले व्यक्तियों का देश के शासन में प्रभुत्व रहा। शेख अब्दुल्ला की तरह देश का विभाजन करने की माँग करने वाले, लोक-मत को न्याय की परिभाषा मानने वाले, तथा असत्यवादिता, चरित्र-हीनता और अनैतिकता को धर्म और न्याय मानने वाले व्यक्ति प्रगतिशील एवं देश का उद्धार करने वाले माने जाने लगे।

परिणामस्वरूप विगत बीस वर्ष के काँग्रेस शासन काल में देश अराजकता-रूपी ज्वालामुखी के मुख पर आकर खड़ा हो गया है।

पूर्व से लेकर पश्चिम तक तथा दक्षिण से लेकर उत्तर तक देश में कोई भी स्थान ऐसा नहीं रहा, जहाँ नित्य झगड़े, दंगे, फसाद, कर्महीनता उग्र रूप धारण न किये हुए हो।

बंगाल में जो अन्धेरगर्दी एवं अराजकता पिछले वर्ष की अधिकांश अवधि में फैली रही, आज भी उसे स्मरण करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। नक्सलबाड़ी और कलकत्ता में छीना-झपटी और उस कुकृत्य में तत्कालीन मन्त्रियों और पुलिस अधिकारियों का सहयोग विस्मरण नहीं किया जा सकता।

कश्मीर में कश्मीरी पण्डितों की लड़कियों का अपहरण करना और इस अन्याय का विरोध करने पर उनपर लाठी और गोलियों की वर्षा करना और फिर अदालत में मुकदमा होने पर अपराधियों को अदालत में उपस्थित न करना, अराजकता की पराकाष्ठा ही माननी होगी। मेरठ, रांची, इलाहाबाद इत्यादि स्थानों पर साम्प्रदायिक झगड़े होना और इन झगड़ों के मूल कारण का पता न पा सकना देश में अव्यवस्था और अन्याय के साम्राज्य का सूचक है।

असम प्रदेश में तो स्थिति सर्वथा असहनीय हो गई है। साधारण सा मत-भेद होने पर झगड़ा आरम्भ हो जाता है और फिर हत्यायें और अग्निकाण्ड होने लगते हैं। पुलिस लाठी और गोली चलाती है। कई मारे जाते हैं, परन्तु झगड़े के मूल तक न तो पुलिस पहुँच पाती है और न ही पहुँचना चाहती है। उसका परिणाम यह है कि पूर्ण असम राज्य में आग लगी हुई है।

सन् १९६६, अगस्त के महीने में डिब्रूगढ़ में ऐसी शोचनीय घटनायें हुईं कि विद्रोह को शांत करने के लिये सेना बुलानी पड़ी। पिछली जनवरी में तेजपुर और शिलांग में विद्यार्थियों ने पुलिस पर आक्रमण कर दिया और कई जानें गईं। गोलाघाट के एक रेस्टोराँ में एक बिल पर झगड़ा हुआ और बढ़ते-बढ़ते बलवा हो गया। पिछले अक्टूबर के महीने में फुटबाल के छः खिलाड़ियों के पेट में छुरे घोंप दिये गये, किन्तु कारण आज तक पता नहीं। पिछले स

तंत्रता दिवस को गोहाटी में अकारण उन सब लोगों पर आक्रमण कर दिया गया जो बाहर के राज्यों से आकर अपना जीविकोपार्जन कर रहे थे। पिछले कुछ दिन से करीमगंज और सुखिया में एक विशेष प्रकार का झगड़ा आरम्भ हो गया है जिसको साम्प्रदायिक झगड़ा कहा जा सकता है।

पूर्ण देश में, दो बड़े सम्प्रदायों में, तना-तनी व्यापक रूप में विद्यमान है। इस तना-तनी में ऐतिहासिक कारण हैं। इस पर भी यह सिद्ध है कि इस तना-तनी में कुछ सामयिक कारण भी प्रभावी हो रहे हैं।

इनके अतिरिक्त नागा और मिज़ो कबीले वालों का झगड़ा कई वर्षों से चल रहा है और उसका अन्त कहीं दिखाई नहीं देता।

इस समय बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा में राष्ट्रपति शासन है। अर्थात् वहाँ पर प्रजातन्त्रात्मक राज्य असफल रहा है। मध्य प्रदेश और गुजरात में भी अव्यवस्था है और कच्छ के सत्याग्रह की धूमधाम है।

यह तो सिद्ध हो गया है कि बंगाल और असम में कम्युनिस्टों का एक अंग दंगे, फसाद और विद्रोह करने पर उतारू हो रहा है। किन्तु संसद में जब यह माँग की गयी कि कम्युनिस्टों के इस अंग को असंवैधानिक घोषित कर इस पर प्रतिबंध लगाया जाये तो इस माँग का विरोध जहाँ और लोगों ने किया वहाँ जनसंघ सदृश राष्ट्रवादिता का दम भरने वालों ने भी किया।

जब शेख अब्दुल्ला बन्दी था तो लोक-सभा के दो सौ से अधिक सदस्यों ने उसको मुक्त कर देने की माँग पर हस्ताक्षर किये थे और उन हस्ताक्षर करने वालों में अब्दुल्ला को कश्मीर में धाँधली का विरोध करने वाले जनसंघ के सदस्य भी थे।

अब शेख अब्दुल्ला के असंवैधानिक एवं विद्रोहात्मक भाषणों को सुनकर वही लोग जो उसको मुक्त कराने में अग्रणी थे, वे अब उसको पुनः पकड़ कर बन्दी बनाने की माँग करने लगे हैं।

यह घोर अराजकता के लक्षण हैं। इस अराजकता का मूल कारण, मूर्खों द्वारा निर्वाचित मूर्ख सदस्यों का संसद में विराजमान होता है।

इस समस्त अव्यवस्था और अराजकता से निकलने का उपाय क्या हो? यह एक प्रश्न है। अगले मास इस विषय पर हम अपने विचार लिखने का यत्न करेंगे।

समाचार समीक्षा

○

काले और गोरे

इस मास में अमरीका में एक हत्या हुई है, जिसने संसार-भर में एक भूकम्प-सा उत्पन्न कर दिया है। अमरीका में तो, अनेकों ही नगरों में विद्रोह और अग्नि-काण्ड हुए हैं।

हुत था नीग्रो जाति का एक मार्टिन लूथर किंग। मारने वाले का अभी तक पता नहीं चला। हत्या का उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि लूथर किंग ने कुछ दिन पूर्व यह चुनौती दी थी कि यदि अमुक तारीख तक अमरीका के नीग्रो जाति के प्रति भेद-भाव निःशेष नहीं हुआ तो व्यापक आन्दोलन किया जायेगा। इस चुनौती को निस्तेज करने के लिए सम्भवतः किसी मूर्ख ने यह हत्या कर दी है।

मार्टिन लूथर का यह आन्दोलन व्याख्यानों, जलूसों अथवा समाचार पत्रों में लेख लिखने तक सीमित नहीं था। यह तो चल ही रहा था। इन सबसे अतिरिक्त भी कुछ करने का उसका विचार था। किसी मूर्ख ने इस आन्दोलन को रोकने के लिये इस आन्दोलन के नेता की हत्या कर दी।

काले और गोरे की समस्या संसार में बहुत ही नवीन है। हमारा अभिप्राय है कि एक सहस्र वर्ष से पुरानी नहीं। सब प्राचीन जातियों में काले और गोरे की समस्या दिखाई नहीं देती। आर्य, युनानी, मिश्री, काल्डियन, फोनीशियन आदि जातियों में देश-देश में रहने वालों में भेद तो रहा है। विजेता और विजितों में भी भेद-भाव दिखाई देता था, परन्तु किसी की खाल का रंग काला है अथवा गोरा, तब भेद-भाव का कारण नहीं था।

आर्य जाति में तो देशी-विदेशी का प्रश्न भी रहीं रहा, न ही रंग भेद का प्रश्न था। आर्यों के प्रायः अवतार श्याम वर्ण रहे हैं। आर्यों में भेद-भाव का मुख्य कारण आचरण, जिसे धर्म भी कहा जाता है, माना जाता रहा है। विष्णु श्याम वर्ण का था। हिरण्यकशिपु गौरवर्णीय था। लक्ष्मी दैत्यों की लड़की थी और गौरवर्णीय थी। राम और कृष्ण श्याम वर्ण के थे। आज भी

हिन्दू राम और कृष्ण को उनकी खाल के रंग के लिए नहीं, वरं उनकी धम परायणता के लिए पूजा करते हैं।

यह ठीक है कि हिन्दुओं में छूआछूत की प्रथा चल पड़ी है, परन्तु यह प्रथा रंग के भेद-भाव की प्रतीक नहीं। रंग का भेद-भाव संसार को युरोप की देन है।

हम हिन्दुओं और भारतीयों के लिए समस्या काले और गोरे की नहीं। यह समस्या युरोप की कुछ जातियों ने उत्पन्न की है। और यह अब युरोप वालों को खा जाने वाली है। भारत की समस्या है धर्म और अधर्म के विषय में मतभेद की।

संसार में कभी ऐसे विषय मानव समाज के समक्ष आ जाते हैं कि उनको सुलझाने के लिए महापुरुष अपने जीवन की बाज़ी लगा देते हैं। यह नहीं कि उनका पक्ष सदा सत्य ही हो। कभी वे अधर्म पर भी डटे होते हैं, परन्तु इस पर भी वे ईमानदारी से डटे होते हैं और उनकी हत्या हो जाती है। ईमानदारी के कारण मनुष्य महान् तो कहा जाता है, परन्तु ईमानदार होने से वह सत्य और धर्म के पक्ष में होगा ही, यह कहा नहीं जा सकता। अतः ईमानदारी का उद्देश्य धर्मयुक्त भी होना चाहिए। किसी बात के धर्म-युक्त होने की कसौटी न तो किसी के अपने पक्ष पर डटा रहना है और न ही उसके अपने पक्ष में अधिक लोगों का हो-हल्ला करना है।

पक्ष धर्म का हो, साथ ही उसको स्वीकार कराने के लिए प्रेरणा और विचार प्रसार ही साधन हों, तब ही ईमानदारी मानी जानी चाहिए। प्रायः हत्यायें तब होती हैं, जब सत्य अथवा असत्य, धर्मयुक्त अथवा अधर्मयुक्त बात को स्वीकार कराने के लिए बल का प्रयोग किया जाता है।

बल कई प्रकार का होता है। यह बन्दूक तलवार का हो सकता है, यह बहुसंख्यक जनसमूह का दूसरों को भय दिखाने का भी हो सकता है। आजकल बल प्रयोग का एक अन्य उपाय भी निकला है। कुछ सक्रिय लोग एकत्र हो, दूसरों के दैनिक कार्यों में बाधा डाल कर, उनको बात मानने पर विवश कर देते हैं। इस प्रकार के उपायों में हड़तालें, अनशन, घेराव और सत्याग्रह के अन्य रूप हैं। ये सबके सब दूसरे लोगों को, जो उक्त प्रकार से कार्य करने वालों की बात नहीं मान रहे होते, विवश कर बात मनाने के लिए ही होते हैं।

जब भी कुछ लोग, भले ही वे अधिक संख्या में हों, अपने विचार को स्वीकार कराने के लिये बल का प्रयोग करेंगे, ऐसी हत्यायें होने की सम्भावना बनी रहेगी। गांधीजी हों अथवा मार्टिन लूथर हों, बल प्रयोग करने वालों के साथ

बल प्रयोग होता रहेगा । कौन बल, कितना ठीक है, इसकी विवेचना का प्रश्न तो पीछे ही आता है । गरमी से गरमी उत्पन्न होती है ।

इसका यह अर्थ नहीं कि हम हत्या करने वालों के काम को क्षम्य मानते हैं । हम हत्या को उतना ही निन्दनीय मानते हैं, जितना उत्पीड़न (coersion) को । यह उत्पीड़न बन्दूक तलवार से हो, बहुसंख्यक को हिंसा का भय दिखाकर हो, अथवा भूख हड़ताल, सत्याग्रह तथा घेराव इत्यादि से नित्य के कामों में बाधा डाल कर विवश करने से हो ।

यदि किसी कारखाने के कर्मचारी हड़ताल कर, अन-शन कर अथवा घेराव कर मालिक को विवश करना अपना अधिकार मानते हैं, तो मालिक भी, यदि वह सामर्थ्यवान हो, हिंसा करने का अधिकार रखता है । न तो मजदूर की बात अन-शन इत्यादि से धर्मानुसार सिद्ध हो सकती है, न ही मालिक की गोली चला देने की बात ।

समस्या का सुझाव दूसरों को विवश करना अथवा हत्या करना नहीं, वरं उस कानून अथवा सरकार में संशोधन करना है जो किसी अन्याय को जारी रखता हुआ प्रतीत होता है ।

यह काम कठिन अवश्य है, परन्तु जब कोई मनुष्य सत्याग्रह, भूख हड़ताल तथा घेरावों इत्यादि से दूसरे को विवश करे और अपनी बात मनाए तो उसे यह भी समझ लेना चाहिए कि दूसरा सन्तोष और धैर्य की मूर्ति बना नहीं भी रह सकता ।

आज एक और भी विचार उत्पन्न हो गया है । भूख हड़ताल, सत्याग्रह कानून भंग इत्यादि बातें विचार प्रसार के उपाय माने जाने लगे हैं । भारत की लोकसभा में इसका बहुत प्रयोग हो रहा है । हम इस प्रकार के उपायों को मानव-कल्याण के हित में नहीं मानते । ये उपाय विचार परिवर्तन करने में सक्षम नहीं होते, वरं इनसे मनोद्गारों को भड़काया ही जा सकता है । भावनाओं को उभारना लोगों को बुद्धि प्रयोग में प्रोत्साहन देना नहीं, वरं बुद्धि को मंद करना है ।

हत्यायें पाप हैं । साथ ही बंदूक तलवार से अथवा किसी अन्य प्रकार से किसी को भी विवश कराकर कोई काम कराना कम पाप नहीं । दोनों उपाय अधर्म हैं ।

वेदों में सरस्वत्यादि शब्द

○

श्री सचदेव

(गत मास की पत्रिका में "प्राचीन आर्यों का भूला इतिहास" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हो चुका है। उक्त लेख के लेखक ने इतिहास की अनेक पुस्तकों का प्रणयन किया है। इतिहास-वेत्ताओं में उनका नाम भी है। प्रस्तुत लेख के सुविज्ञ लेखक ने उनके एक शब्द की व्याख्या पर शंका व्यक्त की है और उसपर अपना दृष्टिकोण एवं व्याख्या भी स्पष्ट कर दी है। आशा है पाठक इसका भली-भांति मनन करेंगे। वर्तमान इतिहासकारों से भी हम प्रार्थना करेंगे कि इस प्रकार वे शब्दों के अर्थों का अनर्थ न कर इतिहास की विकृत व्याख्या के पाप से मुक्त हों और पाठक को दिग्भ्रान्त होने से भी बचावें।)

—सम्पादक

वेदों में सरस्वती, सिन्धु इत्यादि शब्द आये हैं। इन शब्दों से पाश्चात्य विद्वान और उनके अनुयायी भारतीय विद्वान वेदों में तत्कालीन भूगोल और फिर उससे तत्कालीन इतिहास का अनुमान लगाने लगते हैं।

'शाश्वत वाणी' के ऐप्रिल मास के अंक में एक ऐसे ही विद्वान का एक लेख 'प्राचीन आर्यों का भूला इतिहास' के शीर्षक से छपा है। उस विद्वान ने भी यही बात की है। तुरन्त सरस्वती और सिन्धु का नाम पढ़कर उनको नदियाँ स्वीकार कर भूगोल और इतिहास की कल्पना करना आरम्भ कर दिया। हमारा ऐसे महानुभवों से निवेदन है कि वे पहले सरस्वती, सिन्धु शब्दों के अर्थों पर विचार करें। तब आगे की कल्पना के विषय में लिखें।

पाश्चात्य विद्वान तो अपने उद्देश्य-विशेष से भारतीय परम्पराओं को मानेंगे नहीं, परन्तु भारतीयों की मति को क्या हो गया है कि वे बिना विचारे, बिना अपने पूर्वजों के मत को जाने और स्वयं बिना किसी प्रकार का भी अध्ययन किये युरोपियन विद्वानों की परिपाटी पर चल पड़ते हैं ?

हम आज सरस्वती शब्द के विषय में अपना मत लिखना चाहते हैं।

सरस्वती शब्द की निरुक्त में व्याख्या की गई है। यह सर्व विदित है कि निरुक्त वेदार्थों को प्रकट करने के लिये रचा हुआ ग्रन्थ है और यह सायण इत्यादि भाष्यों से प्राचीन है। अतः यास्काचार्य के मत की अवहेलना कर सायण तथा मैक्समूलर इत्यादि के भाष्यों को मान्यता नहीं दी जा सकती।

हमारा यह मत है कि जो-जो लेख एवं भाष्य बौद्ध काल के उपरान्त भारत में लिखे गये अथवा जिन-जिन ग्रन्थों के अर्थ अंग्रेजों के भारत में राज्य स्थापना के उपरान्त युरोपीय विद्वानों ने लिखे हैं, वे संदिग्ध हैं। उनमें राजनीतिक उद्देश्यों की गंध आती है। बौद्ध प्रभाव के उपरान्त कुछ कहे जाने वाले आर्य विद्वानों ने वैदिक ग्रन्थों पर टीकायें और भाष्य लिखे हैं। परन्तु हमारा दृढ़ मत है और इसे प्रमाणों से सिद्ध भी किया जा सकता है कि इन विद्वानों पर बौद्ध मीमांसा का प्रबल प्रभाव पड़ा हुआ है। यह बात शंकराचार्य के वेदान्तवाद से प्रकट होती है और यही बात अधिकाँश वर्त्तमान भारतीय विश्वविद्यालयों में पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी विद्वानों से सिद्ध की जा सकती है।

यास्काचार्य निरुक्त में सरस्वती के विषय में लिखते हुए कहते हैं:—

वाङ्नामान्युत्तराणि सप्तपंचाशत्। वाक्कस्मात्। वचेः। तत्र सरस्वतीत्येतस्य नदीवद् देवतावच्च निगमा भवन्ति। तद्यद् देवतावदुपरिष्टात्तद् व्याख्यास्यामः। अथैतन्नदीवत् ॥२३॥

निरुक्त—२।२३,

इसके अर्थ हैं:—वाङ्मय के उत्तर भाग में वाक् शब्द के सत्तावन रूप कहे गये हैं। उनमें सरस्वती एक है। सरस्वती का प्रयोग देवतावत् और नदीवत् आया है। देवतावत् प्रयोग की आगे चलकर व्याख्या करेंगे। अब नदीवत् प्रयोग के विषय में लिखते हैं।

अतः यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि वाक् जो वच् धातु से निकला है कैसे नदी का वाचक हो सकता है। निरुक्त में तो यह लिखा है कि इन सत्तावन वाक् अर्थवाचक शब्दों में सरस्वती है। तब यह शब्द पृथ्वीतल पर बहने वाली जल की नदी नहीं हो सकता।

खेद की बात यह है कि वेदार्थ स्पष्ट करने वाली यास्काचार्य की इस बात को एकदम भूल कर ये तथाकथित विद्वान वेदों में भूगोल और मानव इतिहास का आविष्कार अथवा अन्वेषण करने लगे हैं।

एक बात यहाँ और ध्यान देने योग्य है। जहाँ सरस्वती शब्द का वेदों में उल्लेख आया है, वहाँ इसके दो प्रकार के प्रयोगों का उल्लेख किया

है। देवतावत् तथा नदीवत् अर्थात् नदी और देवता नहीं वरन् नदी की भांति अथवा देवता की भांति।

क्या इससे यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि जो नदीवत् है, वह नदो नहीं होगी।

उदाहरण के रूप में नदी बहती है। और जो एक धारा में बहने वाले पदार्थ हैं उनको नदीवत् कहा जा सकता है अथवा नहीं ?

जो लोग वाणी के प्रभाव को जानते हैं, वे यह जानते हैं कि यह हृदयों को विदीर्ण करने की सामर्थ्य रखती है। यह तरंगों की भांति विचारों के धारा को प्रवाहित कर सकती है। यह पत्थर के सामान बड़े-बड़े मूढ़ों को बहा कर (निरुत्तर कर) उखाड़ कर ले जा सकती है।

यही बात निरुक्त में उद्धरित वेदमन्त्र में लिखी है। वेद मन्त्र इस प्रकार है:—

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभः।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभि ॥

ऋ...६। ६१ २।

इस मन्त्र का देवता सरस्वती है। अर्थात् इस मन्त्र में सरस्वती का उल्लेख है। यह सरस्वती उन अर्थों में ही लेनी चाहिये जिन अर्थों में यास्काचार्य ने (२।२३) में लिखा है। यहाँ सरस्वती का उल्लेख नदीवत् है। अभिप्राय यह कि सरस्वती जो नदी की भांति बहने वाली है। साथ ही सरस्वती को सत्तावान वाक् वाचक शब्दों में इसी (२-२३) वचन में लिखा है।

अभिप्राय यह है कि सरस्वती जिसका उल्लेख (६-६१-२ में) आया है वह वाक् का एक रूप है जो नदी की भांति बहती है। वत् शब्द से यह स्पष्ट है कि जो नदी नहीं है। वाक् वाचक शब्द पृथ्वी पर बहने वाली नदी नहीं हो सकती।

इस वेद मन्त्र का अर्थ यास्काचार्य इस प्रकार करते हैं:—

इयं शुष्मैः शोषणैः। शुष्ममिति बलनाम। शोषयतीति सतः। बिसं बिस्यतेर्भेदनकर्मणः। वृद्धिकर्मणो वा। सानु समुच्छ्रितं भवति। समुन्नुन्नमिति वा। महद्भिरूर्मिभिः। पारावतघ्नीं पारावारघातिनीम्। पारं परं भवति। अवारमवरम्। अवनाय सुप्रवृत्ताभिः (शोभनाभिः) स्तुतिभिः सरस्वतीं (नदीं) कर्मभिः परिचरेम।

हमारा यह मत है कि उक्त अर्थों से यही प्रकट होता है कि यहाँ उस वाणी का उल्लेख है जो क्रान्ति उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखती है। जो सब

विघ्न, बाधाओं को पार कर विरोधी पक्ष वालों के मत को ऐसे तोड़ती-फोड़ती हुई चली जाती है जैसे एक नदी पर्वत-शिखरों को गिराती हुई, अपने भी किनारों को फोड़ तटों को प्लावित करती हुई चली जाती है।

यास्काचार्य द्वारा दिये इस मन्त्र के अर्थों में सरस्वती का एक गुण आया है 'शोषयतीति सतः।' यह सुखा देती है। भला कौन सी पार्थिव नदी गीला नहीं करती और सुखाती है ?

यह सरस्वती भी नदी की भाँति विघ्न बाधाओं (पहाड़, शिखरों) को तोड़ती जाती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि सरस्वती वाणी जब-धारा-प्रवाह बहती है तो विपक्षियों की युक्तियों को सुखाती (खण्डन करती) जाती है। उनकी बेतुकी बातों को खण्डित करती जाती है और जिस-जिसको कर्णगोचर होती है उसके हृदय को ज्ञान से प्लावित (पारावारघातिनीम् पारं परं भवति) करती जाती है। साथ ही यह इतनी प्रबल है कि सुदृढ़ से सुदृढ़ युक्ति का कमल-नाभ की भाँति उखाड़ती चली जाती है।

एक अति सुन्दर और अर्थयुक्त अलंकार बाँधा गया है।

यहाँ हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस भूमण्डल की बहुत सी वस्तुओं के नाम वेद शब्दों से रखे गये हैं न कि वेदों में उन वस्तुओं का उल्लेख आया है। देखिये, मनु अपनी स्मृति में क्या लिखते हैं—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवाऽऽदौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ।।२१।।

मनु०—१।२१,

आदि काल में ही वेदों के शब्दों से सब पदार्थों और कर्मों के नाम पृथक् पृथक् कर रखे गये थे।

अतएव वेद में सरस्वती शब्द तो पहले ही आया था, परन्तु मनुष्यों ने सरस्वती के अभिप्राय को वेदों से समझकर, उनके अनुसार भूमण्डल की एक नदी का नाम रख दिया।

हमारा भारतीय विद्वानों से अनुरोध है कि वे युरोपीय संस्कृत भाषा के ज्ञाता, परन्तु वेदार्थों से अनभिज्ञ लेखकों की वार्त्ता का अन्धाधुन्ध अनुकरण करना छोड़, स्वतन्त्र रूप से अगाध ज्ञान के भण्डार भारतीय वाङ्मय का अध्ययन करें।

उक्त मंत्र (ऋ० ६-६१-१२) का अर्थ एक विद्वान श्री जयदेव शर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ इस प्रकार करते हैं :

जैसे नदी (बिसखाःइव) कमल के मूल उखाड़ने के समान (उर्मिभः-

तविषेभिः) बलवान तरंगों से (गिरीणाँ सानु अरुजत्) पर्वतों के चट्टानों को तोड़ डालती है और जैसे विद्युत (शुष्मेभिः) बलयुक्त प्रहारों से (गिरीणाँ-मानु) पर्वतों के शिखरों को तोड़ती-फोड़ती है, वैसे (इयं) यह (सरस्वतीम्) सरस्वती वाणी (शुष्मेभिः) बलयुक्त (तविषेभिः) प्रहारों से (गिरीणाँसानु) अरुजत् पर्वतों को शिखरों को तोड़ती फोड़ती है। उस (पारावतघ्नी) परब्रह्म-स्वरूप वाली, वाणी ज्ञान से प्लावित कर देती है। उसको (सुवृक्तिभिः) उत्तम पापशोधक (धीतिभिः) स्वाध्याय कर अभिप्राय सुन, मननकर (आवि-वासेम) अच्छी प्रकार सेवन करें।

विद्वान भाष्यकार ने हमारे मत एवं यास्काचार्य के मत का बहुत सुन्द-रता से प्रतिपादन किया है।

नदी शब्द भी वेदों में आया है, परन्तु वहाँ उसका पृथ्वी पर बहने वाली जलमयी नदी से अभिप्राय नहीं।

मैक्डानल्ड ने (Vedic Reader P.xx) लिखा है—

Among the terristrial dieties are certain rivers that are personified and invoked in the R. V. Thus the Sindhu (Indus) is celeberated as a goddess in one hymn......

(निरुक्तम् भाष्य संहितम, पं० भगवद्दत्त लिखित पृ०—१२९ से)

यह हम मैक्डानल्ड की धूर्त्तता प्रकट करने के लिये लिख रहे हैं। एक ही श्वास में वह कहता है कि वेद में लिखित कुछ नदियाँ अन्तरिक्ष की नदियाँ हैं और उसी स्वर में वह सिन्धु के अर्थ इण्डस (Indus) कर देता है। इन महापण्डित से पूछा जाये कि (Indus) और पन्जाब (शतद्रु) अन्तरिक्ष में कहाँ से आ गयीं?

यह बात इसी प्रकार प्रतीत होती है जैसे एक हिन्दुस्तानी अति महा-पण्डित ने Shaksperes का अनुवाद शेख पीर कर दिया और उसे ईरान के किसी रहने वाले की सन्तान बता दिया।

नदी के अर्थ 'बहने वाली' है। ये विद्युत तरगे, प्रकाश किरणें और शब्द तरंगे भी हो सकती हैं और ये अन्तरिक्ष में रहती हैं।

ऋग्वेद का एक मन्त्र है:

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा वि राजति॥

ऋ—१-३-१२,

इस मन्त्र का देवता (विषय) भी सरस्वती है। इसके अर्थ निरुक्त में इस प्रकार किये हैं—महदर्णः सरस्वती प्रचेतयति प्रज्ञापयति। केतुना कर्मणा प्रज्ञया वा। इमानि च सर्वाणि प्रज्ञानान्यभिविराजति। वागर्थेषु विधीयते।

तस्मान्माध्यमिकां वाचं मन्यन्ते ।

वाक् । व्याख्याता । तस्या एषा भवति ।। ११-२७,

इसका अर्थ इस प्रकार है:—

बहुत बड़ा समुद्र का होना सरस्वती (प्रचेतयति प्रज्ञापयति) संकेत करती है और प्रकट करती है, केतुना (नेतृत्व से) कर्मणा (अपने कर्मों अर्थात् प्रभावों से) प्रज्ञया (ज्ञानसे)। ये सब गुणों से यह (सरस्वती वाणी) जानी जाती है। वाणी के अर्थों में लेना चाहिये। इसे माध्यम (क्षेत्र) की वाणी मानना चाहिये।

इस उद्धरण से भी यही अर्थ निकल आया कि सरस्वती वाक् की अर्थ वाचक है। यह माध्यमक क्षेत्र (अन्तरिक्ष) में विराजमान है। वहाँ एक समुद्र है। कैसा समुद्र है? इसका अभिप्राय मनु ने और अनेकानेक अन्य शास्त्रों में बताया है। मनु लिखते हैं:—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। मनु—१-१०,

आपः को नारा कहते हैं। कारण यह कि आपः (परमात्मा) से पैदा होता है।

परमात्मा से कौन सा आपः पैदा होता है?

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।

अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु बीजमवासृजत ।। मनु०—१-८,

उस परमात्मा ने अनेक प्रकार की सृष्टि करने की इच्छा से ध्यान कर सबसे पहले आपः की ही सृष्टि की और उसमें शक्ति रूप बीज डाला।

यहाँ आपः को नारा और परमात्मा को नारायण कहा है। अर्थात् आपः सागर की भाँति है।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।

ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ।। ऋ०-वे०—१०। १९०,

इसी अर्णवः का उल्लेख (मनु०-१-१०) नारा में किया गया है। इसी का उल्लेख (१-३-१२) में अर्णः से किया गया है।

भारतीय लेखकों से, जो अपने को कुछ भी बुद्धिमान मानते हैं हमारा निवेदन है कि वे युरोपीय विद्वानों का अन्धानुकरण छोड़ अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए, उनके दुराग्रह के प्रत्याख्यान में अपनी शक्ति का सदुपयोग करें।

●

इतिहास में भारतीय परम्परायें

○

श्री गुरुदत

(वर्तमान इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास की जो छीछालेदर की हुई है, उसका भान अब होता जा रहा है और उसके परिष्कार के लिए भी कतिपय विद्वान प्रयत्नरत हैं। हमारे विद्वान लेखक भी इस दिशा में अपनी सामर्थ्यानुसार प्रयत्न कर रहे हैं और उनका परिणाम भी प्रकट होता जाता है। प्रस्तुत विषय पर उन्होंने एक ग्रन्थ की रचना भी की है, जिसका इतिहास जगत में स्वागत हुआ है। 'शाश्वत वाणी' में इस विषय पर उनके शृंखलाबद्ध लेख प्रकाशित हो रहे हैं। उसी शृंखला की यह चौथी कड़ी है। —सम्पादक

अपने पूर्व लेखों में हमने बताया है कि मूल प्रकृति से महत् अथवा आपः बना।

यहां इतना और समझ लेना चाहिये कि मूल प्रकृति का स्वरूप कणाकार है अथवा यह विभु है। विभु का अभिप्राय एक रस, एक ही पदार्थ है।

शास्त्र में इस स्वरूप को "तमोभूतम्, अप्रज्ञातम्, अलक्षणम्, अप्रतर्क्यम्, अविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः" (मनु०—१-५) लिखा है।

इन नकारात्मक लक्षणों वाली मूल प्रकृति में यह बताना कि यह कणाकार है अथवा एक रस, एक समान बिना कण के है, एक अति दुस्तर कार्य है।

सांख्य का एक सूत्र है:—

परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम् ॥ (सा०—१-७६)

इसका अर्थ करते हुए यह कहा जाता है कि प्रकृति सीमित, दूसरों से पृथक की हुई, जिसकी सीमाएं हों, इत्यादि सब पदार्थों का उत्पादन कारण नहीं हो सकती। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि प्रकृति विभु है। हमारा

विचार है कि इस सूत्र का यह अर्थ नहीं। परिच्छिन्न का अर्थ विलियम मोनियर इस प्रकार करते हैं ;

परिच्छिन्न—cut off, divided, detached, confined, limited circumscribed.

इन सब अर्थों में केवल divided एक शब्द ऐसा है जिससे यह प्रकट होता है कि परिच्छिन्न के अर्थ विभक्त के हो सकते हैं। परन्तु जब दूसरे शब्दों को देखते हैं तो पता चलेगा divided के अर्थ अपने आप में विभक्त के नहीं, वरं दूसरों से पृथक किए हुए के हैं। (Divided from others)। दूसरों से पृथक अर्थात् दूसरों से कटा हुआ मानना पड़ेगा। परिच्छिन्न के दूसरे अर्थ भी यही प्रकट करते हैं।

अतः सांख्य के उक्त सूत्र से यह सिद्ध नहीं होता कि प्रकृति विभु है। यद्यपि इससे यह भी सिद्ध नहीं होता कि यह कणों में है। परन्तु विचार करने पर प्रकृति कणों में ही प्रतीत होती है। ऐटम में जैसा कि हम पिछले लेख में बता चुके हैं, तीन कण हैं। इन कणों (particles) को electron, proton और neutron कहते हैं। किसी विभु पदार्थ के भिन्न-भिन्न गुणों वाले टुकड़े नहीं हो सकते।

सांख्य दर्शन यह मान चुका है :

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः,

सा०—(१-६१)

प्रकृति के तीन अंश तो माने हैं। सत्त्व, रजस और तमस्। ऐसा मानने से प्रकृति विभु नहीं हो सकती। जहाँ जहाँ भी शास्त्र में इसे विभु कहा है वहाँ इसे इस कारण और इस दृष्टि से कहा है कि प्रकृति के ये (सत्त्व, रजस्, तमस्) सन्तुलित संयोग परिच्छिन्न (सर्व व्यापक) हैं। प्रकृति circumscribed नहीं है। प्रकृति स्वयं किसी से पृथक की हुई नहीं, परन्तु प्रकृति के भीतर सत्त्व, रजस्, तमस् के सन्तुलित संयोग हैं।

इसको यदि साधारण भाषा में लिखने का यत्न करें तो यह इस प्रकार होगा कि प्रकृति की सीमाएं ब्रह्माण्ड की सीमाएं हैं। ब्रह्माण्ड असीम है। इस कारण प्रकृति भी असीम है। इसकी सीमा नहीं। यह किसी घेरे में नहीं। परन्तु स्वयं कणों (particles) के रूप में है। प्रत्येक कण में तीनों सत्त्व, रजस् और तमस् सन्तुलित अवस्था में हैं।

अतएव विद्वानों की यह कल्पना है कि अनन्त ब्रह्माण्ड में प्रकृति कणों (particles) के रूप में विद्यमान है। प्रत्येक कण में तीन गुण सन्तुलित अव-

स्था में हैं ।

वास्तव में इस कल्पना से यह सिद्ध होता है कि सत्त्व, रजस् और तमस् परमाणु हैं । इनका विभाजन कहीं नहीं लिखा ।

होता यह है कि ये परमाणु प्रकृति के मूल रूप में तीन तीन मिल कर एक कण बनाते हैं । ये कण पूर्ण ब्रह्माण्ड, जो असीम है, में व्याप्त हैं ।

अतः परमाणु हैं सत्त्व रजस्, तमस् । ये तीन प्रकार के हैं और इनमें अन्तर यह है कि······

···प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ॥ सा०-१-१२८,

ये गुण जिन्हें परमाणु माना जा सकता है अपने धर्मों में भिन्नता के कारण असन्तुलित हो जाते हैं । जब सन्तुलन टूटता है तो यह चराचर जगत् बन जाता है ।

सन्तुलन टूटने पर महत् अथवा आपः बनता है । इससे असन्तुलित परमाणुओं के एक अति विशाल समूह में सृष्टि रचना आरम्भ होती है । असन्तुलित परमाणुओं के विशाल समूह को समुद्र की संज्ञा दी है ।

शास्त्र मानता है कि परमाणुओं का सन्तुलन परमात्मा की इच्छा से टूटता है और इनके जोड़-तोड़ होने से जगत के अनेकानेक पदार्थों की रचना भी परमात्मा की इच्छा से होने लगती है । शास्त्र लिखता है···

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥९॥

मनु—१—८, ९,

विविध प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से उस (परमात्मा) ने सब से पहले आपः की सृष्टि की । तब वह (आपः) सहस्रों सूर्यों के समान प्रकाश वाला अण्डे के रूप में हो गया । उसमें स्वयं परमात्मा प्रकट हुआ । परमात्मा के इस स्वरूप को ब्रह्मा का नाम दिया है ।

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।
स्वयमेवाऽऽत्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥१२॥
ताभ्याँ स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे ।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां च शाश्वतम् ॥१३॥

मनु०—१-१२।१३

परमात्मा इस अण्डे में कार्य करने लगा । उसने जो कार्य किया उसमें

उसे परिवत्सर लग गया। जब कार्य समाप्त हुआ तो वह अण्डा दो भागों में विभक्त हुआ।

अण्डे के दो भाग हुए। एक दिव(देवगण) बना और दूसरा पृथिवी बनी। देव गण का अर्थ है वे देवता जो अन्तरिक्ष में विराजमान हैं। इन्द्र, वरुण, मरुत इत्यादि। पृथिवी का अर्थ है चन्द्र, पृथिवी, नक्षत्रादि जो ठोस रूप रखते हैं। इन देवताओं और नक्षत्रों के मध्य में व्योम(आकाश) बन गया।

परन्तु अण्डे (हिरण्यगर्भ) के विभक्त होने से पूर्व ब्रह्मा एक परिवत्सर पर्यन्त वहां प्रकट होकर क्या करते रहे ? उसका विवरण शास्त्र में इस प्रकार है—
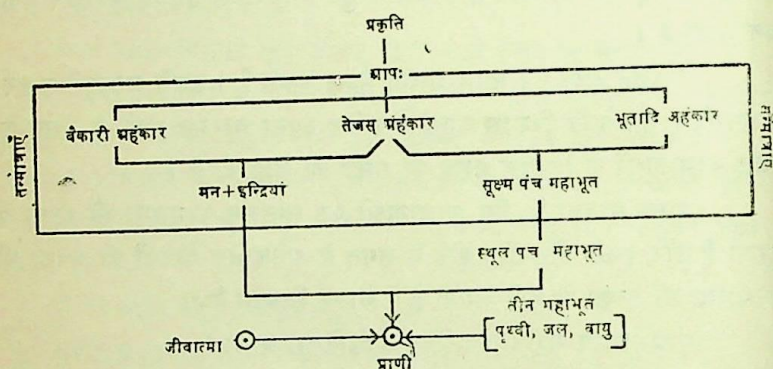
जब स्थूल पंच महाभूत बन गये तो अण्डा विभक्त हुआ। पंच महाभूत हैं—पृथ्वी (solids) जल (liquids) वायु (gasseur) अग्नि(energy) आकाश (ether)।

इन पांच महाभूतों में तीन जगत प्राणी के शरीर के बनाने में काम आते हैं और शेष दो, अग्नि और आकाश इनसे पृथक हैं। अग्नि का अर्थ है शक्ति। यह तीन रूपों में विद्यमान है। विद्युत(electricity), प्रकाश (light) तथा शब्द (sound)।

ऊपर लिखा है कि पंच तन्मात्राओं से सूक्ष्म भूत स्थूल रूप में हो जाते हैं। अणुओं से नाशवान पाँच तन्मात्राएं उत्पन्न हुईं और उनसे यह सब कुछ (दृष्यमान जगत्) उत्पन्न हुआ।

अण्व्यो मात्रा विनाशिन्यो दशार्धानां तु याः स्मृताः।
ताभिः सार्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः ॥२७॥ मनु०—१।२७,

तन्मात्रायें अणुओं से, अभिप्राय यह कि अहंकारों से उत्पन्न हुई। ये नाशवान् हैं और इनके प्रभाव से सूक्ष्म महाभूत स्थूल महाभूत बनते हैं।

इन तन्मात्राओं के विषय में यह समझ लेना आवश्यक है कि ये तरंग मात्र हैं। इनमें शक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाती है। शक्ति में यह गुण है कि जब यह कार्य कर लेती है तो नाश को प्राप्त हो जाती है।

यह कहा जाता है कि ये तन्मात्राएं अहंकारों से उत्पन्न हुईं। अहंकार स्वयं तो मन, इन्द्रियों और सूक्ष्म भूतों का उपादान कारण हुए और तन्मात्राएं(शक्ति की तरंगें) उन पंच महाभूतों में पांच प्रकार के प्रभाव उत्पन्न करने वाली सिद्ध हुईं। (१) अण्वान्तर्गत(inter-atomic) आकर्षण-विकर्षण और गति; (२) सूक्ष्म भूतों के अणुओं को एकत्रित करने का प्रभाव(Cohesion & adhersion) (३) अणुओं में परस्पर संयोग-वियोग (Chemical afinity or repulsion) (४) चुम्बकीय आर्कषण (५) भू-आकर्षण।

इन प्रभावों से ही सूक्ष्म जगत् स्थूल जगत् में प्रकट हुआ है।

जिस समय अण्डे में ब्रह्मा उक्त परिवर्तन कर रहा था और देवता (देवगण) उत्पन्न हुए, उन देवताओं में परमात्मा की कृपा से वेद प्रकट हुए। वेद तीन थे और ये अग्नि, वायु, आदित्य देवताओं के द्वारा प्रसारित होने लगे।

कर्मात्मनां च देवानां सो सृजत्प्राणिनां प्रभुः।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥२२॥
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मा सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्धत्र्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥२३॥

मनुः—१।२२।२३,

कर्मात्मनां (ब्रह्मा) ने देवों, सिद्धों तथा प्राणियों की सूक्ष्म सृष्टि की और सनातन यज्ञ की सृष्टि की। इस समय अग्नि, वायु और आदित्य द्वारा तीन वेदों (ऋक्, यजु, साम) का यज्ञादि कर्मों की सिद्धि के लिये प्रसार हुआ।

अभिप्राय यह कि जिस समय अभी सूक्ष्म सृष्टि ही बनी थी, उस सूक्ष्म वेद अग्नि, वायु और आदित्य को सौंप दिये गये और वे लोक कल्याण के लिये उनका प्रसार करने लगे।

इस समय अण्डा फटा।

इस समय काल, काल का विभाजन, नक्षत्रादि ग्रह बने और फिर सरिता सागर आदि बने।

ये सरिता सागर पृथिवी पर के नदी, नाले और पहाड़ नहीं थे। ये क्या थे और कहाँ थे? इस विषय में हम अगले लेख में लिखेंगे। ●

एक हजार वर्ष तक हिन्दू संस्कृति का प्रचार करने वाले

○

श्री धर्मवीर

(श्री धर्मवीर जी जीवन के प्रारम्भ से ही समाज-सुधार के कार्य में संलग्न हैं। वर्षों तक साप्ताहिक 'हिन्दू' के सम्पादक रहे। कुछ दिनों गुरुकुल विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर कक्षा के अंग्रेजी के प्राध्यापक भी रहे। रा० स्व० संघ से उनका पुराना सम्बन्ध है तथा सम्प्रति वे पंजाब प्रदेश के संघचालक हैं। देश-भक्ति की प्रेरणा उन्हें स्व० देवता स्वरूप भाई परमानन्दजी के सान्निध्य में प्राप्त हुई। लाला हरदयाल पर उन्होंने अन्वेषण किया है तथा उनकी अनेक कृतियों का अनुवाद भी। —सम्पादक)

कहते हैं कि दूसरों की सहायता के लिए धन देने से धन कम नहीं होता। विद्या या ज्ञान के विषय में कहा गया है कि दूसरों को ज्ञान देने से वह कम नहीं होता, वरन् बढ़ता है। और जीवन ? क्या जीवन देने से जीवन बढ़ता है ?

जीवन देने से निश्चय ही जीवन बढ़ता है। इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि जीवन का वह तत्त्व बढ़ता है जिसकी सहायता से जीवन के मार्ग में आने वाले कष्टों का मुकाबला किया जा सकता है। यदि हमको कार्य करने के पश्चात् आन्तरिक सन्तोष न प्राप्त हो तो जीवित होते हुए भी हम मर जायँ।

समाजशास्त्र की दृष्टि से इस संसार में जाति, समाज या राष्ट्र वह जीवित कहलाता है जो अपने-आपको फैलाता है। जनसंख्या को बढ़ाना या फैलाना साधारण बात है। जनसंख्या तो स्वयमेव बढ़ती है। उसका वास्तविक विस्तार धर्म या संस्कृति के विस्तार में है। लगातार एक हजार वर्ष तक

हिन्दू अपनी संस्कृति फैलाने के लिए चीन आदि देशों में जाते रहे। ये लोग बहुत विद्वान और धर्मप्रिय थे। उनमें से कई राजकुमार थे। परन्तु राजकुमार होकर भी ये भिक्षुओं के रूप में चीन आदि देशों में गये। पहली शती में मातंग, धर्मरक्ष, आर्य काल, महाबल, धर्मबल आदि गये। तत्पश्चात् संघभट्ट, कुमारजीव, धर्मरक्ष, गौतमसंघ, बुद्धभद्र, संघभक्त, धर्मप्रिय, और पुण्यत्राता पहुँचे। पांचवीं शती में गुणभद्र धर्मजात और गौतमप्रज्ञ गये। छठी में जिनगुप्त और ज्ञानभद्र चीन गये। सातवीं में कोई नहीं गया। परन्तु आठवीं में प्रचार का यह कार्य फिर आरम्भ कर दिया गया। एक ब्राह्मण का पुत्र अमोघवज्र और राजा का लड़का वज्रकुमार दोनों गये। अन्त में दसवीं शती में धर्मदेव आदि भिक्षुओं का एक मण्डल गया।

ये प्रचारक मगध, पंजाब, कश्मीर, गांधार, तिब्बत आदि के रहने वाले थे। आजकल के योरोपीय तथा अमरीकी यात्रियों के समान ये अपने साथ कपड़े, बूट, खाद्यसामग्री के बक्स आदि विविध सामान न ले जाते थे। साधारण पहने हुए कपड़ों में ही ये चट्टानों, बर्फ आँधी और तूफानों का सामना करके हिमालय, खुतन और तुर्किस्तान के रास्ते चीन जाते थे। वहाँ पहुँच कर ये संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करते, इसके अतिरिक्त चीनी बोलते हुए ये चीनियों को अपने सजीव सम्पर्क में लाते। इसके फलस्वरूप चीन की आबादी का बड़ा भाग हिन्दू संस्कृति के सम्मुख अपना सिर झुकाने लगा। ये प्रचारक एकाध वर्ष के बाद वापस घर न चले आते थे। ये अपने घर की याद भुला देते। अपनी संस्कृति के विस्तार में ही ये अपने माता-पिता तथा वंश का मान समझते। यही कारण था कि चीन के सम्राट इनकी पूजा करते और वहाँ की प्रजा इन्हें धर्मदूत समझती। इनका त्याग ही जनसाधारण पर इतना प्रभाव डालता।

इसकी तुलना में आज हम क्या देखते हैं? एक नवयुवक व्रत लेता है कि मैं एक वर्ष के लिए धर्म कार्य करूँगा। यह सुनकर उसके माता-पिता उसके पैरों में बेड़ियाँ डालने का यत्न करते हैं। विवाह की बात सोचकर उसे गृहस्थी के खूँटे से बाँधने की कोशिश करते हैं। परिणाम यह होता है कि दो पैरों से चलने वाला यह पशु स्वतन्त्र होने का यत्न करता है। वह घर वालों की अनुशासन के बिना घर से भाग निकलता है। अब घरवाले उसे ढूंढ़ते हैं। उसके मित्रों से कहते फिरते हैं, "केवल एक बार उसे मिला दो। उसकी माता बहुत सख्त बीमार है, यदि उसमें माता का मोह नहीं रहा हो तो वह अपने पिता को बीमार समझ ले। हम उससे यह थोड़ा ही कहते हैं कि तू विवाह

कर ले। जो उसकी मरजी में आय सो करे। हमको तो वह केवल देखने का मौका दे दिया करे। हम यह भी नहीं चाहते कि वह व्यापार या नौकरी करे। यदि उसे धर्म का कार्य करना पसन्द है तो बेशक वह इसे ही करता रहे, परन्तु करे हमारी गोद में बैठ कर।

बात यह है कि आजकल के माता-पिता के अन्दर सन्तान के लिए अनुचित मोह अत्यधिक काम कर रहा है। हिन्दुओं का रुपये के प्रति अनुचित मोह तो प्रसिद्ध ही है? जीवन से अनुचित मोह भी कम नहीं। परन्तु सन्तान से ऐसा मोह करके वे न केवल स्वयं दुखी होते हैं वरन् अपनी सन्तति को वे वह कार्य भी नहीं करने देते, जिसके विषय में वे यह कहते हैं कि—"यह काम तो बहुत अच्छा है। सारी दुनिया अपने-अपने धन्धों में लगी हुई है। यदि देश तथा धर्म का कार्य न किया गया तो हमारा समाज जीवित किस प्रकार रह सकता है।" परन्तु इसके साथ ही दूसरी साँस में वे यह भी कह देते हैं—"हमारी एक ही प्रार्थना है। आप कृपा करके हमारे लड़के को यह कार्य करने के लिए नहीं कहें। इसे तो घर के काम-काज के लिए ही रहने दें। हिन्दू समाज में अन्य अनेकों नवयुवक हैं। उनमें से कुछ सौ भी यदि इस कार्य को अपने कन्धों पर ले लें तो बस बेड़ा पार है।"

यह है मनोवृत्ति, पतन की मनोवृत्ति, जो हमें कुछ करने नहीं देती। हम में से ही एक यह सोचता है कि स्वदेश तथा स्वधर्म का कार्य मुझे और मेरे लड़के को न करना पड़े। हम यह कार्य न करें, परन्तु हमें इसका फल अवश्य मिल जाय। हम भूमि में हल जोतना नहीं चाहते, उसे पानी देने में कष्ट मानते हैं, उसकी रखवाली करना हमको मुसीबत प्रतीत होता है। लेकिन जब गाँव के अन्य लोग पके हुए अनाज को काटने के लिए हाथों में दाँतिया लिए अपने-अपने खेतों को जाते हैं तो हम भी उनकी देखा-देखी हंसिया उठाकर उनके पीछे हो लेते हैं। परन्तु वे तो अपने खेतों में पहुँच जाते हैं और हम? हमारी तो ज़मीन ही खाली पड़ी है। उसमें तो हमने हल भी नहीं जोता था, कुछ बोया ही नहीं था, दांती काटे तो क्या?

आज हिन्दुओं को चारों ओर से संकटों ने घेर रखा है। हमारे अन्दर सामाजिक निर्बलताएँ इतनी अधिक हैं कि पग-पग पर वे हमारा मार्ग अवरुद्ध कर लेती हैं। हमारे अन्दर विदेशी तत्त्व डेरा डाले पड़े हैं। बाहर की विदेशी शक्तियाँ हमें दबा रही हैं। हम अपनों द्वारा पीसे जा रहे हैं। इसी कारण हम चिल्लाते हैं और रोते भी हैं। परन्तु कुछ करना नहीं चाहते। इस पतनावस्था में भी हम अपनी सन्तान को विलास के कीड़े बनने की खुली छुट्टी देते

हैं। वे दो-दो घण्टे बनने-सँवरने में लगा देते हैं। इस बनाव श्रृंगार के लिए माता-पिता रुपया देते हैं। बन-सँवर कर वे "कौफी हाउस" जाते हैं। यदि वह तीतरी है तो अपने गिर्द पाँच-सात भौंरों को एकत्र कर लेती है। यदि वह भौंरा है तो रंग-बिरंगी तीतरी के गिर्द दूसरों के साथ मिलकर मण्डराने लगता है। यही लड़के लड़कियाँ सिनेमा हॉल में इकट्ठे जा बैठते हैं। वहाँ शैतानी भूख बढ़ाने वाली फिल्में दिल की आग पर तेल छिड़कती हैं। फिर अँधेरे में कुछ से कुछ होने लगता है। अगले दिन कालेज में बातचीत होती है कि किसी न किसी प्रकार से छुट्टी मिलनी चाहिए, नहीं तो पहले दिन के निश्चित कार्य-क्रम पर आचरण कैसे हो सकता है?

अमुक व्यक्ति के मरने का समाचार छपा है। उसकी स्मृति में सार्व-जनिक सभा अवश्य होनी चाहिए। इसलिए कालेज आज बन्द रहे। चलो, "अमुक व्यक्ति जिन्दाबाद, अमुक व्यक्ति अमर रहे।" के घोष लगाओ। अध्यापक बेचारे क्या करें। वे भी सच्चे हैं, विद्यार्थियों पर उनका कोई प्रभाव नहीं। विद्यार्थियों के जीवन में प्राध्यापकों ने घुसने का कभी प्रयत्न किया ही नहीं। इस कारण उनके जीवन पर प्राध्यापकों का प्रभाव कैसे हो सकता है? फिर प्राध्यापक क्यों न छुट्टी मनायें? चलो, समझौता हो गया। रजिस्टर में हाजरी लगाने के बाद लड़के-लड़कियों को छुट्टी मिल गई।

किसी विशाल मैदान में सभा होने लगी। पहले नवयुवती लड़कियों ने गीत गाये, जिसकी प्रशंसा में लड़कों ने प्रत्येक शब्द पर तालियाँ पीटीं। फिर लड़कों ने परस्पर कानाफूसी की। इसके बाद भाषण हुए। "कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा—भानमती ने कुनबा जोड़ा।" खूब चहल-पहल रही। दो-ढाई घंटे का कार्यक्रम था। समय अच्छी प्रकार से निकल गया। अगले दिन समा-चार पत्र में चित्र प्रकाशित हो गया और नाम भी आ गया।

ऐसा जिस देश का नवयुवक वर्ग हो गया हो और ऐसे उन नवयुवकों के अभिभावक एवं अध्यापक हों तो फिर क्या बचेगी संस्कृति और कौन करेगा उसका प्रचार एवं प्रसार? आज की सर्वप्रथम आवश्यकता तो अपनी ही संस्कृति के पुनरुद्धार की है।

●

अंग्रेज़ी ने भारतीयता का विनाश किया है

○

श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

(वैदिक सम्पत्ति को राष्ट्रीय धरोहर, राष्ट्रीय सम्पत्ति मानने की भारत में भावना पैदा नहीं हुई। भारतीय जीवन धारा के इस मूल स्रोत से अंग्रेजी ने भारतीय जीवन को अलग ही नहीं किया, बहुत दूर कर दिया है। भारतीय जीवन धारा को छिन्न-भिन्न करने में अंग्रेजी ने कुछ भी उठा नहीं रखा।" ऐसे ही प्रभावोत्पादक विचारों से ओतप्रोत प्रस्तुत लेख के लेखक हैं सुविख्यात इतिहासज्ञ एवं उद्भट विद्वान श्री अवनीन्द्र कुमार जी।)

शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी रखकर राज-काज और कचहरी अदालत में चला कर भारत का, भारतीयता का जैसा विनाश किया गया है, उसका विश्व-इतिहास में दूसरा उदाहरण नहीं है।

इसी का यह फल है कि तथाकथित स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद भी अंग्रेजी को 'यावत् चंद्रदिवाकरौ' बनाये रखने का आग्रह भारत के प्रधानमंत्री कर रहे हैं।

इसके मुकाबले में इसराईल राज्य को देखिए। यूरोप, अमेरिका आदि के नाना देशों से आये यहूदी यहाँ आकर बसे और उन्होंने मृत प्रायः हिब्रू भाषा को पुनरुज्जीवित किया और छः मास के बाद ही सारा राज-काज उसमें होने लगा। यह है मातृ-भूमि के प्रति अपूर्व भक्ति का उदाहरण। मातृ-भूमि के प्रति भक्ति-प्रकाशन का एक ही उदाहरण है—वह है भाषा। जनता की भाषा को स्वीकार करने का अर्थ है जनता का गौरव बढ़ाना, जनता को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन देना। विदेशी भाषा का प्रयोग स्थायी करना जनता के मन की आत्म-हीनता की छाप से ग्रस्त करना है।

एलफिस्टन एक अत्यन्त दूरदर्शी ब्रिटिश शासक हुआ है। इसके नाम पर वंबई में आज भी कालेज चल रहा है। इस परिवार का भारत से गहरा

संबंध रहा है। मराठा शाही के पतन के सात साल बाद १८२५ में, आज से १६३ साल पहले उसने अपने एक मित्र को उत्तर देते हुये लिखा था—

"प्रिय मित्र, तुम्हारा डर ठीक है। यह देश हमको एक दिन सर्वथा छोड़ देना पड़ेगा। परन्तु यह सोच कर घबराने की जरूरत नहीं है। ब्रिटिश सैनिक जब भारत खाली कर देंगे, उसके बाद भी भारत में राज्य बना रहेगा, यह रहेगा इस रूप में—ब्रिटिश भाषा, ब्रिटिश कानून, ब्रिटिश सभ्यता, संस्कृति एवं ब्रिटिश नीति व आचार-शास्त्र भारत में बने रहेंगे। इस प्रकार ब्रिटिश राज्य भी भारत पर कायम रहेगा।"

एलफिस्टन ने जो कुछ लिखा था, उसका क्या एक-एक अक्षर सच नहीं है ?

अँग्रेजी ने भारत को खंड-खंड किया है। भारत का विभाजन हुआ, विभक्त भारत को संयुक्त करने की इच्छा तक को इसने नष्ट कर दिया है। गुजराती का कवि नानालाल प्रार्थना करता था कि उसका यदि पुनर्जन्म हो तो भारत में हो, परन्तु आज के श्री मुन्शी गुजराती भावना जगाते हैं, भारतीयता नहीं।

अँग्रेजों ने भारतीयता की भावना को किस प्रकार नष्ट किया है, उस का यह एक उदाहरण है।

आदि कवि ने श्रीराम की कल्पना भारत-भूमि के रूप में की। हिमालय के समान राम को ऊँचा और सागर के समान राम को गंभीर बताया। भारत भूमि के प्रति अनुराग उत्पन्न करने का कार्य भारतीय साहित्य करता रहा है। पुराण गाते हैं—

गायन्ति देवाः किल गीतिकानि, धन्यास्तु ये भारतभूमि-भागे
स्वर्गापवर्गस्य हेतुभूतेर्भवन्ति भूयाः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

मातृ-भूमि के प्रति इससे अधिक भक्ति का क्या कोई दूसरा उदाहरण है ? अँग्रेजी ने इसको नष्ट कर दिया है।

भारत को राजनीतिक एकता सर्वप्रथम ब्रिटिश शासन ने दी। यह आज भी पढ़ाया जा रहा है। भारत के वित्तमंत्री तक इस बात को कहते हैं। इतिहास का यह अधूरा ज्ञान भारतीयता की भावना को नष्ट कर रहा है व भ्रांतियों को बढ़ा रहा है। ऐतिहासिक एटलस मौर्य साम्राज्य की सीमा मैसूर से आगे नहीं बढ़ाते। तमिल स्तंभ (प्रथम) में उल्लिखित इस उल्लेख का कभी कोई जिक्र तक नहीं करता।...

तमिलनाड का आकाश हफ्तों सूर्य विहीन रहा। लोगों को सूर्य के

दर्शन ही नहीं हुए क्योंकि मौर्य सेना के भारी-भारी विशाल रथों ने तमिल-नाड के पहाड़ों को चूर-चूर कर दिया। इनसे उड़ी धूल आकाश में सघन बादलों के समान छाई रही।

यह वर्णन क्या इस बात को नहीं बताता कि मौर्य साम्राज्य, चंद्रगुप्त और चाणक्य द्वारा स्थापित साम्राज्य कन्याकुमारी तक विस्तृत था।

तमिल स्तंभ के इस उल्लेख को दृष्टि में रखकर सम्राट अशोक की कलिंग युद्ध की बात पढ़िए। विद्रोह को बौद्ध-ग्रंथों ने क्या रूप दिया और वह आज कवियों एवं नाटककारों का प्रिय विषय हो गया है।

कालिदास को रघु का दिग्विजय लिखने की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हुई, वह इससे प्रकट है। अतः कालिदास ने लिखा है कि पांड्य नरेश रघु के प्रताप को न सह सके—

दिशिमन्दायते तेजोः दक्षिणस्याँ रवेरपि
तस्यामेव रघोः पांड्याः, प्रतापं न विषेहिरे ।।

कालिदास का काल इस वास्ते घटाया गया, पीछे से पीछे ले जाया गया। भारतीय क्या भारत में एक राज्य की स्थापना कर सकते थे ? यह कल्पना तो ब्रिटिश की देन है। यह शिक्षित एवं पठितवर्ग के दिमाग में भर दिया गया है। भारत के प्रति गौरव और अभियान उत्पन्न न हो, इसका यत्न किया गया।

एक उदाहरण लीजिए। भारतीय इतिहास का आरम्भ आज का इतिहास लेखक कहाँ से करता है ? सृष्टि-संवत् भारत में आज भी व्यवहार में आता है। परन्तु भारतीय इतिहास का लेखक सिकंदर के आक्रमण से या मोहन्जोदड़ो के टीलों से करता है। भारतीय मान्यता को वह स्थान तक नहीं देता। भारतीय संस्कृति के चार अध्याय लेखक वेदों का काल यूरोपियनों के मत देकर निर्धारित करता है। वेदों के प्रति उसको अभिमान और गौरव नहीं है। वेद कहता है—

इदं नमः ऋषिभ्य पूर्वजेम्यः, पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ।

पूर्वजों का ही नहीं, पूर्वजों के भी पूर्वजों को नमस्कार किया है। आर्य जाति कितनी प्राचीन है, इसका ठीक-ठीक पता वैदिक ऋषियों को भी लगता नहीं था। परन्तु वैदिक संपत्ति की राष्ट्रीय धरोहर राष्ट्रीय संपत्ति मानने की भारत में भावना पैदा नहीं हुई। भारतीय जीवन-धारा के इस मूल स्रोत से अंग्रेजी ने भारतीय जीवन को अलग ही नहीं किया, बहुत दूर कर दिया है। भारतीय जीवन-धारा को छिन्न-भिन्न करने में अंग्रेजी ने कुछ भी उठा

नहीं रखा।

भारत प्राचीनतम देश है। इसकी सीमा ५००० वर्ष पहले लिखी गई। सामान्य भारतीय की यह मान्यता है। मिश्र के पिरामिड इस सत्य को कहते हैं। परन्तु फिर भी मोहञ्जोदड़ो और हड़प्पा को भारत-द्रोही एवं भारत-विरोधी इतिहासज्ञ आर्य संस्कृति के अवशेष मानने को तैयार नहीं हैं। भारत का गौरव बढ़े, यह उसको अभीष्ट नहीं है।

शंकराचार्य को वह नौवीं शताब्दी का मानता है। ऋषि दयानन्द शंकराचार्य का काल विक्रम से २·३ सौ साल पहले मानते हैं। परन्तु भारतीय इतिहासकार इस सत्य को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं, क्योंकि सत्यार्थ प्रकाश एक धार्मिक ग्रन्थ है। यह ऋषि दयानन्द ने लिखा है, जो अंग्रेजी नहीं जानते थे। बाईबल से वह ऐतिहासिक प्रमाण ढूंढ सकता है, परन्तु सत्यार्थ प्रकाश से नहीं, क्योंकि वह हिंदी में है।

दिल्ली का अन्तिम हिंदू सम्राट पृथ्वीराज नहीं, बल्कि यशपाल था। यह सत्यार्थप्रकाश और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा संपादित पत्रिका में सौ साल पहले लिखा गया था। परन्तु अंग्रेजों की अञ्जलि से पानी पीने वाला भारतीय इतिहासकार पुरानी रट लगा रहा है। बिड़ला मंदिर दिल्ली में इसी आधार पर पृथ्वीराज को भारत का अन्तिम हिंदू सम्राट लिखा गया है।

ये कुछ उदाहरण हैं जो बताते हैं कि अंग्रेजी के प्रभुत्व ने भारत को कितना बौना बना दिया है।

इसराईल राज्य की स्थापना १९४२ में हुई, हिब्रू का उद्धार १९४९ में हुआ। १९६६ में हिब्रू साहित्य के उन्नायक को नोबुल पुरस्कार मिला। यह है मातृभाषा में शिक्षा देने का प्रभाव। भारत में अंग्रेजी १८१२ के बाद से पढ़ाई जा रही है। रवीन्द्रनाथ टैगोर और श्रीरमण के अतिरिक्त और किसी भारतीय को नोबुल पुरस्कार प्राप्त नहीं हुआ। रवीन्द्र को भी मूल बंगला की गीतांजलि पर पुरस्कार नहीं मिला, बल्कि उसके अंग्रेजी अनुवाद की गीतांजलि को। इसमें क्या कुछ मौलिकता है? क्या वह कबीर का अक्षरशः अनुवाद नहीं है? इस विषय में कहा जा सकता है कि अंग्रेजी ने भारतीय प्रतिभा को नष्ट कर दिया है। प्रेमचन्द को छोड़ कर भारत कोई दूसरा मौलिक उपन्यासकार नहीं पैदा कर सका, जिस पर संसार गर्व कर सके। (लेख के इस अंश से कदाचित् ही कोई सहमत हो—सम्पादक)।

अँग्रेजी ने भारत में लोकशाही का अन्त कर दिया है। लोक-जीवन को नष्ट कर दिया है। भारतीय जनता को अनन्त भागों में विभक्त कर दिया

है। भारत में आज भी ७६ प्रतिशत निरक्षर हैं, केवल २४ प्रतिशत साक्षर हैं। इन साक्षरों में एक दो प्रतिशत अँग्रेजी जानने व लिखने वाले हैं। आज सारा शासनसूत्र इन मुट्ठी भर लोगों के हाथ में है।

अँग्रेजी की प्रभुता की कल्पना इस बात से की जा सकती है कि हिंदी न जानने वाला व्यक्ति भारत का राष्ट्रपति हो सकता है। परन्तु अँग्रेजी न जानने वाला भारत सरकार का चपड़ासी नहीं हो सकता। आज यदि ऋषि दयानन्द पैदा हों और दुर्भाग्यवश भारत सरकार में नौकरी पाने के लिए प्रार्थना-पत्र दें, तो वह फराश, जमादार और चौकीदार से ऊँची नौकरी न पा सकेंगे। हिंदी की यह स्थिति कर दी गई है।

शल्य पांडवों का मामा था, पर युद्ध में वह दुर्योधन के पक्ष में चला गया। उसको बाद में भूल मालूम हुई। पर तब निरुपाय था। परन्तु वह युधिष्ठिर की मदद करना चाहता था। परन्तु उसे युधिष्ठिर ने कहा कि कर्ण-अर्जुन का जब युद्ध हो, तब आप कर्ण का सारथी बनिएगा और उसकी हिम्मत तोड़ते रहिएगा। उसमें आत्म-हीनता का भाव भरते रहिएगा। शल्य ने ऐसा किया। लड़ने से पहले ही कर्ण ने मान लिया कि वह अर्जुन पर विजय नहीं पा सकेगा। आत्महीनता की भावना जगाकर प्रचारित करने का परिणाम है कि अयूबखाँ तो यह सोचकर डर रहे हैं कि भारत शक्तिशाली हो गया, तो बृहत्तर भारत का निर्माण करेगा। परन्तु वृहत्तर भारत के निर्माण की आकांक्षा का भारत में अभाव है।

भारत की हवाई सर्विस का नाम इण्डियन एअर सर्विस है। परन्तु हिंदेशिया और थाईलैंड की हवाई सेना का नाम हनुमान है। अँग्रेजी ने भारत के प्रति प्रेम बढ़ाया नहीं है, बल्कि नष्ट किया है।

एलोपैथी चिकित्सा-प्रयोगों का मुल आयुर्वेद है। मैटिरियामेडिका निघंटु का हू-बहू अनुवाद है। परन्तु भारत के मैडीकल कालेजों से आयुर्वेद बहिष्कृत है। श्री नेहरू की चिकित्सा के लिए बम्बई के प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य को पुन: नेहरू जी के पास जाने तक नहीं दिया गया, क्योंकि आयुर्वेदाचार्य की दी गई घास के रस से नेहरू जी को आराम मिला था। घंटे भर में पेशाब आ गया था। यदि श्री नेहरू आयुर्वेद की चिकित्सा के बल पर और दस साल जीवित रहते, तो क्या ब्रिटिश फार्मेसियों और अमेरिकी फार्मेसियों की दवाई भारत में बिकती? भारत से अधिक विशाल बाजार चीन ही हो सकता है, वह बन्द है। इस दशा में भारत के बाजार को ये कैसे छोड़ सकते हैं? यह आर्थिक कारण एक है, जिसके कारण ब्रिटिश कौंसल भारत में

अँग्रेजी के प्रचार और प्रशिक्षण पर करोड़ों रुपये व्यय करती है। अंग्रेजी ब्रिटेन के आर्थिक राज्य को कायम रखती है। ब्रिटिश भाषा के प्रति भारतीयों के प्रेम की बात न कही जाये, तो ही ठीक होगा।

आयुर्वेद चला जा रहा है। परन्तु वैद्य का पुत्र अब आयुर्वेदाचार्य नहीं होता। धन्वन्तरि गया; इसके साथ नाड़ी-विज्ञान समाप्त हो गया। इसके अभाव में क्या आयुर्वेद-चिकित्सा सस्ती और सरल हो सकेगी ?

एक उदाहरण लीजिए। वात-रोग को दूर करने, या गैस न उत्पन्न होने देने के लिए वैद्य सौंफ, धनिया और बादाम पीस कर देता है। इसमें बादाम ही केवल महँगी चीज है। गरीब आदमी इसको छोड़कर भी अपना काम चला सकता है, पर ऐलोपेथी यह इञ्जेक्शन देती है। गरीब देश को गरीब बनाने वाली ऐलोपेथी का फिर भी प्रचार किया जा रहा है। यह है मानसिक और बौद्धिक दासता, जो अँग्रेजी भारत में लाई गई है।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करने का एक सरल मार्ग है कि इनके प्रति भारत में विद्यमान अभिमान नष्ट किया जाये। इसको नष्ट किए बिना इसलाम और ईसाई धर्म नहीं फैल सकता। इतिहास साक्षी है कि ईसाई धर्म के प्रबल आक्रमण को और इसलाम के तूफानी वेग को बौद्ध धर्म या अन्य धर्म न सहन करके एकमात्र हिंदू धर्म, वेदों पर अभिमान करने वाला, रामकृष्ण की संतान मानने वाला टिक सका। सम्पूर्ण हिंदेशिया मुसलमान हो गया, पर बाली आज भी हिंदू है। वेदों और हिंदू धर्म की इस दृढ़ता और प्रतिरोध-शक्ति का अनुमान भारत में २००० सालों में हुई ईसाइयों की संख्या से किया जा सकता है। इसलाम भी उस मत ने ग्रहण किया जो बौद्ध था। पठान सबसे पहले बौद्ध हुए, फिर मुसलमान हुए। काशी के जुलाहे सब मुसलमान हैं; क्योंकि ये सब पहले बौद्ध थे। अतः इसलाम और ईसाई दोनों हिंदू धर्म को नष्ट करने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को गिराने में एक हैं। इसीलिए ब्रिटिश लोगों ने पाकिस्तान बनाया है। इन दोनों की सम्मिलित शक्ति ने भारतीय संस्कृति के २०वीं सदी के श्रेष्ठतम प्रतीक स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या की। कल्पना कीजिए उस दिन की, जब इस आर्य संन्यासी ने दिल्ली की जामा मसजिद के मीनार से वेद-मंत्रों के साथ अपना धर्मोपदेश दिया था। इसलाम की यह पराजय थी। इसलाम के इतिहास में यह पहला अवसर था जब एक आर्य संन्यासी जामा मसजिद के मीनार पर बुलाया गया। इस पराजय को इसलाम क्या सह सकता था ? यदि जामा मसजिद के मीनार से वेद-मंत्र पढ़े जा सकते हैं तो

(शेष पृष्ठ ३९ पर)

विकासवाद और इतिहास

○

श्री गुरुदत्त

("आम के वृक्ष पर केले की कलम नहीं पनप सकती और न ही सन्तरे पर आम की कलम। गाय से कभी भी और कितने ही प्रयोगों के बाद भी घोड़ा पैदा नहीं हो सकता। फिर बन्दर का विकसित रूप मनुष्य कैसे हो गया?" विकासवाद के अविकसित तथ्य के विषय में श्री गुरुदत्तजी की प्रबुद्ध एवं प्रौढ़ तथा परिपक्व लेखनी से निवृत विचार पढ़िए प्रस्तुत लेख में।) —सम्पादक

इतिहास के समझाने में जितनी बाधा और विकृति वर्त्तमान विज्ञान के विकासवाद ने उत्पन्न की है, उतनी अन्य किसी बात ने नहीं की। इतिहास, विशेष रूप में भारतवर्ष के इतिहास, में इस वाद को ले आने से बात सर्वथा उलट हो गयी थी, जैसा भारतीय परम्पराओं में समझा जाता रहा है। भारतीय परम्पराओं में यह माना जाता है कि आदि काल में मनुष्य सब प्रकार से उन्नत और पूर्ण था। यह बात विकासवाद के सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है। विकासवाद जैसा कि वर्तमान वैज्ञानिक समझते हैं अविकसित से विकास की ओर, सरसता से विषमता की ओर, और अनिश्चित से निश्चित की ओर संसार के जाने का सूचक है।

अत: विकासवाद, वर्तमान अर्थों में, यदि सत्य है तो यह मानना पड़ेगा कि प्राचीन मनुष्य, एतदर्थ भारतवासी, मूढ़, शरीर से पंगु और दुर्बल तथा कार्य करने में असमर्थ था और वर्तमान युग के मनुष्य प्रत्येक प्रकार से अधिक कुशल और सामर्थ्यवान हैं। तब यह मानना पड़ेगा कि वेद जैसी ज्ञान-विज्ञान की पुस्तक आदि सृष्टि में नहीं कही गई, वरं यह सृष्टि उत्पन्न होने से बहुत बाद में मनुष्य के बहुत विकास पा जाने के उपरान्त कही गयी अथवा लिखी गई है। इस वाद को सत्य मानते हुए यह मानना पड़ेगा कि प्राचीन भारतीयों से आजकल के भारतीय अधिक सामर्थ्यवान्, बुद्धिशील और कार्य-कुशल हैं।

संसार की समस्त प्राचीन जातियों से वर्तमान युग की युरोपियन जातियाँ उन्नति कर चुकी हैं।

इस प्रकार विकासवाद इतिहास में भारतीय परम्पराओं को मिथ्या और अशुद्ध सिद्ध करने वाला हो जाता है। भारतीय परम्पराओं के अनुसार यह माना जाता है कि वेद आदि सृष्टि में कहे गये। इनमें समस्त सत्य विद्याओं का बीज विद्यमान है और इनमें मनुष्य की प्रत्येक गतिविधि के लिए सत्य मार्ग का दर्शन किया गया है। विकासवाद के अनुसार यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। अतएव इतिहास के शुद्ध स्वरूप को जानने से पूर्व विकासवाद की सत्यता के विषय में निर्णय होना अत्यावश्यक है।

विकासवाद का स्वरूप :—

विकासवाद की तीन कड़ियाँ हैं :—

(१) जड़ से चेतन की उत्पत्ति, (२) सरलतम चेतन अमीबा से विषमतम चेतन मनुष्य का प्रादुर्भाव (३) अविकसित मानव से वर्तमान युग के युरोपीय मानव तक का विकास।

इन तीनों कड़ियों के प्रमाण और उन प्रमाणों के सत्य होने के परीक्षण विद्यमान नहीं हैं। किसी बात के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए दो ढंग हैं। एक वैज्ञानिक और दूसरा दार्शनिक। इनको अंग्रेजी में scientific method और philosofical method कहते हैं। दोनों प्रकार से परीक्षण किये जाते हैं और परीक्षणों के परिणाम पर पुन: परीक्षण किये जाते हैं। जब तक पुन: परीक्षण पूर्व के परिणामों की पुनरावृत्ति न करें, तब तक बात सिद्ध नहीं हुई कही जा सकती। उदाहरणत: विज्ञान के क्षेत्र में गन्धक के तेजाब में यशद डालने से एक प्रकार की गैस निकलती है जो स्वयं जल सकती है। इस वायु को हाईड्रोजन कहते हैं। यह एक परीक्षण है। इसको दोहराया जा सकता है और दोहराने पर सदैव और सर्वत्र नन्धक-तेजाब और यशद के संयोग से हाईड्रोजन गैस निकलती देखी जाती है। अत: यह सिद्ध होता है कि हाईड्रोजन विद्यमान है या तो गन्धक के तेजाब में अथवा यशद में।

यदि गन्धक के तेजाब पर यशद के प्रभाव से हाइड्रोजन न निकले तो उक्त निष्कर्ष निकालना अवैज्ञानिक हो जायेगा। इस दृष्टि से, क्योंकि विकासवाद की तीनों कड़ियों को दोहराया नहीं जा सकता। इसलिए इन तीनों कड़ियों का मानना अवैज्ञानिक हो जायेगा। आज अथवा कभी भी भूतकाल में यह कर के नहीं दिखाया गया कि वस्तु की एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी उत्पन्न की गई है अथवा अविकसित शरीर वाले मानव से विकसित शरीर वाले मानव उत्पन्न

हुए हैं। अतएव विज्ञान की दृष्टि से विकासवाद एक परीक्षित सिद्धान्त नहीं है। यह एक कल्पना मात्र है।

दार्शनिक दृष्टि से भी यह बात युक्तियुक्त ढंग से सिद्ध नहीं की जा सकी कि कैसे एक जन्तु से दूसरे प्रकार का जन्तु उत्पन्न हुआ है। दर्शन-शास्त्र तो विकासवाद के इस रूप को जिसमें कहे जाने वाले वैज्ञानिक कल्पना कर रहे हैं, मान्यता नहीं देता है।

विकासवाद के समर्थक संसार में दो बातों को देखकर विकासवाद को सत्य मान रहे हैं।

(१) सब जन्तुओं में शरीर की बनावट एक समान जीवित कोषाणुओं (living cells) से बनी होती है। इससे ये लोग यह समझ रहे हैं कि सब जन्तुओं के शरीर एक ही स्रोत से निकले हैं। यह स्रोत एक कोषाणु वाला जन्तु (unicellular animal) अमीबा है, परन्तु विज्ञान की वर्तमान स्थिति में भी यह बात असिद्ध ही है। एक जन्तु के शरीर में सब कोषाणु एक समान हैं, परन्तु एक जन्तु के कोषाणु और दूसरे जन्तु के कोषाणुओं में अन्तर पाया गया है। भिन्न-भिन्न जन्तुओं के कोषाणुओं में क्रोमोजोम्स की संख्या और बनावट में अन्तर है। यहां तक कि नर और मादीन के शरीर के कोषाणुओं में क्रोमोजोम्स की संख्या एक समान नहीं। तो फिर अनेकानेक प्राणियों के क्रोमोजोम्स और जीवित कोषाणुओं को एक ही स्रोत से निकला कैसे माना जा सकता है? विकासवाद के समर्थकों का यह दावा कि सब जन्तु अमीबा के विकास से बने हैं, मिथ्या सिद्ध होता है।

विज्ञान की पहुँच अभी अन्तिम सत्य तक नहीं पहुँची। इस पर भी ज्यों ज्यों यह उन्नति करता जाता है, विकासवादियों की इस धारणा को कि सब प्राणियों के कोषाणु एक समान हैं, असिद्ध करता जाता है।

विकासवाद के समर्थकों की दूसरी बात भिन्न-भिन्न जाति के जन्तुओं में सँयोग से सन्तान उत्पत्ति है। उदाहरण के रूप में कुत्ते और गीदड़ में सन्तान उत्पत्ति हो सकती है। घोड़े और गधे में सन्तान उत्पत्ति हो सकती है। इसी प्रकार सन्तरा और नीम्बू के पेड़ में प्योंद लग सकती है। आम और बेर के भिन्न-भिन्न जातियों में भी प्योंद लगती हैं। इसको (cross breeding) कहते हैं। विकासवाद के समर्थक यह सिद्ध करने का यत्न कर रहे हैं कि इन परीक्षणों से जाति परिवर्तन सिद्ध हो रहा है।

ये परीक्षण भी विकासवाद को सत्य सिद्ध करने में असमर्थ हैं। एक बात तो यह है कि (cross breeding) अथवा एक पेड़ की दूसरे पेड़ से प्योंद

सजातीय जन्तुओं अथवा बनस्पतियों में लग सकती है। उदाहरण के रूप में लोमड़ी की cross breeding खरगोश से नहीं हो सकती। हिरण की cross breeding गाय से नहीं हो सकती। यह cross breeding केवल उन जन्तुओं में परस्पर हो सकती है जिनकी जाति species एक है। घोड़ा और गधा एक ही जाति के जन्तु हैं। गीदड़ और कुत्ता भी एक ही जाति के जन्तु हैं। इसी प्रकार पेड़ों में प्योंद भी सजातीयों में ही लग सकती है। एक लोकाट के पेड़ की प्योंद केले के पेड़ से नहीं लग सकती। एक आम के पेड़ की प्योंद सन्तरे के पेड़ से नहीं लग सकती।

साथ ही इन जातियों (species) में भी cross breeding होने पर नई उत्पन्न जाति की सन्तति चलती देखी नहीं गयी। उदाहरण के रूप में घोड़े और गधे के संयोग से खच्चर पैदा होते हैं, परन्तु खच्चर से खच्चर जाति का निर्माण नहीं हुआ। इसी प्रकार गीदड़ और कुत्ते से एक नई रूप-राशि का कुत्ता अथवा गीदड़ बन गया देखा जाता है, परन्तु वह आगे सन्तान उत्पन्न करने के अयोग्य होता है। पेड़ों में भी यह देखा गया है कि प्योंद लगाने से जो फल पैदा होते हैं उनकी गुठली अथवा बीज या तो जम कर पेड़ पैदा करते ही नहीं। यदि कहीं पेड़ पैदा करते भी हैं तो उस पेड़ में प्योंद वाले फल के पेड़ की विशेषता नहीं रहती। उदाहरण के रूप में आम के पेड़ की प्योंद अन्य आम के पेड़ों से लगायी जा सकती है, परन्तु उससे उत्पन्न फल के बीज से जो पेड़ बनता है वह पेड़ पैदा तो कर सकता है, परन्तु उसको फल या तो लगेंगे ही नहीं और यदि लगेंगे तो वह उस प्रकार के उत्कृष्ट नहीं होंगे जो प्योंद लगाने पर उत्पन्न हुए थे। पेड़ों के विषय में एक बात देखी गयी है। वह यह कि प्योंद से उन्नत पेड़ की डाल तो लग सकती है और उन्नत प्रकार के फल दे सकती है, परन्तु बीज से उन्नत पेड़ पैदा नहीं होता।

अतः विकासवाद के समर्थकों की यह दूसरी बात भी उनके पक्ष को सिद्ध नहीं करती। cross breeding एक प्राकृतिक विधान नहीं है। यदि यह प्राकृतिक होता तो नई प्रकार के उत्पन्न किये पेड़ अथवा जन्तु अपने बीज से अधिक उन्नत जीव अथवा पेड़ बना सकते। यह प्रक्रिया भी अस्वाभाविक है और अप्राकृतिक है। यह तो एक गोल छेद में चौकोर कील बल पूर्वक गाड़ने के समान है।

विकासवाद एक असिद्ध वाद है। इसको दार्शनिक दृष्टि से सिद्ध करने के लिये यह युक्ति दी जाती है कि संसार क सब जन्तु एक नियम बद्ध शृंखला में रखे जा सकते हैं, जिनमें एक किनारे पर तो अमीबा है और दूसरे किनारे

पर मनुष्य है। इन दोनों के बीच में सब जन्तुओं की एक ऐसी शृंखला की कल्पना की जा सकती है, जिसमें जन्तु उत्तरोतर उन्नत और उन्नत हैं।

ऐसी शृंखला कल्पना की जा सकती है, परन्तु इस शृंखला से वह परिणाम जो विकासवादी निकालते हैं, सिद्ध नहीं होता। यदि एक स्थान पर एक बम्ब गिरने से चट्टान अनेक रूप और राशियों के टुकड़ों में विभक्त हो जाये तो यह कहना कि छोटे-से-छोटे टुकड़े से लेकर बड़े से बड़े टुकड़े तक चट्टान के सब टुकड़े राशि के विचार से ऐसी शृंखला में रखे जा सकते हैं जिसमें एक टुकड़े से दूसरा टुकड़ा बड़ा और बड़ा है। इसलिये एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े की और छोटे से बड़े टुकड़े की उत्पति हुई है, सत्य नहीं होगा। इसी प्रकार जन्तुओं को एक शृंखला में रख देने से यह सिद्ध नहीं होता कि एक जन्तु से दूसरा जन्तु बना है अथवा सरल प्रकार के जन्तु से विषम प्रकार का जन्तु बना है। यदि इससे कुछ सिद्ध होता है तो वह यह है कि सृष्टि उत्पत्ति के समय एक समान वातावरण होने से बनने वाले जन्तुओं में भी समानता है। सब जन्तु, प्रकृति आत्मा के संयोग से बने हैं। सब जन्तु हवा, पानी, ताप इत्यादि की समान परिस्थितियों में उत्पन्न हुए हैं और यदि भारतीय विचारधारा को मानें तो क्योंकि सब प्राणियों की सृष्टि करने वाले परमात्मा है। इस कारण प्राणियों में समानता है। यह इसी प्रकार है जैसे एक विस्फोट से चट्टान छोटे बड़े अनेक प्रकार और राशि के टुकड़ों में विभक्त हुई है, वैसे ही सृष्टि की उत्पत्ति के समय अनेक जीव-जन्तु अनेक रूप-राशियों के, ईश्वर के करने से उत्पन्न हुए हैं।

निष्कर्ष

विकासवाद सिद्धान्त नहीं है। और यह किसी प्रकार से भी परीक्षित सच्चाई नही है। यह एक कल्पना है जिसको न तो किसी वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध किया गया है अथवा किया जा सकता है और न ही इसको किसी युक्ति से व्यवहारिक कहा जा सकता है। इसके प्रवक्ता डार्विन ने भी इसे एक सिद्धान्त (principle) माना था और न ही इसे एक सिद्ध होने के योग्य बात (hypothesis) स्वीकार किया था। उसने इसे एक विचार (theory) की संज्ञा ही दी थी। यह विचार मात्र ही है। भारतीय ऐतिहासिक परम्पराओं के अनुसार तो यह मिथ्या विचार है। भारतीय परम्परा यह है:—

(१) विकास का अर्थ प्रकृति में परिणाम अथवा परिवर्तन से ही है। इस सृष्टि के बनने में मूल प्रकृतिसे वर्तमान चराचर जगत के बनने तक समय लगा है और अनेक स्तर रहे हैं। परन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रकार से और भिन्न-भिन्न कालों में तथा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में

उत्पन्न हुए हैं। प्रकृति परिणामी है और परिणाम श्रृंखला-बद्ध एवं एक-दूसरे के बाद हो सकते हैं।

(२) प्राणी की सृष्टि केवल प्रकृति का परिणाम नहीं है। इसमें प्रकृति के अतिरिक्त चेतन शक्ति का समावेश है। चेतन भारतीय परम्पराओं के अनुसार परिणामी नहीं है। इस कारण इस के संयोग से बने प्राणी भी अपरिवर्तनशील हैं। सब प्राणी सृष्टि के आदि में जैसे बने थे वैसे ही अब हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि आदि काल का मनुष्य और आज के मनुष्य में मानवोचित गुण वही हैं जो कभी थे। शरीर प्रकृति का रूप है। इसमें उन्नति अथवा ह्रास हो सकता है। और कदाचित होता रहा है, परन्तु प्राणी जो शरीर और जीवात्मा का संयोग है वह तो वैसे का वैसा है।

(३) प्राणी प्राणी में भेद जीवात्मा के पूर्व कर्मों के फलस्वरूप है। जैसे जिस जीव के कर्म होते हैं उसी प्रकार का शरीर उसको मिलता है। यह तो इस प्रकार है जैसे एक जूते की दुकान पर अनेक रूप रंग के और आकार विस्तार के जूते पड़े रहते हैं। और जिसके पांव में जो पूरा आता है अथवा जितना दाम उसकी जेब में होता है, वैसा ही जूता वह प्राप्त कर सकता है। आत्मा अपने पूर्व-कर्मों के फलों को लिए हुए इस संसार रूपी दुकान में आई है। और अपने कर्म-फल रूपी निधि से संसार में शरीर पाती है। सब प्रकार के शरीर बने हैं और जीवात्मा अपने कर्म-फल के अनुसार उसको प्राप्त करता है। यह बात आदि सृष्टि से चली आ रही है और अनन्त काल तक चलेगी।

(४) मानवोचित गुण उन गुणों को कहते हैं जो जीवात्मा के मानव शरीर के संयोग से उत्पन्न हुए हैं। वे अपरिवर्तनशील हैं। उनसे ही हम एक मनुष्य और एक पशु अथवा एक पेड़ पौधे में भेद-भाव देखते हैं। मनुष्य न कभी पशु था और न कभी पशु बनेगा। मनुष्य की सन्तान मनुष्य ही रहेगी और पशु की पशु। जीवात्मा कर्महीन हो जाने से मनुष्य शरीर छोड़ देगा और पशु के शरीर में चला जायेगा। इसके लिए परमात्मा ने मरण और जन्म की व्यवस्था की है।

विकासवाद और इतिहास

भारतीय सिद्धान्त यह है कि सब प्राणी पृथक्-पृथक् समान रूप में उत्पन्न हुए थे। उनमें मनुष्य भी थे और वे आदि सृष्टि से ही ऐसे ही चले आते हैं जैसे आज हैं। अन्तर बुद्धि के विकास अथवा ह्रास में होता है। यह विकास अथवा ह्रास अनेकानेक कारणों से घटता है। भारतीय परम्परा यह है कि आदि सृष्टि में मनुष्य को ज्ञान परमात्मा ने दिया था। जो मनुष्य

अपने पूर्वकल्प के कर्मानुसार श्रेष्ठ और निर्मल बुद्धि रखते थे वे ईश्वरीय ज्ञान को समझ उन्नत होते चले गये और जो अपने हीन कर्मों के अनुसार हीन बुद्धि रखते थे, वे उस ज्ञान को समझ नहीं सके और वैसी ही उन्नति नहीं कर सके जैसे पहले कर सके थे।

ईश्वरीय ज्ञान का नाम वेद है। यह आदि सृष्टि में मनुष्य को मिला था और अभी तक मनुष्य ने इसको सुरक्षित रखा है।

उक्त आधारों पर भारत में इतिहास की परम्परायें चली हैं, परन्तु युरोपीय परम्परायें इतिहास की प्रक्रिया का आधार विकासवाद मानती हैं। अतः यह समझा जाता है कि आदि सृष्टि में मनुष्य पशुवत् था और धीरे-धीरे मनुष्य में विकास हो रहा है और यह उत्तरोत्तर उन्नत और उन्नत हो रहा है।

युरोपीय और भारतीय विचार में भेद

उक्त मतभेद से इतिहास के लिखने में भारी अन्तर पड़ गया है। जब यह माना जाता है कि आदि काल में मनुष्य पशुवत् था और तब से मनुष्य में उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है तो इतिहास का तार-तम्य और मनुष्य की उपलब्धियों की श्रृंखला उन्नत और उन्नत होनी चाहिये और यदि यह मानें कि आदि सृष्टि में मनुष्य को ईश्वरीय ज्ञान मिला था तो इतिहास का तार-तम्य उन्नत से ह्रास की ओर जाना चाहिए। जहाँ-जहाँ ईश्वरीय ज्ञान की परम्परा अटूट रही है, वहाँ-वहाँ मनुष्य में मनुष्योचित गुण बने रहे हैं और जहाँ पर इस ज्ञान की परम्परा विस्मरण हो गई है, वहाँ मानवोचित गुण ह्रास को प्राप्त हुए हैं।

इस दृष्टि से ही इतिहास में अन्वेषण और लेखन होना चाहिए। इतिहास के अन्वेषण और लेखन में विकासवाद की बाधा कि प्राचीन संस्कृति और सभ्यतायें आज की संस्कृति और सभ्यताओं से हीन होनी ही चाहिएं, मानने योग्य नहीं है।

अन्त में यदि संस्कृति और सभ्यता में अन्तर लिख दिया जाये तो समझने में सुगमता होगी। संस्कृति मन और आत्मा के गुणों की सूचक है। उदाहरण के रूप में शाश्वत धर्म मनुष्य को पशु से भिन्न प्रकट करता है। पशु शरीर की प्रेरणा के अधीन जीवन-यापन करता है। भूख लगती है तो खाता है। प्यास लगती है तो पीता है। परन्तु मनुष्य का आचरण जो मन, बुद्धि और आत्मा के संयोग से बनता है, इससे विलक्षण होता है। मनुष्य शारीरिक आवश्यकताओं की अपेक्षा आत्म-कल्याण को अधिक महत्व देता है। यह आचरण सांस्कृतिक आचरण कहलाता है।

शारीरिक सुख-सुविधा की प्राप्ति के अर्थ किया गया आयोजन सभ्यता कहलाता है। जब शारीरिक सुख-सुविधा मन, बुद्धि और आत्मा के संयोग से कल्पित कल्याण के समरूप हो जाये तब संस्कृति और सभ्यता एक दिखाई देने लगते हैं और जब शारीरिक सुख-सुविधा में मन, बुद्धि और आत्मा के संयोग से कल्पित कल्याण विरोधी हो जायें तो संस्कृति और सभ्यता पृथक्-पृथक् दिखाई देने लगती हैं। संस्कृति मनुष्य के स्वरूप की सूचक है और सभ्यता पशु के।

अतएव इतिहास की परम्पराओं का मूल्यांकन करते समय यह देखना होगा कि जाति अथवा देश में संस्कृति और सभ्यता समान रूप से और दोनों के सहयोग से जीवन चल रहा है अथवा नहीं। जहाँ संस्कृति को छोड़कर सभ्यता पनपने लगेगी वहाँ मानव ह्रासोन्मुख माना जायेगा और जहाँ संस्कृति सभ्यता पर शासन करेगी, वहाँ मानव में उन्नति हो रही मानी जायेगी।

(पृष्ठ ३१ का शेष)

अन्य मसजिदों से क्यों नहीं? यदि ऐसा होता तो क्या भारत में इसलाम-मूर्तिमान भारतीयता टिक सकती थी? इसलाम के उखड़ने के बाद ईसाई धर्म क्या यहां पनप सकता था? इन दोनों के मेल का यह कारण है।

१९६४ से १९६७ के मध्य विदेशों से ईसाई मिशनरिओं को ८२ करोड़ रुपया मिला है। इस अपार राशि से भारत में अँग्रेजी का प्रचार किया जा रहा है। नागालैंड और श्री अन्नादुराई को इसी कारण हिंदी वांछनीय नहीं है, पर सात समुद्र पार की अँग्रेजी प्रिय है। अँग्रेजी ने भारत का कुछ भी भला नहीं किया। भलाई-बुराई को मिलाकर देखना चाहिए। जिस भाषा ने भारत का अस्तित्व तक मिटाने का प्रयास किया, वह भारत का क्या हित कर सकती थी?

'विषकुम्भ पयोमुखम्' वाली बात को न भूलना चाहिए। अँग्रेजी का प्रसार और प्रचार भारत-विद्रोह और भारत के प्रति घृणा फैलाता है। क्या इस सत्य से इनकार किया जा सकता है?

क्या महर्षि वाल्मीकि डाकू थे ?

○

श्री राजेन्द्र सिंह

(श्री राजेन्द्र सिंह के इससे पूर्व दो खोजपूर्ण लेख 'शाश्वत वाणी' के विगत अंकों में प्रकाशित हो चुके हैं। पाठकों के लिए अब वे अपरिचित नहीं रहे। अछूते विषय एवं दृष्टिकोण पर विचार एवं अन्वेषण करना उनकी अभिरुचि बन गई है। निरन्तर अध्ययन एवं सतत अध्यावसाय उनकी अभिरुचि को परिष्कृत करता रहता है। प्रस्तुत लेख द्वारा उन्होंने महर्षि वाल्मीकि के विषय में प्रचारित भ्रम का निवारण किया है।)
—सम्पादक

मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामके चरित्र का वर्णन करने वाले महर्षि वाल्मीकि के विषय में लोगों में यह भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि महर्षि आरम्भ में डाकू थे, और उनका आरम्भिक आचरण शूद्रों के समान था। इस प्रचलित भ्रान्त धारणावाली कथा आनन्द रामायण में उपलब्ध होती है। वस्तुतः इस कथा की पुष्टि वाल्मीकीय रामायण से नहीं होती।

आनन्द रामायण में दी गयी कथा में—

पप्रच्छ मुनिवाल्मीकिं सभायां रघुनन्दनः।
ममावतारत पूर्वं त्वया मच्चरितं कृतम्।
कथां ज्ञातं त्वया पूर्वं केन त्वमुपदेशितम्॥
—आनन्द रामायण १४।३७

(रघुनन्दन राम ने सभा में मुनि वाल्मीकि से पूछा कि आपने मेरे अवतरित होने से पूर्व ही मेरा चरित लिख डाला था, सो वह आपको पूर्व ही कैसे विदित हुआ ? किसने वह आपको उपदिष्ट किया ?)

श्रीराम के इस प्रकार किये प्रश्न के उत्तर में महर्षि वाल्मीकि ने बताया कि पूर्व जन्म में वे एक व्याध थे। आगे कथा वही है जो लोक में प्रसिद्ध है। अर्थात् महर्षि का डाकू होना और सप्त ऋषियों को वाल्मीकि का लूट लेना। फिर

महर्षियों के उपदेश से वाल्मीकि के ज्ञान-चक्षुओं का खुलना। मरा-मरा का गुरुमन्त्र लेकर वाल्मीकि द्वारा राम-राम (मरा-मरा) का जाप करना इत्यादि बातें इस कथा में दी गयी हैं। पूर्ण कथा में निम्न बातें उल्लेखनीय हैं—

(१) श्रीराम के अवतरित होने से पूर्व ही रामायण महर्षि वाल्मीकि द्वारा लिखी गयी।

(२) महर्षि वाल्मीकि की धर्मपत्नी कान्तिमति उनके देहान्त पर साथ ही सती हुई।

(३) महर्षि का आरम्भिक जीवन शूद्रों के समान था।

ध्यानपूर्वक विचार करने पर विदित होता है कि उपर्युक्त तीनों बातें असङ्गत हैं। इनकी असंगति इस प्रकार है—

(१) वाल्मीकीय रामायण के आरम्भ में महर्षि वाल्मीकि देवर्षि नारद से पूछते हैं कि इस समय इस पृथिवी-लोक में सभी श्रेष्ठ गुणों से युक्त व्यक्ति कौन है? इसके उत्तर में देवर्षि नारद उन्हें दशरथनन्दन श्रीराम का परिचय देते हैं।

यदि वाल्मीकि मुनि ने रामायण की रचना पूर्व ही कर ली होती तो उन्हें श्रीराम का परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता कदापि न पड़ती। रामायण में अति स्पष्ट लिखा है—

ब्रह्माजी वाल्मीकि से कहते हैं—

रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्मात्मनो गुणवतो लोके रामस्य धीमतः॥
वृतं कथय वीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्।
रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृतं तस्य धीमतः॥

वाल्मीकीय रामायण- बालकाण्ड २।३२, ३३

हे ऋषिसत्तम्! अब उसी छन्द (कौञ्च पक्षी वाला छन्द) में तुम धर्मात्मा एवं बुद्धिमान् राम का चरित गान करो। तुम उन धीर-गम्भीर राम का गुण उसी क्रम से वर्णित करो, जैसा कि तुमने नारद से सुना है।

एक अन्य स्थान पर लिखा है—

श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मात्मा धर्मसंहितम्।
व्यक्तमन्वेषते भूयों यद्वृतं तस्य धीमत॥

बालकाण्ड ३।१

(नारद के मुखसे) अपने काव्य (रामायण) का धर्मयुक्त और हितकर सार-विषय सुनकर वाल्मीकि राम के उन चरितों को सोचने लगे जो उन्हें विदित

नहीं थे।

इसी प्रकार एक दूसरे स्थान पर भी लिखा है—

प्राप्तराजस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवनृषिः।
चकार चरित्रं कृत्सनं विचित्रपदमात्मावान्॥

—बालकाण्ड ४।१

अर्थात्—राम के राज्य पा लेने पर ऋषि वाल्मीकि ने विचित्र पदों द्वारा राम के चरित्र का वर्णन किया।

वाल्मीकीय रामायण के उपर्युक्त श्लोकों से ज्ञात होता है कि महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना श्रीराम के जन्म से पूर्व नहीं की थी।

(२) पति के साथ ही सती होने की प्रथा अति प्राचीन काल में प्रचलित नहीं थी। इस सन्दर्भ में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती पूना नगर में दिये गये अपने १२वें व्याख्यान में कहते हैं—

'पाण्डु की एक रानी माद्री सती हो गयी थी। सती होने के लिये वेद की आज्ञा नहीं है, किन्तु सती होने की कुरीति पहले पहिल पाण्डु राजा के समय से चली।'

(आर्य पुस्तक भण्डार से प्रकाशित)

उपदेश-मञ्जरी पृष्ठ १४१

इससे स्पष्ट है कि सती होने की प्रथा रामकाल में नहीं थी। अतः वाल्मीकि की पत्नी के सती होने की कथा काल्पनिक है।

(३) महर्षि वाल्मीकि को डाकू बताते हुए आनन्द रामायण में कहा गया है—

अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः।
जन्ममात्रं द्विजत्वं में शूद्रचारतः सदाः॥

राज उत्तरकाण्ड १४।१२१

अर्थात्—मैं (वाल्मीकि) पूर्व आयु में (इसी जन्म में) किरातों में रहा, उनके द्वारा ही पालित-पोषित हुआ, केवल जन्म का ही मैं द्विज (ब्राह्मण) था अन्यथा मेरा समस्त आचरण शूद्रों के समान ही था।

इसके सर्वथा विपरीत वाल्मीकीय रामायण के उत्तर-काण्ड में महर्षि वाल्मीकि श्रीराम द्वारा त्यागी गयी सीता को सर्वथा निर्दोष बताते हुए अपना परिचय श्रीराम को इस प्रकार देते हैं—

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्योमिमौ तु तव पुत्रकौ॥

बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता ।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं मिथिला ।।
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम् ।
तस्याहं फलमश्नामि अपापा मैथिली यदि ।।

उत्तरकाण्ड ९६ । १८, १९,२०

अर्थात्—हे राघवनन्दन ! मैं प्रचेतस मुनि का दसवाँ पुत्र हूँ । अनृत भाषण किये का मुझे कभी स्मरण नहीं है । ये (लव और कुश) तेरे पुत्र हैं । यह मैथिली (सीता) यदि दोषयुक्त है तो अनेक वर्षों तक मैंने जो तप किया है, उसका फल (पुण्य-फल) मुझे प्राप्त न हो । मैथिली यदि पापरहित है तो आजकल जो शारीरिक, वाचिक और मानसिक पाप मेरे द्वारा नहीं हुए हैं, उनका फल मुझे प्राप्त हो ।

यहाँ महर्षि वाल्मीकि स्पष्टतया कहते हैं कि मैंने कभी कोई पापकर्म नहीं किया है । वाल्मीकीय रामायण दूसरी रामायणों से पूर्व रचित है । अतएव उक्त वचनों का उसमें विद्यमान होना इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि वाल्मीकि कभी डाकू नहीं रहे और न ही उनका आचरण शूद्रों के समान था ।

इससे स्पष्ट है कि आनन्द रामायण वाली कथा कपोल-कल्पित है । महर्षि वाल्मीकि के डाकू अथवा शूद्र न होने के अन्य अनेकों प्रमाण हैं ।

दाक्षिणात्य रामायण उत्तर-काण्ड ९४। २५, २६ के अनुसार रामायण का रचयिता भार्गव वाल्मीकि था । इसी रामायण के बालकाण्ड ४।१ में लिखा है कि भगवान् वाल्मीकि ऋषि थे ।

भदन्त अश्वघोष लिखते हैं—

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः ।

बुद्धचरित १।४३

अर्थात्—पद्यमयी ग्रन्थ (रामायण) की रचना उस वाल्मीकि ने की जो च्यवन महर्षि के कुल में उत्पन्न हुआ था ।

विष्णु पुराण ३।३।१८ में वाल्मीकि का मूल नाम ऋक्ष बताया है ।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों कथन परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं । परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है ।

महर्षि च्यवन महर्षि भृगु के पुत्र थे । महाभारत वनपर्व में लिखा है :

भृगोर्महर्षेः पुत्रोऽभूच्च्यवनो नाम भारत ।
समीपे सरसस्तस्य तपस्तेपे महाद्युतिः ।।

स वल्मीकोऽभवद्दषिलेलताभिरिव संवृतः ।
कालेन महता राजन् समाकीर्णः पिपीलिकैः ।। १२२। १, ३

अर्थात्—महर्षि भृगु के पुत्र च्यवन हुए जो महातेजस्वी थे। उन्होंने उस सरोवर के समीप बैठकर तपस्या आरम्भ की। काल व्यतीत होने पर उनका शरीर चींटियों से व्याप्त हो गया और वे लताओं से आच्छादित हो गये और वल्मीक (बाम्बी) के समान प्रतीत होने लगे।

महर्षि भृगु के कुल में उत्पन्न होने के कारण च्यवन 'भार्गव' कहलाए और चूंकि वाल्मीकि च्यवन-कुल में ही उत्पन्न (अश्वघोष के अनुसार) हुए थे, इसलिये वे भी भार्गव कहलाए। महाभारत के उक्त श्लोकों से एक बात यह भी स्पष्ट होती है कि महर्षि वाल्मीकि का 'वाल्मीकि' नाम महर्षि च्यवन के वल्मीकिभूत होने के कारण ही पड़ा था, मरा-मरा का जाप करने से नहीं। वस्तुतः उनका मूल नाम ऋक्ष (विष्णु पुराण के अनुसार) ही था। च्यवन भार्गव के कुल में उत्पन्न होने से वे वाल्मीकि भार्गव कहलाये।

पं० भगवद्दत्त अनुसन्धानकर्त्ता कृत 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' द्वितीय भाग के पृष्ठ ९२ पर बताया गया है कि बाल्मीकि मुनि ने एक याजुष-शाखा का प्रवचन भी किया था। वे शाखा-प्रवक्ता होने से ऋषि थे।

महर्षि वाल्मीकि वेद-मन्त्रों के प्रवचनकर्त्ता होने से ऋषि थे, इसकी पुष्टि महाकवि कालिदास विरचित रघुवंश से भी होती है। वहाँ लिखा है—

सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत ।
संचस्कारोभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि ।।
साङ्ग च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रान्तशैश्वौ ।
स्वकृतिं गापयायास कविप्रथमपद्धतिम् ।। १५। ३१, ३३

अर्थात्—दशरथ और जनक के मित्र होने से मन्त्र-द्रष्टा (वेद-मन्त्रोंके द्रष्टा—प्रवचनकर्त्ता) वाल्मीकि ने सीता के पुत्रों (लव और कुश) के विधिवत् जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न किये। बालकों के बड़ा होने पर ऋषि ने दोनों को अङ्ग-सहित वेदों को पढ़ाकर अपनी रचना (रामायण) का गान सिखाया।

महाकवि कालिदास वाल्मीकि को मन्त्र-द्रष्टा लिखते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि वेद-मन्त्रों के प्रवचन कर्त्ता होने के कारण ऋषि थे।

वे महर्षि भृगु के ऋषि-कुल में उत्पन्न हुए थे। अतएव उनपर डाकू अथवा शूद्र होने का आरोप नितान्त भ्रान्तिपूर्ण है।

अतः महर्षि वाल्मीकि डाकू अथवा शूद्र नहीं अपितु एक ऋषि थे जिन्होंने कभी भी कोई पाप कर्म नहीं किया था।

कहानी

नैतिकता-अनैतिकता

○

श्री गुरुदत्त

कच के दानवपुर से इन्द्रपुरी में लौट आने पर भारी हर्षोल्लास मनाया जा रहा था। देवताओं ने कच को दानवों के गुरु शुक्राचार्य के पास संजीवनी विद्या सीखने के लिए भेजा था। यह निश्चय ही था कि वह बिना विद्या ग्रहण किये नहीं लौटेगा। अतः जब वह आया तो यह समझा गया कि वह विद्या ग्रहण कर ही आया है। अतः बहुत प्रसन्नता मनाई जाने लगी।

परन्तु जब कच ने इन्द्रराज की सभा में उपस्थित होकर वहाँ का पूर्ण वृत्तान्त बताया तो सब के उल्लासरूपी ज्वाला पर मानो शीत जल पड़ गया। वे समझ गये कि कुछ काल के लिए तो कच देवताओं को त्राण दे सकेगा, परन्तु इस अलौकिक विद्या से देवता सदा के लिए लाभ नहीं उठा सकेंगे।

सब देवता पहले के देवासुर संग्राम में देवताओं की हानि को स्मरण कर दुःखी थे। वे उस दुर्भाग्य से बचने की आशा के विलीन होने पर चिन्तित थे।

वे जानते थे कि कच के जीवन-काल में ही संजीवनी विद्या का लाभ उठाया जा सकेगा। उनके मुखों पर शोक और मुर्दनी के लक्षण दिखाई देने लगे थे।

इन्द्र ने कहा, "आचार्य पुत्र! क्या तुम समझते हो कि उस लड़की का शाप सफल होगा?"

"यह तो अभी भी हो गया है। मैं स्वयं तो मृतकों को जीवित कर सकता हूँ, परन्तु मैं इस विद्या को सिखाने का यत्न करके देख चुका हूँ। किन्तु सिखा नही सका।"

इन्द्र ने पूछा, "पर युवक! तुमने उस लड़की से विवाह क्यों नहीं कर लिया?"

"राजन् ! ब्राह्मण की भार्या असुर प्रवृत्ति की नहीं हो सकती। अपने स्वभाव और आचरण से तो वह मुझको भी असुर बना देती। मैं अपने कल्याण का विचार कर उस लड़की को अपनी पत्नी का स्थान नहीं दे सका।"

इन्द्र को यह युक्ति ठीक प्रतीत नहीं हुई। उसने समझा कि यह ब्राह्मण स्वभाव का ही फल है। यह विप्रवर राजनीति को नहीं समझता। इसी कारण यह सफलता प्राप्त नहीं कर सका। अतः उसने इस विषय में अपनी योजना चलाने का निश्चय कर लिया।

इन्द्र ने कच की पूर्ण कथा सुनी थी और उसकी समझ में यह आया था कि शुक्राचार्य अपनी पुत्री देवयानी से बहुत प्रेम करता है। उसी के कहने पर उसने तीन बार मारे जाने पर भी कच को जीवित किया था।

अतः इन्द्र ने पिता के पुत्री के प्रति स्नेह से लाभ उठाकर आचार्य और दानवराज में झगड़ा करा देने का निश्चय किया। इन्द्र जानता था कि असुर प्रवृत्ति कैसे रुष्ट हो शिष्टता का सीमोल्लंघन कर देती है। अतः वह वृषपर्वा के राज्य को चल पड़ा।

वह दानवपुरी के बाहर विचरता हुआ देवयानी और राजा की कन्या शर्मिष्ठा में झगड़ा कराने की योजना बनाने लगा।

(२)

इन्द्र को इसका अवसर मिल गया। ग्रीष्म ऋतु थी और शर्मिष्ठा के मन में वन-विहार एवं जल-विहार की इच्छा उत्पन्न हुई तो वह अपनी सखी-सहेलियों को लेकर वन में एक स्वच्छ जल की पुष्करिणी पर जा पहुँची। कुछ काल तक खेल-कूद और प्रमोद के उपरान्त सब सखियाँ पुष्करिणी में स्नान के लिए वस्त्र उतार, वस्त्रों को पुष्करिणी के किनारे पर रख जल में चली गईं। स्नान करते हुए रात हो गई और अंधेरा हो गया। इन्द्र किसी प्रकार से यह जान गया था कि दानवराज वृषपर्वा की लड़की शर्मिष्ठा भी सखियों में है। वह इसे सुअवसर जान वहाँ पहुँचा और उसने वेग की वायु चलाकर सब लड़कियों के वस्त्र एक-दूसरे के साथ मिला दिये।

बहुत रात बीतने पर शर्मिष्ठा तथा दानव कन्यायें जल से बाहर निकलीं और जल्दी-जल्दी में घरों को लौट जाने के लिए वस्त्र पहनने लगीं।

शर्मिष्ठा ओर देवयानी के वस्त्र अदल-बदल गये। देवयानी दानव राजकुमारी के वस्त्र पहिन अभी विचार ही कर रही थी कि वह किसके वस्त्र पहन गई है कि शर्मिष्ठा को ज्ञान हो गया कि उसके वस्त्र देवयानी ने पहन लिए हैं।

इस पर शर्मिष्ठा को क्रोध चढ़ आया और उसने कहा, "देवयानी। अंधी हो रही हो? ये किसके वस्त्र पहन लिए हैं?"

देवयानी को भी क्रोध चढ़ आया और बोली, "राजकुमारी! तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है जो यह नहीं जानती कि किसको अन्धी कह रही हो?"

"जानती क्यों नहीं? देख रही हूँ कि तुम एक भिखमंगे ब्राह्मण की लड़की हो।"

देवयानी क्रोध में बुद्धि खो बैठी और बोली, "हाँ, वह भिखमंगा तुम्हारे पिता की जान मुट्ठी में रखता है। तुम लोगों की जय-पराजय जिसकी मुट्ठी में है, मैं उसी ब्राह्मण की लड़की हूँ।"

इस पर तो शर्मिष्ठा भड़क उठी। उसने कह दिया, "मेरे पिता तुम्हारे अन्नदाता हैं और उसी अन्न के प्रतिकार में तुम लोग राजा की सेवा करते हो।"

यह बात सुन देवयानी आग-बबूला हो गई। उसने उसे और सब दानवों को जली-कटी सुनानी आरम्भ कर दीं। इस पर शर्मिष्ठा ने अपनी अन्य सखियों की सहायता से बलपूर्वक अपने वस्त्र देवयानी से उतरवाये और फिर उस निर्वसना को उठवाकर बन में एक कुएँ में डलवा दिया।

देवयानी को कुएँ में भूखा मरने के लिए छोड़ शर्मिष्ठा और उसकी सखियाँ नगर को लौट गईं। देवयानी कुएँ से बाहर न निकल सकने के कारण वहाँ पड़ी-पड़ी क्रोध में विदग्ध होती रही।

(३)

आधी रात से अधिक व्यतीत हो चुकी थी। देवयानी समझ रही थी कि वह उसी कुएँ में पड़ी-पड़ी मर जायेगी। इस समय किसी ने डोरी से लोटा कुएँ में लटकाया तो देवयानी की जान-में-जान आई। उसने कुएँ में से आवाज़ दी, "मुझे निकालो, मैं कुएँ में गिर पड़ी हूँ।"

इस पर पथिक ने पूछा, "कौन हो?"

"कन्या हूँ। किसी दुर्घटना से कुएँ में गिर पड़ी हूँ। आप कौन हैं?"

पथिक ने अपना परिचय देना उचित नहीं समझा। उसने केवल यह कहा, "एक प्यासा। कुएँ से जल निकालने आया हूँ।"

डोरी पकड़ देवयानी बाहर आई। पथिक ने उसका हाथ पकड़ कुएँ से बाहर कर लिया। उसे बाहर निकालते समय ज्ञान हुआ कि यह स्त्री सर्वथा नग्न है। उसने पूछ लिया, "तुम्हारे वस्त्र कहाँ हैं?"

घटाटोप अन्धेरा होने के कारण पथिक देख नहीं सका कि लड़की सुन्दर है अथवा सामान्य रूप-रेखा की है। लड़की ने भी पथिक को नहीं देखा

था कि वह कौन है ? लड़की ने अपने नग्न होने की कथा पथिक को बताई तो पथिक ने पूछा, "कहाँ रहती हो ?"

देवयानी ने अपने पिता का नाम और परिचय दिया तो पथिक ने कह दिया, "मैं तो उनका शिष्य हूँ। आचार्यजी कहाँ हैं ?"

इस पर देवयानी ने अपने पिताजी के शिष्य का नाम पूछ लिया। पथिक ने बताया, "मैं गंधार देश का शासक, देवलोक को विजय करने वाले विख्यात नहुष का पुत्र ययाति हूँ।"

देवयानी ने ययाति की रूप-राशि को स्मरण किया तो कह दिया, "आपने मेरा हाथ पकड़ा है। अतः मैं स्वयं को आपसे वरी गई मानती हूँ।"

"पर तुम गुरुकन्या हो। बिना गुरुजी की आज्ञा के मैं तुम्हें वर नहीं सकता। मैं आर्य हूँ और आर्य विवाह ही कर सकता हूँ।"

इस पर देवयानी इस तिरस्कार से लज्जित हो चुप रही। इसके विपरीत राजा अपने मन में गुरु कन्या के सौन्दर्य को स्मरण कर उससे विवाह की इच्छा करने लगा। इस पर भी गुरुकन्या को नग्न अपने साथ गुरुजी के आश्रम की ओर जाते हुए विचार कर वह गुरु कोप से भयभीत किसी प्रकार से भी शिष्टता की सीमा पार नहीं कर सका।

दोनों गुरु आश्रम पर पहुँचे तो आचार्य अपनी लड़की की अवस्था देख विस्मय में ययाति की ओर देखने लगा।

देवयानी ने अपनी अवस्था का कारण बताया तो आचार्य दानवराज की कन्या की धृष्टता पर क्रोध से लाल-पीला होने लगा।

ययाति ने गुरुजी से उनकी कन्या विवाह में माँग ली। इस पर आचार्य जी ने कहा, "मैं इस प्रस्ताव को स्वीकार करूँगा, परन्तु इससे पहले मैं अपना और अपनी लड़की के अपमान का बदला लेना चाहता हूँ।"

शुक्राचार्य ने वृषपर्वा के राज्य को छोड़ देवताओं के राज्य में जाने की घोषणा कर दी। इस पर वृषपर्वा और अन्य दानवों को चिन्ता लगने लगी। कच के संजीविनी विद्या सीख जाने से वृषपर्वा पहले ही भयभीत था। अब आचार्यजी के भी रुष्ट हो जाने से वह भागा-भागा आचार्यजी के आश्रम में आया और रुष्ट होने का कारण पूछने लगा।

आचार्यजी ने उसकी लड़की की उच्छृंखलता का वर्णन कर कह दिया, "राजन् ! मैं अब यहाँ नहीं रह सकता।"

वृषपर्वा ने बहुत मिन्नत-समाजत की। आचार्यजी से समझौता हो गया। आचार्यजी का कहना था, "मैं एक शर्त पर देवलोक में नहीं जा सकता। वह

शर्त यह है कि मैं अपनी लड़की का विवाह राजा ययाति से करने वाला हूँ। तुम्हारी लड़की शर्मिष्ठा मेरी लड़की की दासी बन, उनके साथ जायेगी। तब ही मैं यहाँ रहने और दानवों की सहायता का वचन दे सकता हूँ।"

वृषपर्वा 'मरता क्या न करता' वाली स्थिति में था। इस पर भी वह स्मरण कर कि उस की लड़की ययाति के प्रासाद में, भले ही दासी के रूप में जायेगी, पर एक दिन अपने सौंदर्य और राजसी स्वभाव के कारण महारानी बनती जायेगी, वह मान गया।

शुक्राचार्य भी इस संभावना को समझता था। इस कारण उसने ययाति से यह वचन ले लिया कि वह उसकी लड़की का निष्ठावान पति बनकर रहेगा।

(४)

देवयानी ययाति के राजमहल में पटरानी बन कर जा पहुँची। शर्मिष्ठा उसकी दासी के रूप में साथ थी। ययाति देवयानी से प्रेमपूर्वक रहने लगा, परन्तु कुछ ही काल में उसे शर्मिष्ठा की उपस्थिति अनुभव होने लगी। इस पर भी वह आचार्य जी के कोप से डरता था। परिणाम यह हुआ कि ययाति और शर्मिष्ठा का चोरी-चोरी संबंध बना। दोनों के सन्तान होने लगीं। देवयानी के एक पुत्र हुआ तो शर्मिष्ठा के भी पुत्र हुआ। यह समाचार जान देवयानी विस्मय में शर्मिष्ठा से जा पूछने लगी, "शर्मिष्ठा ! यह पुत्र कहाँ से पाया है ?"

"अपने पति से।"

"यही तो पूछ रही हूँ कि वह कौन है ?"

"एक ऋषि हैं। वे अपना नाम नहीं बताते।"

इस उत्तर से देवयानी चुप कर गई। समय पाकर उसके एक और लड़का हुआ। उसके पुत्रों का नाम था यदु और तुर्वसु। वे दोनों अति तेजस्वी थे।

शर्मिष्ठा के इसी काल में तीन पुत्र हुए। उनके नाम थे द्रुह्यु, अनु और पुरु। उसका रहस्य बना रहा और देवयानी प्रसन्न रही।

परन्तु राजा का शर्मिष्ठा से सम्बंध एक दिन प्रकट हो गया। एक दिन शर्मिष्ठा के लड़के उद्यान में खेल रहे थे कि राजा और देवयानी घूमते हुए वहाँ पहुँच गये। देवयानी ने पूछ लिया, "महाराज ! ये किस के लड़के हैं ?"

राजा ने बात छुपाने के लिए कह दिया, "इनसे ही पूछ क्यों नहीं लेतीं ?"

देवयानी ने पूछा, "कुमार ! तुम्हारा नाम क्या है ? तुम किस के पुत्र हो और तुम्हारे कुल का क्या नाम है ?"

बालक तो जानते थे। इस कारण उन्होंने राजा की ओर संकेत कर

बता दिया, "हमारे पिता ये हैं और हमारी माता शर्मिष्ठा देवी हैं।"

इस पर देवयानी पहले तो शर्मिष्ठा देवी पर बरसी। फिर वह राजा से रुष्ट हो अपने पिता के पास चली गई।

देवयानी ने अपने पिता को राजा के शर्मिष्ठा से गुप्त सम्बन्ध बनाने की बात बतायी तो शुक्राचार्य जी को क्रोध आ गया और उन्होंने उस समय अँजुली में जल ले ययाति को शाप दे दिया कि वह तुरन्त वृद्ध हो जाये।

(५)

ययाति एक वृद्ध व्यक्ति के समान, शरीर से शिथिल और स्त्री भोगने में असमर्थ हो गया। वह समझ गया कि उसने महर्षि से दिया वचन भंग किया है। इसी कारण उन्होंने शाप देकर उसे इस अवस्था में कर दिया है। तब ययाति आचार्य जी के पास पहुँचा और उनकी मिन्नत-समाजत करने लगा। उसने कहा, "मैं और आपकी लड़की दोनों अभी युवा हैं। हमारा मन भोग से अभी तृप्त नहीं हुआ। अतः मुझे शाप से मुक्त करें।"

लड़की के युवा अवस्था में ही विधवा समान जीवन व्यतीत करने की बात स्मरण कर शुक्राचार्य जी ने कह दिया, "मेरे शाप का तोड़ यह है कि कोई युवा अपना यौवन तुमको दान में दे तो तुम पुनः युवा हो सकोगे।"

ययाति को विश्वास था कि यदि वह देवयानी को निष्ठावान पति बन कर रहने का वचन देगा, तो वह अपने पुत्रों में से किसी का यौवन उसे दिलवा देगी। इस कारण वह देवयानी और उसके पुत्रों के पास पहुंचा, परन्तु देवयानी के पुत्रों ने अपने पिता की याचना को स्वीकार नहीं किया।

इस कारण ययाति ने देवयानी और उसके पुत्रों को अपने राज्य से निकाल दिया। वे खाण्डव वन के समीप जांगल देश में जाकर रहने लगे और जब बड़े हुए तो उन्होंने अपना राज्य स्थापित कर लिया। उनका कुल यदु कुल के नाम से विख्यात हुआ।

ययाति ने शर्मिष्ठा के पुत्रों से यौवन की भीख माँगी।

पुरु इस बात के लिये तैयार हो गया। इस पर पुरु के बीज कोष राजा को लगा दिये गये और समय पाकर वह युवा हो गया।

परन्तु शर्मिष्ठा यह जानती हुई कि यौवन उसके पुत्र का है, उसने राजा से सम्बन्ध रखने से इन्कार कर दिया। इस पर ययाति ने एक अप्सरा अश्वाची से विवाह कर लिया और दीर्घ-काल तक उसने यौवन का भोग किया।

नियत काल के व्यतीत हो जाने पर राजा ने अपना यौवन अपने पुत्र को वापिस कर दिया।

शाश्वत वाणी

१ भारतीय संस्कृति, भाररीय परम्पराओं एवं शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण के आधार पर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य समस्याओं पर विश्लेषणात्मक विचार प्रकट करने वाली यह एकमात्र हिन्दी पत्रिका है। अतः इसके प्रचार तथा प्रसार के लिये हम प्रत्येक से सहयोग की अपेक्षा रखते हैं।

२ अधिक-से-अधिक संख्या में पाठकों को शाश्वत वाणी का ग्राहक बनाइये।

३ शाश्वत वाणी में विज्ञापन देकर अथवा दिलाकर इसको अपने पैरों पर खड़ा होने में सहयोग दीजिये।

४ शाश्वत वाणी में विज्ञापन दर इस प्रकार हैं–

क. आधा पृष्ठ	२५ रुपये केवल
ख. पूरा पृष्ठ	४० रुपये केवल
ग. कवर दूसरा व तीसरा पृष्ठ	५० रुपये केवल
घ. कवर चौथा पृष्ठ	६० रुपये एक रंग में
	८० रुपये दो रंगों में।

वर्ष में छः अंकों में विज्ञापन के अनुबन्ध पर १५ प्रतिशत तथा बारह अंकों में विज्ञापन के अनुबन्ध पर २५ प्रतिशत छूट।

शाश्वत वाणी

३०/९० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

कुछ विशेष प्रचारित साहित्य

भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ भाग—१	ले० श्री सावरकर		२.५०
भाग—२	,,		२.२५
भाग—३	,,		४.००
१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर	,,		१८.००
हिन्दू पद पादशाही	,,		६.५०
हिन्दुत्व	,,		३.५०
मोपला (उपन्यास)	,,		४.००
गोमान्तक ,,	,,		४.००
मोपला-गोमान्तक संयुक्त पाकेट संस्करण	,,		३.००
अमर सेनानी सावरकर : जीवन झांकी	ले० शिवकुमार गोयल		२.५०
भारत और संसार	श्री बलराज मधोक		५.००
भारत की सुरक्षा	,,		४.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	,,		६.००
अन्तिम यात्रा	श्री गुरुदत्त	सजिल्द	३.००
अन्तिम यात्रा	,,	पाकेट संस्करण	१.००
धर्म संस्कृति और राज्य	,,		८.००
धर्म तथा समाजवाद—	,,	सजिल्द संस्करण	६.००
धर्म तथा समाजवाद—	,,	पाकेट संस्करण	३.००
देश की हत्या (उपन्यास)	,,	सजिल्द	६.००
देश की हत्या	,,	पाकेट संस्करण	३.००
जमाना बदल गया	,,	सजिल्द ४ भाग	३६.००
जमाना बदल गया	,,	पाकेट ६ भाग	२०.००
मेरे अन्त समय का आश्रय : श्रीमद्भगवद्गीता	भाई परमानन्द		५.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ता कुमार	सजिल्द	३.००
धरती है बलिदान की	,,	पाकेट संस्करण	१.००
हिमालय पर लाल छाया	,,		१२.००
शक्तिपुत्र शिवाजी	श्री सीताराम गोयल		१.५०

भारती साहित्य सदन (बिक्री विभाग)

३०/९० कनाट सरकस नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं राष्ट्र भारती प्रेस, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनॉट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

जून १९६८ वर्ष ८—अंक ६ रजि० क्र० ६६८९/६०

4-6-68

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी का जुलाई अंक

डा० मुखर्जी अंक

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि शाश्वतवाणी डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के जन्म दिवस के अवसर पर विशेषांक निकाल रही है। इस अंक में डा० मुखर्जी के जीवन, व्यक्तित्व एवं विचार-दर्शन पर लेख प्रकाशित किये जाएंगे। इस अंक के लेखक होंगे—श्री बलराज मधोक (भूतपूर्व प्रधान भारतीय जनसंघ), श्री मुखर्जी के सहबन्दी श्री गुरुदत्त एवं श्री टेकचन्द शर्मा, प्रोफेसर महावीर (दिल्ली प्रदेश जनसंघ के प्रधान)। इस अंक में अन्य लेख पूर्ववत् रहेंगे।

अंक का मूल्य ५० पैसे रहेगा तथा वार्षिक ग्राहकों को डाक से पूर्ववत् भेजा जायगा।

एजेन्टों से निवेदन—

इस अंक की अतिरिक्त प्रतियाँ उतनी ही छापी जाएँगी, जितनी प्रतियों का हमें आर्डर प्राप्त होगा। अतः एजेन्टों से निवेदन है कि वे अपनी आवश्यकतानुसार इस अंक का आर्डर भेज कर अपनी प्रतियाँ सुरक्षित करा लें। एजेन्टों को इस अंक पर विशेष कमीशन दी जायगी। कमीशन के विषय में पत्र-व्यवहार करें। अंक १ जुलाई को निकल रहा है। परन्तु इस अंक का आर्डर हमें १५ जून तक प्राप्त हो जाना चाहिए।

शाश्वत वाणी

३०/६० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

शाश्वत वाणी

[illegible]तस्य सानावधिं चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ० १०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
पं० भगवद्दत्त
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७-एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

संप्रदाय व सांप्रदायिक दंगे

पिछले वर्ष से देश में सांप्रदायिक दंगों की संख्या पुनः बढ़ने लगी है। इस विषय में सरकार की चिन्ता भी बढ़ रही है। सरकार का अर्थ शासक दल है। आज देश में दल-गत राज्य है और राज्य कांग्रेस दल का है। अर्थात् देश में सांप्रदायिक दंगों से कांग्रेस की चिन्ता बढ़ रही है।

कांग्रेस दल ने अपनी चिन्ता व्यक्त की है और फिर उस चिन्ता के निवारण का उपाय भी बताया है। कांग्रेस की कार्य-कारिणी ने यह मत प्रकट किया है कि देश में बहुसंख्यक समुदाय सांप्रदायिक है। वह अल्पसंख्यक समुदाय को पीड़ित कर रहा है और अल्पमत वालों की रक्षा करनी चाहिए। इस रक्षा के निमित्त अल्पमत वालों के लिए सरकारी सेवाओं में पर्याप्त स्थान सुरक्षित रखने चाहिएँ; शासन में और सेना में उनको पर्याप्त संख्या में भरती करना चाहिए; अल्प संख्या वालों की भावनाओं का मान करना चाहिये।

प्रश्न उठते हैं—इस देश में संप्रदाय कौन-कौन हैं ? उनमें किस की संख्या अल्प

है और किसकी अधिक ? बहुसंख्यक समुदाय दंगे करता है अथवा अल्पसंख्यक समुदाय ? साथ ही इन दंगों को रोकने के लिये सरकारी सेवाओं में अल्पसंख्यकों को पर्याप्त भाग देना है अथवा कुछ अन्य करना है ?

निःसन्देह भारत, जिसका दूसरा नाम इण्डिया है, में साम्प्रदायिकता बढ़ रही है। हम यह संकेत रूप में लिखना चाहते हैं कि इस देश में कितने सम्प्रदाय हैं और वे कौन-कौन से हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता मानव समाज को दो समुदायों में विभक्त करता है—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्तः आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ (१६-६)

(इस संसार में दो प्रकार की सृष्टि है। एक दैवी सम्पत्ति वालों की और दूसरी आसुरी सम्पत्ति वालों की।)

एक समय जनसंघ की कार्यकारिणी में कार्यकारिणी के ही एक सदस्य वैद्य गुरुदत्तजी ने कार्यकारिणी के आदेश पर एक प्रपत्र उपस्थित किया था। श्री गुरुदत्तजी ने उसमें यह कहा था कि व्यक्तियों, श्रेणियों और समुदायों को दैवी और आसुरी दो ही स्वभाव वालों में बाँटा जा सकता है। दैवी स्वभाव वालों से मित्रता और आसुरी स्वभाव वालों से शत्रुता रखनी चाहिये। जनसंघ के विषय में कहा जाता है कि वहाँ आप कुछ भी कहें, कचालू के पत्ते पर जल की भाँति प्रभाव विहीन होता है। अतः उस प्रपत्र का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। एक सदस्य, जो कदाचित् कचालू के पत्र से कम चिकने थे, एक दिन श्री गुरुदत्तजी से कहने लगे, "हमें दैवी और आसुरी नाम नहीं लेना चाहिये। इससे लोग नाराज हो जाते हैं।"

श्री गुरुदत्त ने इसका क्या उत्तर दिया, यह तो वे ही बता सकेंगे, पर हमें इन बुद्धिमान सज्जन की आपत्ति सारयुक्त प्रतीत हुई है। असुर तो क्या, हम समझते हैं कि किसी को देवता कहना भी ठीक नहीं। भला पाँच सहस्र वर्ष पुराना यह शब्द किस प्रकार जनसंघ जैसी प्रगतिशील संस्था के सदस्यों के लिये उपयुक्त हो सकता है। हजरत ईसा की बीसवीं शताब्दी में श्रीकृष्ण के घिसे-पिटे शब्द भला क्यों चलें !

अतः हम यहाँ अब दो अन्य नये शब्द प्रयोग कर रहे हैं। यों तो हैं ये भी पुराने, परन्तु आज कल की सभ्य समाज में प्रचलित हैं। हमारा कहना है कि मानव (एतदर्थ भारतीय) समाज में दो ही प्रकार के प्राणी हैं। एक बुद्धिमान् और दूसरे मूर्ख। अतः यहां भी, पूर्ण संसार की भाँति दो समुदाय हैं।

एक बुद्धिमानों का और दूसरा मूर्खों का। भारत में मूर्खों की संख्या बहुत अधिक है और बुद्धिमानों की बहुत कम।

मूर्ख समुदाय में अनेकानेक उप-समुपाय हैं। बुद्धिमानों में तो उप-समुदाय बन नहीं सके। उनमें बन सकते भी नहीं थे। कहावत है न, "अकलमन्दों की एक बात और मूर्ख अपनी अपनी।'

श्रीकृष्ण ने भी कहा है। हम फिर पाँच सहस्र वर्ष पुरानी बात कहने पर विवश हो रहे हैं। पर है वह मौडर्न भाषा में। भगवान् कहते हैं—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखाह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ २-४१ ॥

व्यवसायात्मिक बुद्धि एक होती है और अव्यवसायात्मिक बुद्धियाँ अनेक होती हैं। इसकी बहुत शाखायें होती हैं। संसार में और भारत में भी बुद्धिमान् एक मत हैं, परन्तु मूर्खों में अनेक मतमतान्तर हैं।

क्योंकि भारत में मूर्खों की संख्या बहुत अधिक है, इस कारण यहाँ मतान्तर भी बहुत अधिक हैं। इतने अधिक हैं कि उनकी गणना करनी भी कठिन है। दंगे मूर्ख मतान्तरों में होते हैं। कभी तो वे स्वयं करते हैं और कभी दूसरे मूर्ख मतान्तर वाले करा देते हैं। हाँ, बुद्धिमान कभी-कभी उन मूर्खों की लपेट में आते हैं तो पिट जाते हैं। बन्दर और बये की कहानी चरितार्थ हो जाती है।

एक बार वर्षा के समय किसी बये ने, अपने घोंसले में मजे में बैठे हुए, किसी बन्दर को वृक्ष पर वर्षा में भीगते देख कह दिया, 'भैया! अपना घर बनाकर क्यों नहीं रहते ?'

इस पर बन्दर ने कह दिया, "अबे टटैने से! मेरी हँसी करते हो ? लो, तुम भी मज़ा ले लो।" इतना कह बन्दर ने एक ही झटके में बये का घोंसला तोड़-फोड़ डाला।

ऐसी बात कभी बुद्धिमानों की हो जाती है।

प्राय: मूर्खों के मतान्तर ही परस्पर दंगा करते हैं। यह बात सर्वथा सत्य होने पर भी तब तक स्पष्ट नहीं हो सकती जब तक मूर्ख के लक्षण न लिखे जायें। अन्यथा प्रत्येक मूर्ख अपने को बुद्धिमान और अन्य सब को मूर्ख मानने लगेगा।

मूर्ख वह प्राणी है, जो निम्न लक्षण रखता है—

(१) जो अपनी नाक से आगे न देखे;

(२) जो सदा स्वार्थ का चिन्तन करता रहे, परन्तु स्वार्थ का ज्ञान न

रखता हो।

(३) जो अपने को सर्वज्ञ समझे और किसी दूसरे की बात सुनने को भी तैयार न हो। दूसरे की बात पर विचार करना तो सुनने के पीछे ही हो सके।

(४) अपने से पहले हो चुकने वालों को और अपने से बड़ों को मूर्ख समझे और अपने से आगे आने वालों को उन्नत माने।

(५) प्राप्त को सदा अपने ही परिश्रम से समझे और उस उपलब्धि पर फूल कर कुप्पा हो जाये।

वैसे तो मूर्खों के कुछ अन्य लक्षण भी हैं, परन्तु मुख्यतया ये ही हैं।

आज संसार में, और भारत में विशेष रूप से, एक भयंकर विषमता उत्पन्न हो रही है। वह यह कि कहीं भी मानव समाज में समुदाय बुद्धिमत्ता और मूर्खता के आधार पर नहीं बन रहे। आज समुदायों का आधार बन रहा है गांधीवाद, मार्क्सवाद, समाजवाद, इत्यादि। राजनीति में इनसे उतर कर हैं कांग्रेस पंथ, रिपब्लिकन पंथ, अम्बेदकर पंथ इत्यादि। उससे भी उतर कर हैं त्रिपाठी गुट्ट, गुप्ता गुट्ट, लोहिया गुट्ट, जोशी गुट्ट, रूसवादी और चीनवादी इत्यादि। ये सब अपने आप पर भिन्न-भिन्न लेबल लगाकर अनेक मत-मतान्तर बना रहे हैं। जनसंघी और अकाली भी इस पागलपन से अछूते नहीं। वहाँ भी अटल, मधोक और संत, तारासिंह इत्यादि गुट्ट हैं। एक बात स्पष्ट है कि ये सब के सब शुष्क ढांचे में बँधे हुए मत-मतान्तर ही हैं। कहीं भी बुद्धिमत्ता इनका आधार नहीं है।

ये सब के सब एक ही मत (मूर्ख मण्डल) के सदस्य हैं। यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि जब कोई बुद्धिमान इन सब को अपने विपक्षियों से विचार-विनिमय कर एकमत होने के लिये कहे तो ये कभी नहीं होते। यही कारण है कि स्वराज्य काल में इन मतान्तरों (दलों) की खूब सृष्टि हुई है। ये समय व्यतीत होने के साथ कम नहीं हो रहे। वरं दिन प्रतिदिन बढ़ते ही जाते हैं।

आज भारत की मूल समस्या ही यह है कि यहाँ एकमत रखने वाला दूसरा मत रखने वाले से झगड़ता है। यही दंगों का मूल बन जाता है। दंगा होने पर शासक (जो स्वयं एक मतान्तर का प्रतिनिधि है) उनमें निर्णय करता है। परिणामस्वरूप निर्णय मूर्खतापूर्ण होता है और फिर दंगे होते हैं।

यह है भारत में सम्प्रदायों की मीमांसा और उनमें दंगों के कारण। बुद्धिमान व्यक्तियों की कोई सुनता नहीं। भारत की सरकार यह कहती है कि

इस देश में दो मुख्य समुदाय हैं। एक हिन्दू और दूसरा मुसलमान। इसका यह भी कहना है कि हिन्दू बहुसंख्या में हैं और मुसलमान अल्पसंख्या में हैं। बहुसंख्यक हिन्दू इन दंगों में दोषी हैं।

यह विश्लेषण गलत है। कारण यह कि ऐसा कहने वाला दल स्वयं हिन्दू दल है। हमारा अभिप्राय यह है कि कांग्रेस में हिन्दू ही बहुत भारी संख्या में हैं। हिन्दुओं के मतों से ही वे सरकार बना सके हैं और, उनके कहने के अनुसार, हिन्दू ही दंगे करते हैं। अर्थात् कांग्रेसी ही दंगे करते हैं।

इसी कारण हम कहते हैं कि कांग्रेस एक मूर्खों का दल है और मूर्खों के वोटों से वह सरकार बना सका है। हमारा निदान उससे भिन्न है। हम हिन्दू मुसलमानों को दंगों में जिम्मेदार नहीं समझते। देश की विशाल मूर्ख जनता ही इसमें उत्तरदायी है।

इस विशाल मूर्ख जनता में कुछ तो लड़ते हैं, कुछ लड़ाते हैं और फिर कुछ इनके लड़ने पर फतवा पास करते हैं कि अमुक लेबल (नाम) वाले मूर्ख दोषी हैं और अमुक लेबल वाले मूर्ख पीड़ित हैं। समस्या यह है कि देश में मूर्खों की संख्या बहुत बढ़ गई है। इनके समुदाय अनेक हैं। यदि इनको कोई नहीं भी लड़ायेगा, तब भी ये लड़ेंगे।

यदि मूर्खों की संख्या बहुत अधिक रही तो उनमें उप-मतान्तर भी बहुत होंगे और उनमें दंगे भी बहुत रहेंगे। इसका इलाज सम्भव भी नहीं—कारण वर्तमान मूर्खों के मतों से निर्वाचित सरकार यह कर नहीं सकती। इसकी करनी से तो मूर्खों की संख्या में वृद्धि ही हुई है।

यह कहा जाता है कि सरकार शिक्षा का प्रसार अतिवेग से कर रही है। जब मतदाता शिक्षित हो जायेंगे तब निर्वाचित सरकार बुद्धिमानों की हो जायेगी, परन्तु पिछले इक्कीस वर्ष में शिक्षितों की प्रतिशत संख्या तो बड़ी है, साथ ही दंगों की संख्या भी बड़ी है और दंगों को मिटाने का वही उपाय इक्कीस वर्ष के उपरान्त पुनः स्वीकार किया जा रहा है, जिसने देश विभाजन की नींव डाली थी।

अंग्रेजी काल में हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते थे तो अंग्रेज सरकार अपने हित में और हिन्दू अपनी जान बचाने के लिये मुसलमानों को नौकरियाँ, पदवियाँ और अन्य सुविधायें देते थे। दंगे कम नहीं हुए, यद्यपि शिक्षा बड़ी है। शिक्षा के प्रसार से उपायों में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। इससे यह सिद्ध होता है कि यह दी जाने वाली शिक्षा, शिक्षा है ही नहीं। कदाचित् यह कुशिक्षा है। होनी भी यही चाहिये। कारण यह कि शिक्षा सरकार के

हाथ है और सरकार मूर्खों से निर्वाचित मूर्खों की है ।

पर बुद्धिमान है कौन ? बुद्धिमान् के लक्षण क्या हैं ? इस विषय में हम पुनः भगवान् कृष्ण की बात कहने पर विवश हो रहे हैं । कारण यह कि उनसे अधिक स्पष्ट लक्षण बताने वाला हमें कोई मिल नहीं रहा ।

भगवान् कहते हैं कि बुद्धियाँ तीन प्रकार की हैं :—(१) सात्त्विकी बुद्धि; (२) राजसी बुद्धि तथा (३) तामसी बुद्धि । इनमें सात्त्विकी बुद्धि ही ठीक है और वह ही ठीक पथ-प्रदर्शन कर सकती है ।

बुद्धियों के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ।।
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ।।
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ।।
गी० १८-३०, ३१, ३२ ।

इसका भावार्थ यह है कि जो व्यक्ति धर्म को अधर्म तथा कार्य को अकार्य मानता है, वह तामसी बुद्धि वाला है । वह व्यक्ति जो धर्म-अधर्म का विचार छोड़ कर केवल कार्य करने में ही विश्वास रखता है, वह राजसी बुद्धि वाला कहाता है । ठीक बुद्धि उसकी है जो धर्म-अधर्म में, कार्य और अकार्य में, स्वतन्त्रता और परतन्त्रता में भेद को जानता है और यह जानकर अपने कल्याण का कार्य करता है ।

संक्षेप में पूर्ण समस्या एक शब्द में इस प्रकार आ जाती है कि ठीक बुद्धि उस व्यक्ति की है जो धर्म और अधर्म में भेद को समझता है और धर्म का मार्ग ग्रहण करता है । ऐसा करने वाला बुद्धिमान कहाता है ।

धर्मात्मा पुरुषों का राज्य होगा और धर्मात्माओं की संख्या बढ़ेगी, धर्म की शिक्षा देने से । धर्म की शिक्षा मिलेगी धर्मात्माओं द्वारा शिक्षा दिये जाने से । अब पूर्ण समस्या का सार यह निकला कि साम्प्रदायिक दंगे होते हैं जनता में मूर्खों की संख्या बढ़ जाने से । इस कारण बुद्धिमानों की संख्या बढ़ानी चाहिये । बुद्धिमानों की संख्या बढ़ाने के लिये धर्म की शिक्षा होनी चाहिये । यह धर्मात्माओं के द्वारा शिक्षा का आयोजन करने से हो सकेगा । वर्तमान सरकार यह कर नहीं सकती । कारण कि यह मूर्खों की बनी हुई सरकार है । परन्तु धर्म क्या है ? इस विषय में हम अगले अंक में प्रकाश डालने का यत्न करेंगे ।

○

श्री अटलबिहारी बाजपेयी तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता

कालीकट जनसंघ के अधिवेशन के अवसर पर मुद्रित स्मारिका में श्री बाजपेयी जी का एक लेख छपा था। तब अटल जी जनसंघ के एक मान्य नेता मात्र थे। आज वे इस दल के प्रधान पद पर आसीन हैं। अतः अब उनकी वाणी पूर्वापेक्षा अधिक जनसंघ की वाणी माननी पड़ेगी।

अब श्री बाजपेयी की, उर्दू भाषा में छप रही एक मासिक पत्रिका के संवाददाता से भेंट छपी है। उस भेंट में उन्होंने स्मारिका वाले लेख की अपेक्षा और अधिक बलपूर्वक अपने मत की पुनरोक्ति की है। आपके कथन का सारांश यह है कि हिन्दू-मुसलमानों में रोटी-बेटी का सम्बन्ध होना चाहिये। इससे राष्ट्रीय ऐक्य में सहायता मिलेगी।

हम समझते हैं कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त आप यह विधान प्रचारित कर रहे हैं, वह इससे पूर्ण नहीं होगा। अपितु उस उद्देश्य की पूर्ति में बाधा पड़ेगी तथा भारत में राष्ट्रीयता निर्मूल हो जायेगी। हमारे इस कथन का इतिहास साक्षी है। दूसरी जातियों के विषय में जो भी आप कहें ठीक है, परन्तु मुसलमानों से रोटी-बेटी का सम्बन्ध रखने वाले सदा इस्लामी अन्तर्राष्ट्रीयता के समर्थक हुए हैं। किसी देश एवं किसी अन्य विचार के समर्थक वे कभी नहीं हुए। यह इस्लाम की विशेषता है।

इसमें कारण, इस 'समीक्षा' का विषय नहीं है। परन्तु इसके प्रमाण तो दिये जा सकते हैं। इस्लामी काल में जिस किसी ने भी खान-पान और विवाह का सम्बन्ध मुसलमानों से बनाया, वह और उसकी सन्तान मुसलमान हुई। यदि यह कह दिया जाये कि विदेशी मुसलमानों से अधिक कट्टर हुई तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

कुछ लोग घटनावश मुसलमानों के साथ खान-पान कर बैठे। वे पुनः हिन्दुओं में सम्मिलित नहीं हो सके। इस पर भी वे राष्ट्रीय रहे, परन्तु जैसे गांधीजी इत्यादि राजनीतिज्ञ नेताओं के संरक्षण में वे सबके सब कट्टर मुसल-

मान हुए और १९४६ में पाकिस्तान के समर्थक बने, उसी प्रकार अब श्री अटल बिहारी बाजपेयी के संरक्षण में वे पुनः होंगे।

श्री गुरु नानक, श्री कबीर, श्री दादू इत्यादि अनेकानेक गुरु, सन्त, महात्मा कहते रहे कि हिन्दू मुसलमान परमात्मा के समान पुत्र हैं, परन्तु जब राष्ट्रीयता की परख का समय आया तो ये नौ-मुसलमान विदेशीय मुसलमानों से अधिक पाकिस्तानी सिद्ध हुए।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि राष्ट्रीयता की समस्या खान-पान और रोटी-बेटी की समस्या नहीं है। यह समस्या कुछ और है। वह हम कई बार इस पत्रिका के स्तम्भों में लिख चुके हैं। उस ढँग से समस्या सुलझायें तो विवाह और खान-पान का सम्बन्ध स्वयमेव हो जायेगा।

श्री अटल बाजपेयी वास्तव में समस्या का सुझाव कुछ इस प्रकार कर रहे हैं कि किसी ईसाई पादरी को धोती-कुर्त्ता पहिना दें तो वह हिन्दू हो जायेगा। अथवा किसी पादरी ने अपना नाम सोमनाथ रख लिया तो वह ईसाइयत का प्रचार करना छोड़ देगा।

भला अराष्ट्रीयों से विवाह किस प्रकार राष्ट्रीयता उत्पन्न कर सकेगा? होगा यह कि विवाह सम्बन्ध अथवा किसी अन्य ऐसे ही सम्बन्ध से मनुष्य नीचाई को गिरेगा, राष्ट्रीय अराष्ट्रीय होगा।

पण्डित जवाहरलाल जी की बात दूसरी थी। वे तो अपने को राष्ट्रीय मानते ही नहीं थे। वे राष्ट्रीयता को एक विरोधात्मक विचार समझते थे। वे अन्तर्राष्ट्रीयता को राष्ट्रीयता से ऊंची बात मानते थे। जो भूमितल को पर्वत का शिखर मानने लगे, उसके लिये पतन की बात ही नहीं रह जाती। क्या श्री अटल बाजपेयी भी यही मानते हैं? तब तो हम समझते हैं कि मुसलमान और हिन्दू दोनों के लिये इस अराष्ट्रीयता के गढ्ढे में गिर जाना युक्त एवं श्रेय की बात होगी।

कम-से-कम जनसंघ और जनसंघ का निर्माता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तो ऐसा मानता प्रतीत नहीं होता।

मुसलमानों से विवाह सम्बन्ध तथा उनके साथ खान-पान का हम विरोध नहीं कर रहे, परन्तु राष्ट्रीय ऐक्य उद्देश्य बनाकर ऐसा नहीं हो सकता। यह न कभी इस उद्देश्य की पूर्ति कर सका है और न ही यह करेगा।

मुसलमानों के साथ खान-पान और विवाह सम्बन्ध के उद्देश्य दूसरे हैं। इस समय भारत में, उत्तरीय भारत में विशेष रूप में, खान पान मे भेद-भाव नहीं रहा। हम अटलजी से यह पूछते हैं, क्या इससे राष्टीयता मे वृद्धि

हो रही है ? अब तो हिन्दू मुसलमान युवक-युवतियों में सम्बन्ध भी पहले से अधिक हो रहे हैं और क्या यह सत्य नहीं कि साम्प्रदायिकता अंग्रेजों के काल से भी अधिक तीव्र और गहरी हो रही है।

साम्प्रदायिकता के विषय में एक विचार-गोष्ठी नई दिल्ली के श्री विट्ठल भाई पटेल भवन में इसी १० मई को हुई थी और उसमें भाग लेने वाले किसी भी वक्ता ने यह नहीं बताया कि रोटी बेटी के सम्बन्ध से सांप्रदायिक वैमनस्य मिट जायेगा।

यह कैसे मिटेगा ? यहाँ हम बतायेंगे नहीं। वास्तविक बात यह है कि ऐसे सम्बन्ध कदापि राष्ट्रीय ऐक्य बनाने में सफल नहीं होंगे। यह भूल है। इससे एक बात होने वाली है कि हिन्दू राष्ट्र जिसे हमारे जनसंघी भारतीय राष्ट्र मानते हैं, मूल चूल विनष्ट हो जायेगा। इतिहास का यही पाठ है।

यह कहा जाता है कि अटलजी का यह वक्तव्य नीतिपूर्ण है, इससे सफलता मिलेगी। श्री अटलजी से और जनसंघ से अधिक शक्तिशाली व्यक्ति और दल इस नीति का अवलम्बन कर असफल रह चुके हैं। यह नीति अशुद्ध है। यदि तो सत्य हृदय से इसको उचित मान स्वीकार किया गया है तो यह ध्यान में रखना चाहिये कि भारतवर्ष का एक सहस्र वर्ष का इतिहास इसको गलत घोषित कर रहा है और यदि यह व्यवहार धोखा देने के लिये अपनाया गया है, तो यह भी समझ लेना चाहिये कि इसका घातक परिणाम अपने पर ही होगा।

शाश्वत वाणी

१. भारतीय धर्म, भारतीय संस्कृति एवं भारतीय परम्पराओं के आधार पर देश की राजनैतिक, सामाजिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं पर विचार प्रकट करने वाली यह एक मात्र हिन्दी पत्रिका है।

२. प्रत्येक पाठक से पत्रिका के प्रचार एवं प्रसार की हम अपेक्षा रखते हैं। आप हमें निम्न प्रकार से सहयोग दे सकते हैं :—
क—पत्रिका में अपने विचार प्रकट करें।
ख—पत्रिका के अधिकाधिक पाठक एवं ग्राहक बनाएँ।

शाश्वत वाणी
३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

इतिहास में भारतीय परम्परायें

○

श्री गुरुदत्त

अभी तक इस लेखमाला में हम निम्न बातें लिख चुके हैं—

(१) इतिहास कब से आरम्भ किया जाये ? जगत् के उत्पत्ति काल से।

(२) जगत् उत्पत्ति के पूर्व क्या था ? तीन मूल पदार्थ थे। दो आत्म तत्त्व और एक जड़ तत्त्व।

(३) जड़तत्त्व अर्थात् प्रकृति का स्वरूप क्या था और इसमें परिवर्तन कैसे आरम्भ हुए तथा किस ढंग से चले ?

(४) जगत् में दो प्रकार की सृष्टि दिखायी देती है। जड़ और चेतन। ये क्या हैं और क्यों हैं ? दोनों में क्या अन्तर है ?

इससे पूर्व के लेख में हमने यह बताया था कि प्रकृति विभु है अथवा कणदार। हमने यह भी बताया था कि प्रकृति के व्यक्त रूप तथा जीवात्मा के संयोग से प्राणी की उत्पत्ति होती है।

जीवात्मा अपने पूर्व जन्म के कर्मफल से प्रेरित वर्तमान जन्म में आता है और उन कर्मों के कारण ही वर्तमान शरीर पाता है।

प्राणी में दो पदार्थ माने हैं। एक को क्षेत्र कहते हैं और दूसरे को क्षेत्रज्ञ। क्षेत्र का भगवद्गीता में इस प्रकार वर्णन है—

महाभूतान्यहंकरो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः।।
इच्छा द्वेषः सुखंदुःखं संघातश्चेतना धृति :।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।

गी० १३-५, ६।

क्षेत्र में महाभूत, अहँकार, बुद्धि और अव्यक्त आते हैं। इनके अतिरिक्त दस इन्द्रियाँ, एक मन, पांच इन्द्रियों के विषय तथा इनके संघात से इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, चेतना और कर्म करने की सामर्थ्य—सबके समास को क्षेत्र कहते हैं। यही प्राणी कहाता है।

इसका अभिप्राय यह है कि क्षेत्र ही प्राणी है। प्राणी में पंचभौतिक शरीर, मन, इन्द्रियां, बुद्धि और अहंकार के साथ एक अव्यक्त (जीवात्मा) का समास है। यहाँ अव्यक्त से अभिप्राय जीवात्मा है। वही शरीर का ईश्वर (स्वामी) है। यह मृत्यु के समय एक शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर में कैसे जाता है ? इस विषय में गीता ने लिखा है—

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ गी० १५-८।

जीवात्मा जो शरीर का स्वामी है, जब एक शरीर को त्यागता है, तो दूसरे शरीर को ऐसे प्राप्त होता है, जैसे किसी एक आगार से वायु गंध को दूसरे आगार में ले जाती है।

आदि से हिरण्यगर्भ में ही, जहाँ एक ओर देवता (पार्थव, जलीय, वायवी) बने रहे होते हैं, वहां सूक्ष्म पंचभौतिक शरीर और उनमें जीवात्माओं का समावेश भी होने लगता है। इस प्रकार जहाँ सूर्य, चन्द्र, वरुण, इन्द्र, मरुत इत्यादि देवता बन रहे होते हैं, वहाँ प्राणियों के सूक्ष्म शरीर बनने लगते हैं और उनमें जीवात्मा प्रवेश करने लगते हैं। इस समय हिरण्यगर्भ एक अति विशाल अण्डे के समान गोलाकार और चक्राकार गति का हो जाता है और दो भागों में फट जाता है।

ताभ्याँ स शकलाभ्या च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टापवां स्थानं च शाश्वतम् ॥
मनु० १-१३।

अण्डे के विभक्त होने से देवता पृथिवी (पार्थव अंशों) से पृथक् हो गये। दोनों के बीच में आकाश बन गया।

यहाँ देवताओं से अभिप्राय है मरुतादि, जो पार्थव नहीं हैं। सूर्य भी पार्थव नहीं। पार्थवों में ठोस नक्षत्रादि ही लिये जाते हैं। पृथ्वी, जिस पर हम रहते हैं, इन नक्षत्रों में एक है और बहुत छोटी है। सूर्य, वरुण इत्यादि को देवता इस कारण कहते हैं क्योंकि वे दिव्य शक्तियों के रखने वाले हैं। वरुण मरुतादि अन्तरिक्ष में उपस्थित हैं।

तेषां त्ववयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम्।
सन्निवेश्याऽऽत्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥
यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट्
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥
मनु० १-१६, १७।

इन छः सूक्ष्म ओज युक्त अवयवों से अपनी मात्राओं (तन्मात्राओं अर्थात् शक्तियों) की सहायता से सब भूत बने । इससे वे छः सूक्ष्म ब्रह्म का शरीर हो गये ।

इसका अभिप्राय यह है कि सब भूत सूक्ष्म रूप में तब ही बन गये थे जब परमात्मा अण्डे में परिवर्तन कर रहा था और तब वह ब्रह्मा का मूर्त रूप कहाया । वे छः ओज युक्त पदार्थ क्या हैं ?

इन छः पदार्थों का हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं । ये सब के सब प्रकृति के प्रथम विकार, महत् से बने थे । इनके नाम हैं—भूमि, जल, अनिल, वायु, आकाश और अहंकार । इन छः से ही स्थूल भूत बने हैं ।

जब पृथ्वी तथा सूर्य चन्द्रादि देवता-गण बने और उनके भीतर व्योम बन गया तो आदित्य और उसमें उपस्थित अग्नि तथा वायु तीनों अपनी तरंगों द्वारा मन्त्र उच्चारण करने लगे । इन तरंगों को, किरणों में उपस्थित ऋषि-गण सुन कर समझने लगे । ये वेद थे ।

जब पृथिवी पर मानव सृष्टि हुई तब वेद लिपिबद्ध किये गये । यह करने वाले मानव विद्वान् थे । वे भी ऋषि कहाये । (मनु० १-२३, २१)

भारतीय परम्परा के अनुसार इन वेद मंत्रों के शब्दों से ही पृथिवी पर के सब पदार्थों के नाम और उनके कर्मों के नाम दिये गये । सूक्ष्म रूप में प्राणी तो तब ही बन गये थे, जब हिरण्यगर्भ में देवता इत्यादि बन रहे थे । वेद भी शब्द रूप में तब से ही प्रकट होने लगे हैं । कदाचित् आदित्य इत्यादि देवता अभी भी उनका उच्चारण कर रहे हैं । सृष्टि के आरम्भ में ऋषिगण इसको समझ लिपिबद्ध कर गये थे, परन्तु अब उनको पूर्ण रूप में समझने वाले नहीं रहे । अतः ऋषियों द्वारा लिपिबद्ध किये वेदों से ही काम चलाया जा रहा है। ऐसा स्वीकार किया गया है कि सूर्य में ही अग्नि और वायु हैं, जो मंत्रोचारण कर रहे हैं । इस विषय में वेद स्वयं कहता है—

बुधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥

ऋ० ३-३४-७

सूर्य में (विवस्वतः सदवे) बुद्धिमान् इन्द्र (बुधेन्द्रो) अर्थात् परमात्मा जो सज्जनों का पालन करने वाला है, बहुत से ऐश्वर्यवान देवताओं द्वारा (देवेभ्यः) कही गयी (उक्थेभिः) वाणी विद्वान प्राप्त कर उपदेश करें ।

इसी अभिप्राय का एक और मंत्र है—

पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवद् गर्भे अन्तः।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥

ऋ०-१०-१७७-२।

अर्थ है—(पतङ्गः) सूर्य (मनसा) परमात्मा से (वाचं) वाणी को (बिभर्ति, धारण करता है। उस वाणी को (गन्धर्वः गर्भे अन्तः) गन्धर्व गण जो सूर्य के भीतर रहते हैं (अवद्) कहते हैं। (तां) उस वाणी (द्योतमानां) अर्थ युक्त (स्वयं) स्वरों को अर्थात् शब्दों को (कवयः) विद्वान लोग (ऋतस्य पदे) ऋग्वेद के मंत्रों में (निपान्ति) भली प्रकार कहते हैं।

यह मंत्र तो पहले से अधिक स्पष्ट है। इस प्रकार वेदों में ही वेदों की उत्पत्ति का प्रकार बताया है।

अभिप्राय यह है कि सूर्य के बनते ही परमात्मा की कृपा से उसमें शब्द तरंगें उठने लगीं। वे शब्द तरंगें चारों ओर प्रसारित होने लगीं। अन्तरिक्ष में स्थित और पीछे जब पृथिवी पर मानस सृष्टि हुई, तब ऋषियों और विद्वान लोगों ने उस वाणी को सुना, समझा और फिर ऋग्वेद के मंत्रों में गान किया।

तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणाँ महौजसाम्।
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भयवत्यव्ययाद्व्ययम्।

मनु० १-१९।

तब उस महा ओजवान् परमात्मा ने इन सात (पञ्च महाभूत, अहँकार और जीवात्मा) से मूर्तिमान जगत् बनाया। तदनन्तर इस पर प्राणियों की सृष्टि हुई।

पृथिवी पर वनस्पतियों के उत्पन्न होने से पूर्व के परिवर्तन इस प्रकार लिखे हैं—

स श्रान्तस्तेपानः फेनमसृजत।—स श्रान्तस्तेपानो मृदं शुष्कापमूष सिकतं शर्कराम् अश्मानम् अयो हिरण्यम्-ओषधिवनस्पति असृजत। तेनेमां पृथिवीं प्राच्छादयत।

शत० ब्रा० ६-१-१-१३।

प्रजापति ने कुछ काल तक ठहरने के उपरान्त इस पृथ्वी पर पहले (१) फेन, तदनन्तर (२) मृत् (मिट्टी) तत्पश्चात् (३) शुष्कापम् (४) ऊष (५) सिकता (६) शर्करा (७) अश्मा (८) अयः और हिरण्य तदनन्तर (९) हिरण्य से औषधि-वनस्पति बनाईं।

यहाँ यह समझने की आवश्यकता है कि वनस्पतियाँ हिरण्यगर्भ से आयीं।

वनस्पतियों के उपरान्त प्राणी उत्पन्न हुए। ऐसा वर्णन है कि जब पृथिवी पर जल वायु अनुकूल हुआ, वनस्पतियाँ तथा भोजनार्थ उत्पन्न हुए, तब विराट पुरुष (एक अथवा अनेक) बने। उसके फटने पर युवा प्राणी (पुरुष-स्त्री अर्थात् नर मदीन) बन गये। यह अमैथुनीय सृष्टि कहायी।

अमैथुनीय सृष्टि हिरण्यगर्भ में ही बनने लगती है। वहाँ से ही वे आयीं। पहले वनस्पतियाँ आयीं, पीछे प्राणी आये।

इन पाँच लेखों में हमने इतिहास में भारतीय परम्पराओं की प्रथम परम्परा वर्णन की है। इसके अन्तर्गत हमने यह बताया है—

(१) जगत् रचना से पूर्व की स्थिति;

(२) रचना का आरम्भ प्रकृति के कणों (अवयवों) से गुणों की साम्यावस्था भंग होने से;

(३) महत् से तीन अहंकार। उनसे दस इन्द्रियाँ और मन (चेतना का स्थान) तदनन्तर सूक्ष्म महाभूत। उनसे स्थूल महाभूत। इसके उपरान्त चेतन जगत् (प्राणी) एवं जड़ जगत् (देवता इत्यादि) उत्पन्न हुए।

(४) ईश्वर ने देवताओं के द्वारा वेद का उच्चारण कराया। जब मानव सृष्टि हुई, तब वे वेद लिपिबद्ध किये गये।

यह है प्रथम भारतीय परम्परा इतिहास की; जैसी भारत देश के ऋषि मुनियों ने कही है। आगामी अंक से हम इतिहास में द्वितीय भारतीय परम्परा के विषय में लिखेंगे।

वेदों में आर्य और इन्द्र शब्द क्या हैं ?

श्री राजेन्द्र सिंह

(अप्रैल मास की पत्रिका में डा० ज्वाला प्रसाद सिंघल का एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप मई मास के अंक में "वेदों में सरस्वत्यादि शब्द" शीर्षक से श्री सचदेव का लेख आपने पढ़ा। इस अंक में उसी सन्दर्भ में प्रस्तुत लेख प्रकाशित किया जा रहा है। विद्वान् लेखक ने अपनी बात के समर्थन में जो तर्क एवं उद्धरण प्रस्तुत किए हैं, उनकी सशक्तता पर संदेह नहीं किया जा सकता। डा० सिंघल सदृश अनेकों भारतीयों द्वारा आर्यग्रन्थों की विकृत व्याख्या ने देश के इतिहास को किस तरह भ्रामक बना दिया है, यह इन दो लेखों से स्पष्ट हो गया है। क्या भारतीय इतिहास-कार अपने सोचने की दिशा बदल कर तथ्य की ओर उन्मुख होने का प्रयत्न करेंगे ? यह प्रश्न क्या स्वतंत्रता के बीस वर्ष बाद भी प्रश्न ही रहेगा ? इस मानसिक दासता का अंत अब होना ही चाहिए।

—सम्पादक)

'शाश्वत वाणी' के विगत दो अङ्कों (अप्रैल १९६७ तथा अप्रैल १९६८) में पाश्चात्य विचारधारा को अपने ढँग से प्रस्तुत करने वाले डा० ज्वालाप्रसाद सिंघल के आर्यों के भूले इतिहास से सम्बन्धित दो लेख प्रकाशित हुए हैं। आर्यों के विषय में लिखते हुए डा० सिंघल ने दो बातें बड़ी ही विचित्र लिखी हैं। वे हैं—

(१) आर्य शब्द जातिवाचक है।

(२) वेदों में राजा इन्द्र और राक्षसराज वृत्रासुर के युद्धों का वर्णन है। अर्थात् वेदों में मनुष्यों का इतिहास है।

अपनी उक्त दो मान्यताओं की पुष्टि में यद्यपि विद्वान् लेखक ने वेद-मन्त्रों के उद्धहरण दिए हैं तथापि ये मान्यताएँ सर्वथा अयुक्ति-संगत हैं क्योंकि वेदों में नदी-नालों अथवा मनुष्यों का इतिहास नहीं है। अतएव लेखक

की उपर्युक्त मान्यताओं को यहाँ एक-एक करके देखा जाता है कि वे कहाँ तक सत्य एवं युक्तियुक्त हैं।

(१) प्रायः सभी विद्वान् इस विषय में एक मत हैं कि आर्य ही आदि-मानव हैं। अतएव सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने वाले मनुष्य से यह पूछना कि तुम ईसाई, पारसी, हिन्दू, मुसलमान आदि मनुष्य-जातियों में से कौन हो, सर्वथा मूर्खतापूर्ण है। आदि में एक ही मनुष्य-जाति थी। इससे स्पष्ट है कि आर्य शब्द जातिवाचक नहीं हो सकता। भारतीय साहित्य में आर्य शब्द गुण-वाचक माना गया है। प्राचीन शब्द कोषों में आर्य शब्द गुणवाचक ही वर्णित है—

मान्यः उदारचरितः शान्तचित्तः। न्यायपथावलम्बी प्रकृताचारशीलः सतत कर्त्तव्य कर्मानुष्ठाता यदुक्तम् कर्त्तव्यमाचरन् कार्यमकर्त्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्रकृताचरे मनु आर्य इति स्मृतः। धार्मिकः धर्मशीलः। यथाह मनु आर्यरूपमिवावार्य कर्मभिः स्वैर्विवष्येत ॥

—शब्द कल्पद्रुम १०।५७

अर्थात्—मानवीय, उदारचरित, धर्मशीलादि श्रेष्ठ गुणोंवाला मनुष्य आर्य कहलाता है।

मनुस्मृति में लिखा है—

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥

—मनुस्मृति १०।४५

—वर्णाश्रम व्यवस्था से बहिष्कृत जातियाँ, वे चाहे म्लेच्छ भाषा बोलती हों अथवा आर्यभाषा, सब दस्यु कहलाती हैं।

एक अन्य स्थान पर भी लिखा है—

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥

—मनुस्मृति १०।५८

—अनार्यता, निष्ठुरता, क्रूरता, निकम्मापन ये लक्षण इस लोक में नीच योनि को प्रकट करते हैं।

मनुस्मृति के उपर्युक्त दो श्लोको में यह ध्यान देने योग्य बात है कि मनुष्य के दुर्गुणों में से एक अवगुण अनार्यता भी माना गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आर्य शब्द सद्‌गुणों का प्रतीक है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के पिता दशरथ कहते हैं—

अनार्य इति मामार्याः पुत्रविक्रयिणं ध्रुवम् ।

—वाल्मीकि रामायण, अयो० का० ७८।१२

—आर्य जनः मुझ पुत्र बेचने वाले को अनार्य कहेंगे ।

आशय यही है कि पुत्र बेचना अवगुण है । यही अनार्यता है । अतएव आर्य शब्द गुणवाचक है ।

महाभारत में आर्य शब्द के विषय में लिखा है—

आर्य कर्माणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते ।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ॥

—उद्योगपर्व ३३।२५

—पण्डितजन भला करने वालों में दोष नहीं निकालते, उन्नति के कार्य करते हैं तथा आर्य कर्म (श्रेष्ठ कर्म) में रुचि रखते हैं ।

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः ।
दत्त्वा न पश्चात्कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥

—उद्योगपर्व ३३।११३

—जो अपने सुख में प्रसन्न नहीं होता, दूसरे को दुःखी देखकर हर्ष नहीं मानता और दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सत्पुरुष आर्यशील वाला कहलाता है ।

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ॥

—उद्योगपर्व ३५।५०

—बुढ़ापा सुन्दर रूप को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राण को, दोष देखने की आदत धर्म को, क्रोध श्रीको, अनार्यसेवा शील को, काम लज्जा को तथा अभिमान सर्वस्व को हर लेता है ।

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नापसर्पति ॥

—उद्योगपर्व ३९।६३

—अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अति शूरवीर, अति व्रती और बुद्धि के घमण्ड में चूर मनुष्य के पास लक्ष्मी भयवश नहीं जाती ।

महाभारत के उपर्युक्त सभी श्लोकों में आर्य शब्द गुणवाचक कहा गया है । आर्य शब्द श्रेष्ठ गुणोंवाले मनुष्य के अर्थ में आया है । अतएव अनार्य शब्द अवगुणों का प्रतीक है । इसीलिये श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।

—गीता २।२

अर्जुन की कायरता को देखकर श्रीकृष्ण इस कर्म को अनार्य कर्म कहते हैं। अतएव स्पष्ट है कि आर्य शब्द गुणवाचक है।

महाकवि विशाखदत्त द्वारा विरचित "मुद्राराक्षस" राजनीतिका एक महान् नाटक ग्रन्थ है। उसमें राक्षस चाणक्य के विरुद्ध जाल बिछाता है, परन्तु चाणक्य इतना चतुर निकलता है कि राक्षस अपने बिछाये जाल में स्वयं ही फँस जाता है। उस समय उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। परिणाम-स्वरूप वह सिर थामे बैठा है। इस समय, जब उसका साथी मलयकेतु कहता है—आर्य ! एक बात पूछना चाहता हूँ। तो राक्षस कहता है—कुमार ! उससे पूछो जो आर्य हो। हम तो अब अनार्य बन गये।

यहाँ स्वार्थी व्यक्ति को अनार्य कहा गया है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि राक्षस जो पहले अपने को आर्य मानता था, अब वह स्वयं को अनार्य मानने लगा है। सिद्ध है कि आर्य शब्द गुणवाचक है। वेदों में भी आर्य शब्द गुणवाचक ही माना गया है—

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघ्नन्तो अराव्णः ।

ऋग्वेद ९।६३।५

अर्थात्—अपने आत्माको दिव्यगुणों से अलंकृत करते हुए, तत्परता के साथ कार्य करते हुए, शत्रुओं को परे भगाते हुए सम्पूर्ण संसार को हम श्रेष्ठ बनावें।

यहाँ विश्व को आर्य बनाने के लिये कहा गया है। इसको जातिवाचक कदापि नहीं कहा जा सकता। कारण यह कि आत्मा को दिव्यगुणों से अलंकृत करते हुए आर्य बनाने की बात कही गयी है। प्रत्येक जाति में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के मनुष्य होते हैं। परन्तु यहाँ अच्छे गुणों को आर्य शब्द से कहा है। अतएव आर्य शब्द जातिवाचक नहीं है।

अब यहाँ एक शङ्का यह भी उपस्थित होती है कि जब आर्य शब्द जाति-वाचक नहीं है तो फिर बहुत-से आर्यों से क्या अभिप्राय है ? इस शङ्का का समाधान निम्न उदाहरण से हो जाता है—

मान लीजिये कि संसार के प्रत्येक नगर से एक-एक विद्वान् चुन लिया जाता है। इस प्रकार सैंकड़ों विद्वान् इकट्ठे हो एक ही स्थान पर रहने लग जाते हैं। काल की गति से उनकी सन्तानें हो जाती हैं। उनमें से यदि अधिकांश

सन्तान शास्त्र ज्ञान से अनभिज्ञ हो तो क्या उन मूर्ख पुत्रों को विद्वान् नाम से सम्बोधित किया जा सकता है ? यदि उनमें विद्वान् के गुण होंगे तभी तो उनको विद्वान् कहा जा सकेगा ? विद्वानों के एक स्थान पर रहने से क्या विद्वान् शब्द जातिवाचक बन सकता है ? उन विद्वानों के पुत्रों को विद्वान-पुत्र तो कहा जा सकता है, परन्तु विद्वान तब तक नहीं कहा जा सकता जब तक वे विद्वानों के गुण धारण न कर लें ।

इसी प्रकार भारतीय इतिहास से भी यह सिद्ध है कि आर्य अर्थात् श्रेष्ठ जनों का एक वृहद् समुदाय भारतवर्ष में रहता था, जिस कारण इस देश को आर्यावर्त्त अर्थात् श्रेष्ठ लोगों का निवास-स्थान कहते थे । उन्हीं श्रेष्ठ जनों में निष्कृष्ट भी उत्पन्न हो जाते थे । उदाहरण के रूप में महर्षि विश्रवा का पुत्र दुष्ट रावण हुआ । और इसके विपरीत दुष्ट हिरण्यकशिपु के यहाँ श्रेष्ठ प्रह्लाद उत्पन्न हुआ । दुर्योधन और युधिष्ठिर आर्यों की ही सन्तान थे ।

अतएव यह सिद्ध है कि आर्य शब्द जातिवाचक न होकर गुणवाचक ही है ।

(२) वेदों में इन्द्र, वृत्र, उर्वशी, मेनका आदि शब्द देखकर इतिहासकार यह कहने लग जाते हैं कि वेदों में इतिहास है क्योंकि इन्द्र, वृत्र आदि राजा हो चुके हैं । वेदों में इतिहास मानना मृग-मरीचिका के समान केवल भ्रम-मात्र ही है । वेद सत्य ज्ञान की पुस्तकें हैं । अतएव वेद-मन्त्रों के अर्थ करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि वेदों में आर्य शब्द यौगिक है, रुढ़ि नहीं । सूक्ष्म बुद्धि से विचार करने पर यह भली-भाँति जाना जा सकता है ।

आधुनिक इतिहासकारों के मतानुसार देवताओं का राजा इन्द्र था । इसके लोक में अनेकों अप्सराएँ थीं, जिनमें से मेनका, उर्वशी, घृताची आदि अति प्रसिद्ध थीं । राजा इन्द्र भगवान् विष्णु का बड़ा भाई था । इन्द्र, विष्णु आदि १२ भाई थे । इनकी माता का नाम अदिति था । अदिति से उत्पन्न होने के कारण ये बारहों भाई आदित्य कहलाते थे । राजा इन्द्र के वृत्र नाम के असुर-राजा के साथ युद्ध होते थे । इसका वर्णन पुराणों तथा महाभारतादि ऐतहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध है । इन्हीं का इतिहास वेदों में भी पाया जाता है । ऐसा ऐतिहासिकों का मत है ।

वेदों में इन्द्र और उसकी अप्सराओं का उल्लेख स्पष्ट रूप से आया है । अतः प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या ऐतिहासिकों का कथन सत्य है ? इसका उत्तर वेद स्वयं ही दे देते हैं । अप्सराओं के नाम वेदों में इस प्रकार गिनाये गये हैं—

पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ ।
मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ ।
प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ ।।
विश्वाची च घृताची चाप्सरसौ ।
उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसौ ।।

—यजुर्वेद १५।१५-१९

यहाँ विश्वाची, घृताची, सहजन्या, उर्वशी, मेनका इत्यादि अनेक अप्सराओं का उल्लेख हुआ है। ऐतिहासिक ग्रन्थों के अनुसार ये सभी अप्सराएं इन्द्रलोक की अप्सरायें थीं। प्रश्न यह है कि वेदों में क्या इन्हीं अप्सराओं (स्त्रियों) का उल्लेख है। इसका उत्तर देते हुए वेद कहते हैं—

सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसः ।

—यजुर्वेद १८।३९

अर्थात् सूर्य ही गन्धर्व है और उसकी किरणें ही अप्सरायें हैं।

सूर्य अग्नि का पुञ्ज है। अग्नि में यह गुण होता है कि वह गन्ध को फैलाती है। सूर्य भी अग्नि ही है। गन्ध को फैलाने के कारण सूर्य गन्धर्व कहलाता है। 'अप्सु सरति अप्सरा' अर्थात् जो जल में सरके वह अप्सरा कहलाती है। यजुर्वेद १८।३९वें मन्त्र के अनुसार सूर्य की किरण अप्सरा है। सूर्य की अप्सरा जल में सरकती है। इससे जल वाष्प बनकर ऊपर चला जाता है। ऊपर जाकर वह बादल का रूप धारण कर लेता है। इससे वर्षा होती है। किरण जल को वाष्प बनाती ही है। अब चूंकि ये किरणें कई प्रकार की हैं, इसलिए उनका अन्तर स्पष्ट करने के लिए उनको मेनका, उर्वशी आदि विभिन्न नामों से पुकारा गया है।

अप्सराओं का सम्बन्ध इन्द्र से है। इन्द्र वर्षा कराने वाला कहा जाता है। वर्षा ऋतु में कई बार आकाश में सात-रंगों वाला एक अर्द्धवृत्त-सा दिखाई पड़ने लगना है जिसे इन्द्र-धनुष कहते हैं। इधर वैज्ञानिकों के अनुसार सूर्य का प्रकाश सात रंगों का मिश्रण है। आकाश में ये सातों रंग ही धनुषाकार में प्रतिबिम्बित होते हैं। इससे ज्ञात होता है कि इन्द्र सूर्य का ही दूसरा नाम है। इन्द्र की अप्सराएं थीं और सूर्य की किरणों को अप्सरा नाम से कहा गया है। अतएव वेदों का इन्द्र सूर्य ही है। इस विषय में वेद क्या कहते हैं यह जानना अत्यावश्यक है। ऋग्वेद में 'स जनास इन्द्रः' नाम से एक सूक्त है। उसमें इन्द्र का परिचय देते हुए कहा है—

यो जात एव प्रथमा···
यः पृथिवीं व्यथमानाम्···
यो अन्तरिक्षं विममे···
यस्याश्वासः प्रदिशि···
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव···
यः शम्बरं प्रर्वतेषु क्षियन्तं···
यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ।।

—ऋग्वेद २।१२

अर्थात्—जो सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ, जो पृथिवी को कम्पायमान करता है; जो अन्तरिक्ष में है, जिसके श्वास दिशाओं में फैले हैं, जो विश्व की प्रतिमान है, जो शम्बर नाम के बादलों का क्षय करता है, जो दस्यु (बादल) की हत्या करने वाला है, उसे हे विद्वानो ! तुम इन्द्र जानो।

वर्तमान वैज्ञानिकों के अनुसार इस गतिशील जगत् की प्रथम रचना सूर्य है। सूर्य पृथिवी को गति देता है। सूर्य के आश्रय ही पृथिवी टिकी है। सूर्य का निवास-स्थान अन्तरिक्ष है। सूर्य की किरणें पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैली हुई हैं। सूर्य इस विश्व की माप है। सूर्य बादलों का क्षय करके वर्षा कराता है।

पृथ्वी को गति देने वाला, अन्तरिक्ष में रहने वाला और सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला इन्द्र क्या कभी पृथ्वीलोक का राजा हो सकता है ? अतएव सिद्ध है कि वेदों का इन्द्र कोई मनुष्य नहीं है। वह इन्द्र सूर्य का दूसरा नाम है। ऋग्वेद के उक्त मन्त्र इस बात को स्पष्ट कर देते हैं। इन वेद-मन्त्रों का ऐतिहासिक राजाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। वेदों में इन्द्र का वृत्रासुर के साथ युद्ध का वर्णन है। अब चूंकि वेदों का इन्द्र जड़पदार्थ है, इसलिए वृत्रासुर भी कोई जड़पदार्थ ही होना चाहिये। निरुक्त वेद-मन्त्रों का अर्थ बताने वाला ग्रन्थ है। उसमें वृत्र के सम्बन्ध में लिखा है—

तत्को वृत्रः—मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभाव कर्मणो वर्ष-कर्म जायते। तत्रोपमार्थन युद्धवर्णा भवन्ति।

—निरुक्तम् २।५

अर्थात्—तो वृत्र कौन है ? निरुक्तकार यास्कमुनि कहते हैं कि मेघ है, यह नैरुक्तों का कथन है। त्वष्टा का अपत्य असुर है, ऐसा ऐतिहासिकों का कथन है। जल और ज्योति (विद्युत) के मिल जाने से वर्षा की क्रिया होती है। वहाँ पर उपमा के लिए युद्ध का रूप दे देते हैं।

वेद का वृत्र कौन है ? यास्काचार्य स्पष्ट कर देते हैं कि यह मेघ अर्थात् बादल है। ऊपर बताया गया है कि इन्द्र सूर्य को कहते हैं। इन्द्र और वृत्र के युद्ध का वर्णन वेदों में है। इसका अभिप्राय इस प्रकार है—

इन्द्र अर्थात् सूर्य की अप्सराएं अर्थात् किरणें अप अर्थात् जल में सरकती हैं और अप को वाष्प बनाकर ऊपर ले जाती हैं। यह अप ऊपर जाकर बादलों का रूप धारण कर लेता है। बादल कई रंगों के होते हैं। इसके अतिरिक्त गर्जन करने वाले और बरसने वाले कई प्रकार के बादल होते हैं। इनमें से एक प्रकार के बादल को 'वृत्र' नाम से पुकारा गया है। यह वृत्र अर्थात् बादलों का एक विशेष प्रकार, इन्द्र की अप्सराओं अर्थात् सूर्य की किरणों को पृथिवीलोक में विचरने से रोक देता है। इस पर इन्द्र को क्रोध आता है और वह इस असुर की हत्या कर देता है। अर्थात् सूर्य (इन्द्र) बादलों को छिन्न-भिन्न कर देता है। इस प्रकार वर्षा हो जाती है। और इन्द्र की अप्सराएं पुनः विचरने लगती हैं।

इस इन्द्र की माता अदिति कौन है ? इसका परिचय भी वेद स्वयं ही दे देते हैं। वेद कहते हैं—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥

—यजुर्वेद २५।२३

अर्थात्—अदिति ही द्यौ है, अदिति ही अन्तरिक्ष है, अदिति माता, माता, पिता और पुत्र है। अदिति ही विश्व के देवता (सूर्य, चन्द्रादि देव) है। अदिति ही पञ्चजन है। अदिति ही उत्पन्न करने वाली और वह ही उत्पन्न होने वाली है।

एक स्त्री द्यौ, अन्तरिक्ष, सूर्य, चन्द्र, माता, पिता, पुत्र सभी कुछ नहीं हो सकती। इससे ज्ञात होता है कि अदिति कुछ अन्य ही है। वह अन्य क्या है ? वेद कहते हैं कि अन्तरिक्ष, द्यौ, सूर्य चन्द्रादि सब अदिति हैं। अर्थात् पूर्ण प्रकृति अदिति है। प्रकृति (जड़ पदार्थों का समूह) ही समस्त जगत् को उत्पन्न करती है और वही उत्पन्न होती है। इस प्रकार प्रकृति को, जिसको माया, कुदरत, नेचर आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है, वेदों में अदिति नाम से कहा गया है।

अदिति अर्थात् प्रकृति में जब परमात्मा की प्रेरणा से हलचल हुई तो उस हलचल का परिणाम निकला, उसकी सर्वप्रथम उपज सूर्य। अदिति से उत्पन्न होने के कारण सूर्य को आदित्य कहते हैं। आदित्य को वेदों में इन्द्र

के नाम से भी स्मरण किया गया है।

इस प्रकार वेदों में अदिति, इन्द्र, वृत्र, अप्सरा आदि शब्द जड़-पदार्थों के नाम हैं। अतएव इनको ऐतिहासिक मनुष्य कहना सर्वथा मूर्खतापूर्ण है। इस पर भी अनेक इतिहासकार शंका करते हैं कि अदिति, इन्द्र आदि ऐतिहासिक मनुष्य भी हो चुके हैं।

इस शंका का समाधान यह है कि वेदों में आये शब्दों को लेकर ही मनुष्यों ने अपने नाम रखे हैं। शास्त्र स्पष्ट कहते हैं—

नाम रूपे च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम्।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः॥

—वेदान्त भाष्य १।३।२८

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे॥ —मनुस्मृति १।२१

अर्थात्—उस परमात्मा ने वेद शब्दों के स्मरण से सर्वभूतों के नाम रूप और कर्म रखे। पशु-पक्षी आदि सर्व जीवों के नाम पृथक्-पृथक् वेद-शब्दों के अनुकूल उस परमात्मा ने रखे।

इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वामित्र, वसिष्ठ, कृष्ण, आदि महापुरुषों और ऋषि-मुनियों ने अपने नाम वेद-शब्दों को लेकर ही रखे। अतएव इन महापुरुषों का इतिहास वेदों में नहीं हो सकता क्योंकि वेद उनसे पूर्व विद्यमान थे। इसके अतिरिक्त वेदों के शब्द रूढ़ि न होकर यौगिक हैं। उदाहरण के रूप में भारद्वाज शब्द को लीजिये। वाज प्रजा को कहते हैं। प्रजा (वाज) का जो भरण करे वह भारद्वाज कहलाता है। इसी प्रकार दूसरे सभी शब्द यौगिक हैं।

पाश्चात्य विद्वानों के प्रभाव में आकर डा० सिंहल ने वेदों में इतिहास मान कर भ्रम फैलाने का यत्न किया है। पाश्चात्य विद्वानों का क्या है? वे तो सदैव दोगली बातें करने के पक्षपाती हैं। इसका ज्वलन्त प्रमाण मैक्समूलर है। वह लिखता है—

अर्थात्—वेदों में उपलब्ध नाम यौगिक हैं, द्रव्यावस्था में हैं। किसी विशेष पुरुष के नहीं कहे जा सकते। प्रत्येक शब्द अपने धात्विक अर्थों पर कुछ न कुछ प्रकाश डालता है।

दूसरी ओर यही मैक्समूलर वेदों से नदियों, राजाओं आदि का इतिहास निकालता है। ऐसी परस्पर विरोधी बातें करने वाले व्यक्ति वेदार्थों को

(शेष पृष्ठ ४० पर)

भारतीय संविधान और राष्ट्रपति

○

श्री सचदेव

भारत में संयुक्त राज्य प्रणाली है। साथ ही इतिहास की विडम्बना के कारण यहां ऐसे समुदाय उपस्थित हैं, जो अपनी प्रवृत्ति से ही परस्पर विरोधी हैं। यहां हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुसलमान, ईसाई इत्यादि अनेक सम्प्रदाय हैं। इनमें से मुसलमान और ईसाई केवल सम्प्रदाय ही नहीं, वरं राजनीतिक दल भी हैं। इन के अतिरिक्त देश में कम से कम चौदह विभिन्न भाषा-भाषी लोग रहते हैं।

अंग्रेज के आने से पूर्व देश में एक जन-भाषा थी जो प्रायः देश भर में बोली व समझी जाती थी। सब भाषाओं के विद्वान् इस जन भाषा (lingua franca) को समझते थे। यह संस्कृत भाषा थी। कुछ तो मुसलमानी राज्य के प्रभाव से और कुछ अंग्रेजी राज्य के प्रभाव से संस्कृत का मान कम हुआ। उसका स्थान पहले फारसी भाषा ने और पीछे अंग्रेजी भाषा ने लेने का यत्न किया। अंग्रेजी, जनभाषा का स्थान लेने का यत्न अभी भी कर रही है। इधर हिन्दी ने भी जनभाषा का स्थान लेने का यत्न किया है। फारसी और अंग्रेजी से हिन्दी अधिक सफल हो रही है। साथ ही इसका विरोध भी अधिक हो रहा है।

अब कॉंग्रेसियों ने अंग्रेजी को जनभाषा बनाने के लोभ में जन-भाषायें भी कई बनाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया है। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि इस देश में जहां कई राज्य हैं, कई सम्प्रपाय हैं, कई राजनीतिक दल हैं, वहाँ कई भाषा-भाषी लोग भी रहते हैं। इन सब तथा कई अन्य कारणों से जिनमें अंग्रेज पक्षपाती विद्वानों के प्रयास तथा इतिहास की विकृति शिक्षा भी सम्मिलित है, भारत पुनः विभाजन की ओर अभिमुख हो रहा है।

यह कहा जाता है कि यह देश कभी भी एक नहीं रहा। कहने वालों की यह बात सर्वथा सत्य नहीं। इन इतिहास से अनभिज्ञ जनों को ऐक्य के आधार का ज्ञान नहीं है। ऐक्य राजनीतिक तथा प्रशासनीय आधारों पर नहीं होता। कभी शासन के बल पर देश एक राज्य बन भी गया और उसके साथ

साँस्कृतिक ऐक्य न हुआ तो ऐक्य टूट जाता है। वह स्थायी नहीं होता। अभिप्राय यह कि देश में शासन एक होना बहुत अच्छी बात होते हुए भी, देश की एकता का प्रतीक नहीं। देश में ऐक्य तो तब ही माना जा सकता है जब साँस्कृतिक विचार से ऐक्य हो। इसका अभिप्राय यह है कि देश में सांस्कृतिक आधार पर आचार-विचार समान हों। ऐसा ऐक्य इस देश में बहुत प्राचीन काल से था। इसको भंग करने में अंग्रेज नीतिमानों ने बहुत प्रयास किया। और अब वर्तमान कांँग्रेसी शासन जानबूझ कर अथवा अनजाने में यही कार्य अति वेग से कर रहा है।

देश की साँस्कृतिक एकता को नष्ट करने में तथा देश का विभाजन करने के प्रयास में श्री जवाहर लाल नेहरू का बहुत बड़ा हाथ रहा है। यदि उनके वश में होता तो आज पूर्ण भारत चौदह देशों में विभक्त हो चुका होता। परन्तु नेहरू जी के विचार की विरोधी शक्तियां भी यहाँ उपस्थित थीं और संविधान बनते समय जानबूझ कर अथवा अनजाने में वे उनके इस दिशा में प्रयासों का विरोध कर रही थीं।

देश के विघटन के विरोध में एक प्रयास था संविधान में राष्ट्रपति की नियुक्ति और उसके अधिकारों और सामर्थ्य का निर्माण। राष्ट्रपति देश को एक रखने में एक कड़ी बनाने का प्रयत्न है। इस कड़ी निर्माण करने में श्री जवाहर लाल और उनके विचार के कांग्रेसी सदस्यों का हाथ नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि जवाहर लाल जी ने अपने राजस्व काल में राष्ट्रपति के अधिकारों को सदा कम करने का ही प्रयास किया है। पिछले बीस वर्षों में कांग्रेस ने अपने राज्य काल में राष्ट्रपति के अधिकारों और सामर्थ्य को निरन्तर कम करने का यत्न किया है।

श्री राजेन्द्र प्रसाद देश की इस विडम्बना को समझते थे। इस विषय में उन्होंने अपने विचार और अनुभव २८ नवम्बर १९६० में 'इण्डियन ला इन्स्टिच्यूट' की इमारत की आधार शिला रखते समय प्रकट किये थे।

वे उद्गार इस प्रकार थे। भारत का संविधान अंग्रेजी संविधान के नमूने पर बनाया गया है, परन्तु दोनों देशों की अवस्था में भारी अन्तर है। इंग्लैण्ड में एकाकी राज्य पद्धति (unitary system of government) है। वहां एक राजा है जिसको हटाया नहीं जा सकता। यहां राज्य संयुक्त है। राष्ट्रपति हटाया जा सकता है और उस के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव (impeachment) हो सकता है। एक बात और है। भारत में राष्ट्रपति का चुनाव एक विशेष ढंग पर होता है। इस कारण यह अनिवार्य है कि दोनों देशों में

इस विभिन्नता के कारण राष्ट्रपति और इंग्लैण्ड के राजा में भिन्नता का संविधान में स्पष्टता से उल्लेख किया जाये।

श्री नेहरू जी को राष्ट्रपति के इन शब्दों पर क्रोध आ गया और उन्होंने चीफ जस्टिस श्री बी० पी० सिंह से यह कहा कि इस वक्तव्य को प्रकाशित न किया जाये। मुख्य न्यायधीश ने वैसा ही किया, परन्तु दोनों ही भूल गये थे कि भारत में लिखने और बोलने की स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार अभी है। परिणाम यह हुआ कि समाचारपत्रों में राष्ट्रपति का वक्तव्य छप गया।

इससे पहले भी राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री में अपने-अपने अधिकारों के विषय में मतभेद प्रकट होता रहा है।

जब सोमनाथ के नये मन्दिर का उद्घाटन होने वाला था, राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद से इसके लिए कहा गया। यह घोषणा की गयी कि राष्ट्रपति सोमनाथ मन्दिर का उद्घाटन करेंगे। श्री जवाहरलाल नेहरू ने इसका घोर विरोध किया, परन्तु राष्ट्रपति ने उद्घाटन किया और उस अवसर पर हिन्दी में भाषण किया। इस भाषण में आपने कहा, "जगत्कर्ता ब्रह्मा परमात्मा की नाभि में रहते हैं। वैसे ही भगवान् सब मनुष्यों के हृदय में विराजमान रहते हैं। इस कारण मनुष्य में कर्तृत्व शक्ति भगवान् की दी हुई है। यह संसार की सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रों, सेनाओं और साम्राज्यों की शक्ति से ऊपर है। इसे कोई नष्ट नहीं कर सकता।"

तिब्बत के विषय में भी राष्ट्रपति भारत-चीन की संधि के विपरीत थे। सन् १९५९ में, राज्यपालों के सम्मेलन में बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि यदि हमने चीन से १९५४ में संधि न की होती तो चीन-भारत में पग न बढ़ा सकता।

एक अन्य समय भी राष्ट्रपति ने यह समझा था कि जनता का अहित हो रहा है। तब तो विवाद तीव्र हो चला था। राष्ट्रपति के पद ग्रहण करने से पूर्व ली जाने वाली सौगन्ध में ये शब्द हैं, "मैं ईश्वर के नाम पर शपथ लेता हूँ कि मैं दृढ़ता और अपनी पूर्ण योग्यता से भारत के लोगों की सेवा और भलाई में लगा रहूँगा।"

इस शपथ के अनुरूप ही राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री का विरोध स्वीकार किया था। विषय हिन्दू कोड बिल्ल का था। इस पर राष्ट्रपति की कई कारणों से आपत्ति थी। एक कारण ऐसा था जिसका उत्तर आज भी सरकार और संसद के पास नहीं है। इस आपत्ति के विषय में राष्ट्रपति के शब्द इस प्रकार थे :

The measure is of highly discriminatory nature. If the provisions are sound and beneficial and in the general interest of the people at large, there is no reason why the operation shall be confined to one community and why any other community that suffers from the same and similar objective objectionable and deleterious personal laws and customs should be deprived of the benefits thereof...

(यह बिल्ल जन-जन में भेदभाव रखने वाला है। यदि इसमें प्रस्तावित बातें प्रजा के समान हित में हैं, तब कोई कारण नहीं कि इस बिल्ल को एक समुदाय तक सीमित रखा जाये और क्यों इसको किसी दूसरे समुदाय पर लागू न किया जाये, जब उसमें भी वे ही और वैसी ही बुराइयाँ प्रचलित हैं।)

उस समय प्रधानमंत्री जवाहर लाल जी ने राष्ट्रपति की बात मान ली थी। निर्वाचन समीप थे। परन्तु बाद में यह बिल्ल, बिना राष्ट्रपति द्वारा बताई आपत्ति दूर किये पारित कर दिया गया। इसमें कारण तो कांग्रेस और श्री नेहरू का अन्धानुकरण ही कहा जा सकता है। तत्कालीन संसद सदस्य भी इस दोष से मुक्त नहीं माने जा सकते। यह आज के लेख का विषय नहीं, अन्यथा इस अनियमित बात के परिणामों पर प्रकाश डालते।

वास्तव में राष्ट्रपति देश के शासन में एक प्रबल और स्वतन्त्र अंग है। यदि राष्ट्रपति बुद्धिशील और अपनी शपथ पर आरूढ़ हो तो वह संसद सदस्यों की और मन्त्रि-मण्डल की बहुत-सी मूर्खतापूर्ण बातोंका निराकरण कर सकता है।

आपद्कालीन परिस्थिति में भी राष्ट्रपति के विशेष अधिकार हैं। संविधान के विभाग १८वें की धारा ३५२ में यह लिखा है—

If the President is satisfied that a grave emergency exists, whereby the security of India or of any part of the territory is threatened, whether by war or external agression or internal disturbances, he may, by proclamation, make a declaration to the effect.

(यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाये कि देश में ऐसी भीषण आपद् की स्थिति, जिससे भारत की अथवा इसके किसी भाग की सुरक्षा में, किसी युद्ध के कारण, बाहरी आक्रमण के कारण अथवा आभ्यान्तरिक उपद्रवों के कारण, भय उत्पन्न हो गया है, तो वह ऐसी घोषणा कर सकता है।)

यह ठीक है कि राष्ट्रपति के इस अधिकार पर काल की सीमा है।

यदि इस सीमा को बढ़ाना पड़े तो संसद की स्वीकृति लेनी आवश्यक हो जाती है। इस पर भी यह स्पष्ट है कि काल की सीमा का ध्यान रख कर राष्ट्रपति यह घोषणा प्रधान मन्त्री की स्वीकृति के बिना कर सकता है।

राष्ट्रपति की शक्ति और अधिकार संसद के ऊपर हैं। राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बिना संसद अथवा राज्य विधान सभा द्वारा कोई पारित विधेयक स्वीकार नहीं माना जा सकता। राष्ट्रपति के अधिकार केवल प्रशासनीय नहीं, वरं व्यवस्था सम्बन्धी (legislature), न्याय सम्बन्धी (judiciary), संवैधानिक (constitutional) और आपद्कालीन भी हैं।

किसी भी स्थान पर यह नहीं लिखा कि राष्ट्रपति को अपने कार्यों के लिये प्रधानमन्त्री अथवा मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति लेनी होगी।

संविधान में एक स्थान पर यह लिखा अवश्य है—

There shall be a council of ministers with Prime Mixnister at the head to aid and advice thc president in the exercise of his functions.

(प्रधानमन्त्री के अधीन मन्त्रि-मण्डल बनेगा, जो राष्ट्रपति को उसके कर्तव्यों में सम्मति दिया करेगा।)

यह संविधान की धारा ७४ के शब्द हैं। परन्तु इसके ये अर्थ नहीं कि राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की सम्मति को, देश अथवा देश के किसी भाग की रक्षा अथवा न्याय व लोकहित के विपरीत समझे तो भी मानने पर बाध्य है। यदि राष्ट्रपति बाध्य होता कि वह मंत्री मण्डल की सम्मति पर सदैव चले तो शब्द कुछ इस प्रकार होते, ''प्रधान मन्त्री के अधीन मन्त्रिमण्डल बने और राष्ट्रपति उसकी सम्मति से अपना कर्तव्य पालन करे।'

कई दूसरे देशों में राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की सम्मति पर कार्य करने के लिये बाध्य है। भारत का राष्ट्रपति नहीं। संविधान सभा में इस प्रकार के प्रतिबन्ध का प्रस्ताव किया गया था, परन्तु संविधान सभा ने उसे अस्वीकार कर दिया था।

यद्यपि राष्ट्रपति के अधिकार बहुत सीमित हैं, तथापि भारत की वर्तमान स्थिति में, जिसका हमने इस लेख के आरम्भ में उल्लेख किया है, ये अत्यावश्यक हैं। अन्यथा देश किसी समय भी टूक-टूक हो सकता है।

बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने कम-से-कम यत्न तो किया कहा जाता है कि देश के हित में अपने पद का प्रयोग करें। उनके उपरान्त अन्य राष्ट्रपति तो भीगी बिल्ली बने बैठे रहे हैं। इसमें सबसे बड़ा कारण राष्ट्रपति के निर्वाचन का

(शेष पृष्ठ ४० पर)

पक्षाघाती राष्ट्र

○

निरंजन

आज देश के अनेक प्रदेशों में मध्यावधि चुनाव की प्रमुखचर्चा है। हरियाणा में अभी मध्यावधि चुनाव सम्पन्न हुए हैं। अन्य कई प्रदेशों में भी इसी वर्ष माध्यावधि चुनाव होंगे। हरियाणा में सता-रूढ़ दल कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो गया है किन्तु राजनीतिक प्रेक्षकों का विचार है कि कदाचित् अभी भी वहाँ स्थायी सरकार न बन पाए। प्रस्तुत लेख के लेखक का मत है कि मध्यावधि चुनाव इस रोग का निदान नहीं है और न चिकित्सा। पढ़िए सामयिक महत्व पर यह प्रभावपूर्ण लेख। —सम्पादक

हमें विदेशी शासन से मुक्त हुए धीरे-धीरे बीस वर्ष बीत चुके हैं। अपने स्वतन्त्र राष्ट्र की पतवार सम्भालने का अवसर हमें प्राप्त है। हम एक-नायिकाधिपत्य में आस्था नहीं रखते। इस बात के प्रमाणस्वरूप तथा इस तथ्य को कार्यरूप देने के उद्देश्य से हमने प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना की है। एतदर्थ हमने मतदान का प्रबन्ध किया है। प्रति पाँच वर्ष के लिये हम देश भर में मत संग्रह कर पचास करोड़ जनता के लिये प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते हैं तथा उन्हें देश एवं राज्य शासक का उत्तरादायित्व समर्पित करते हैं। आगामी निर्वाचन पर्यन्त हमारी नौका खेने के लिये हम इन्हें निर्वाचित करते हैं। इसके लिये हम अनेक राजनैतिक प्रतिष्ठानों के प्रत्याशियों को तथा कुछेक स्वतन्त्र निर्दलीय प्रत्याशिओं को अपने-अपने मनोनयन के अनुसार निर्वाचित करते हैं। इन्हें हम अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करते हैं। उद्देश्य यह होता है कि वे प्रतिनिधि सुचारुरूप से देश की भाग्य-डोर सम्भालेंगे। वे देश के कर्णधार बनाये जाते हैं। देश तथा कोटि-कोटि जनता के सुख-दुःख, भोजन-परिधान, स्वास्थ्य सम्पद, शिक्षा-दीक्षा, मान-सम्मान—कहने का तात्पर्य यह कि एक स्वतन्त्र राष्ट्र की प्रत्येक प्रयोजनीयता को पूर्ण करने का भार इन्हें ही समर्पण किया जाता है।

निर्वाचन पूर्व परिस्थिति तो यही रहती है कि एक बार चुनाव में

विजेता घोषित भर हो जायें फिर देखिये अलौकिक कार्यदक्षता। जनता का सुख ही उनका सुख है। केवल जनता का हित करना ही एकमात्र उद्देश्य है इन प्रचारकों का। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर प्रारम्भ के चुनावों में हर क्षेत्र में कांग्रेसी प्रत्याशियों की संख्या ही अधिक होती रही और इस कारण देश भर में कांग्रेसी शासन चलता रहा। परन्तु देखा यह गया कि जिस आशा से हमने इन प्रत्याशियों का चयन किया है वह आशा सपना बन कर ही रह गयी। इन निर्वाचित प्रतिनिधियों की, पद प्राप्ति के साथ ही साथ, मतिभ्रष्ट हो जाती है। वे भूल जाते हैं चुनाव प्रचार में दिये गये आश्वासनों को। वे भूल जाते हैं अपने कर्तव्य तथा प्रतिश्रुतियों को। फलतः इन प्रतिनिधियों की स्वेच्छाचारिता, स्वार्थपरायणता, धृष्टता, निर्लज्जता तथा कुटुम्ब-परस्त नीतियां ही काँग्रेस में परस्पर मत-भेद का कारण हैं। तथा नये नये राजनीतिक दलों की उत्पत्ति का कारण भी है। जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया, देखा यह गया कि काँग्रेसी शासन काल में भ्रष्टाचार सीमातिक्रम करने लगा। जनता मस्त हो उठी। फलस्वरूप काँग्रेस का एकाधिपत्य का अन्त हुआ। एकाधिक राज्यों में गैर काँग्रेसी दल मिलकर 'संविद' सरकार का गठन करने में सफल हो पाये। कुछेक प्रान्तों में तो गैर काँग्रेसी विशुद्ध एक ही दल की भी सरकार गठित हुई। जनता के मन में एक नयी आशा उत्पन्न होने लगी। जनता समझने लगी कि उसके द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि, कम से कम, अब से तो प्रजातान्त्रिक पद्धति से राज रार्य सम्भालेंगे। परन्तु यह आशा निराशा में परिवर्तित हो गई केवल कुछ ही दिनों में। बरसाती नदी का पानी कब तक ठहरता ! वर्षा का अन्त तो पानी का भी अन्त। धीरे धीरे एक के बाद एक संविद सरकारों का पतन होने लगा। यहाँ पर चरितार्थ हो गयी शास्त्रोक्ति--"मुनिनाँच मतिभ्रमः"। एक परिवार में पति पत्नी में मतानैक्य होने पर सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। पिता पुत्र में मतभेद होने पर दोनों पृथक हो जाते हैं। वहाँ हृदय का सम्बन्ध है। वहाँ खून का सम्बन्ध है। तथापि मतानैक्य के कारण मिलन असम्भव हो जाता है। और यहाँ पर तो विभिन्न आयु, विभिन्न दल, विभिन्न विचारधारा, विभिन्न आदर्श, विभिन्न मस्तिष्क, विभिन्न जात, विभिन्न संस्कार, विभिन्न संस्कृति, विभिन्न मनोदशा के लोग हैं। समन्वय होने की सम्भावना नहीं के बराबर। यहाँ पर कौन किसकी सुने ! सभी तो स्वयं को दूसरे से अधिक पराक्रमी तथा अधिक बुद्धिशाली समझते हैं। सभी अपने आपको अन्य की तुलना में अधिक योग्य समझते हैं। सर्वोपरि सभी स्वार्थी हैं। लक्ष बिन्दु सभी के लिये एक है, अर्जुन के लक्ष्य भेद जैसे—सिंहा-

सन तथा अर्थलाभ। कैसे भी हो मन्त्रीपद प्राप्त होना चाहिये। कैसे भी हो शासक वर्ग को अन्तर्मुक्त होना चाहिये। इसकी पूर्ति हेतु चाहे अपनी प्रतिज्ञाओं की, अपने दिये हुये आश्वासनों की तथा अपने आदर्शों की ही (वहाँ आदर्श नाम की कोई वस्तु हो तब तो) आहुति क्यों न देनी पड़े। मूल उद्देश्य अर्थलाभ, शासक वर्ग में सम्मिलित होना तथा मन्त्रीपद प्राप्त करना। देश तथा ग्राम जनता रसातल में जाय, इससे इनकी क्या हानि? कोई भी सिंहासन अथवा अर्थ प्रदान की लालच दिखाये तो तुरन्त इस दल को छोड़ उस दल में सम्मिलित हो जाय। ठीक जैसे रोटी के टुकड़े दिखाकर कुत्ते को एक मकान से दूसरे मकान में बुला लिया जाता है। कहीं कहीं तो धमकी भी दी जाती है कि यदि मन्त्री नही बनाये गये तो तुम्हारे दल को छोड़ अन्य दल में जा मिलेंगे। आज देश भर में ऐसे ही कार्यक्रम चल रहे हैं। स्वार्थी तथा आदर्शच्युत राजनीति विदों के हाथ में देश की भाग्यडोर है। फलतः धीरे धीरे यह राष्ट्र पक्षघाती होता जा रहा है। समग्र राष्ट्र में जैसे घुन लग गया है!

प्रजातन्त्र, प्रजातन्त्र और प्रजातन्त्र का यह मन्त्र विद्युत वेग से चारों ओर प्रचारित होने लगा। परन्तु यह 'प्रजातन्त्र' क्या बला है यह बात साधारण जनता की समझ में आज भी नहीं आयी। साधारण जनता के मन में यह बात घर कर गई है कि ऐसी स्वतन्त्रा से तो अंग्रेजी शासन ही कहीं अधिक अच्छा था। कम से कम बाह्य सुख तो उपलब्ध था ही। इस स्वाधीन देश के नागरिकों के मन में ऐसी परमुखापेक्षिता की भावना जो उत्पन्न हुई है, क्या इसके लिए वे नागरिक ही दोषी निरूपित होने चाहियें? परिस्थिति ने भी ऐसी मनोदशा नहीं बनाई है। सूक्ष्म बुद्धि से यदि विचार किया जाय तो, स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर आज पर्यन्त प्रजातान्त्रिक शासन प्रणालियों के विश्लेषण से हो सकता है कि बहुत कुछ समझ में आ सके, कि इस विघटनकारी मनोदशा व विनाशकारी परिस्थिति के लिये कौन कौन से तथ्य तथा तत्व उत्तरदायी हैं।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि कांग्रेस दल की स्वेच्छाचारिता, स्वार्थपरायणता, कुटुम्ब-परस्त नीतिओं, तथा भ्रष्टाचार ही अनेक राजनैतिक दलों के जन्म का कारण हैं। परन्तु देखा यह गया कि जिन 'गुणों' ने काँग्रेस को दोषी बनाया, वे 'गुण' अन्य दलों में भी विद्यमान हैं। जब सभी रोगी ही निरूपित होते हैं तो वहाँ वैद्य किसे बनाया जाय?

अंग्रेजों के शासन काल में जिन अंग्रेज प्रेमी भारतीयों ने प्रत्यक्ष रूप में अथवा अप्रत्यक्ष रूप में इन काँग्रेसिओं का तथा अन्य क्रान्तिकारिओं का विरोध करते रहे, इनके कामों में बाधा उत्पन्न करते रहे, एवं अंग्रेजों की सहायता

करते रहे हैं, आज वे ही लोग केवल भेष बदल कर महान देश प्रेमी बन बैठे हैं और विभिन्न राजनैतिक दलों में सम्मिलित हो गये हैं। जिनके मन में स्वदेश प्रेम कभी नहीं रहा है, क्या आज भेष बदलने से ही उनके मन भी बदल गये ? एक बिन्दु गो-मूत्र एक घड़ा दुग्ध को नष्ट करने की क्षमता रखता है।

प्रजातन्त्र का सहारा ले लेकर सभी दलीय तथा निर्दलीय देश प्रेमीगण एक दूसरे के छिद्रान्वेषण में लिप्त है। परन्तु यह छिद्रान्वेषण देश के हित के के लिये नहीं, वरन् अपने अपने व्यक्तिगत हित के लिये ही किया जाता है। व्यक्तिगत हित यह है कि चाहे जैसे भी हो, शासक दल में सम्मिलित होना चाहिये। जैसे भी हो मन्त्रीपद प्राप्त करना चाहिये। और एतदर्थ बड़ी बड़ी लच्छेदार बातों के गुब्बारे छोड़े जाते हैं। इन बड़ी बड़ी बातों में अन्तर्निहित उद्देश्य यह होता है कि 'येन केन प्रकारेण' निर्वाचित होना। एक बार निर्वाचित हो जाने के पश्चात ये राजनीतिविद एवं तथा-कथित देश भक्त-गण भूल जाते हैं अपनी प्रतिज्ञायें। भूल जाते हैं जनता को दिये हुये आश्वासनों को। चुनाव पूर्व काल में जो देश भक्त घर घर जाकर हाथ जोड़ खड़े होते थे 'वोट' के लिये, निर्वाचन के बाद उन्हीं सन्तों के तेवर देखने योग हो जाते हैं।

चुनाव के बाद निर्वाचित प्रतिनिधिओं में अब होड़ लग जाती है सिंहासन प्राप्ति के लिए। बहुमत प्राप्ति के लिये छल, कपट से लेकर सभी प्रकार के अस्त्रों के उपयोग होते रहते हैं। अजस्र धन का दुरुपयोग होता है केवल अपने स्वार्थी उद्देश्य पूर्ति हेतु। स्वभावत: ही प्रश्न उठता है कि, क्या केवल ख्याति प्राप्ति देश सेवा के हेतु ही रुपया पानी जैसा बहाया जाता है ? क्या ऐसे अर्थव्यय के पीछे नि:स्वार्थ भावना बलवती रहती है ? यदि ऐसा ही समझा जाय तो व्यक्ति बार-बार दल त्याग करने की धृष्टता कैसे करते हैं ? यदि वे नि:स्वार्थ देश सेवी है तो उनके दल त्यागने का कारण क्या है। उद्देश्य स्पष्ट है। न तो उनमें देश सेवा की भावना है न ही जनता के हित की चिन्ता है। उद्देश्य यह होता है कि जैसे भी हो शासक वर्ग में सम्मिलित हो पायें। जैसे भी हो मन्त्रीपद प्राप्त हो। और बार-बार दल त्यागने की धमकी दे प्रचुर अर्थ संग्रह करें।

निर्वाचन प्रथा तो एक नाटक ही प्रतीत होता है 'प्रजातन्त्र' के नाम पर। अन्यथा किसी व्यक्ति को, जो किसी दल विशेष के प्रतिनिधि के रूप में ही जनता द्वारा निर्वाचित होता है, क्या अधिकार है कि वह अपने स्वकीय स्वार्थ के लिए उस दल को छोड़ दूसरे दल में सम्मिलित हो ? ऐसे अभिनय के लिए वह जनता द्वारा निर्वाचित नहीं हुआ है। जनता उसका निर्वाचन किसी दल विशेष के प्रतिनिधि के हिसाब से करती है, न कि उसके व्यक्तिगत रूप में।

ऐसी स्थिति में इस प्रकार दलत्याग मतदाताओं के साथ सरासर विश्वासघात है। यदि दलत्याग ही करना है तो यह कार्य निर्वाचन के पूर्व ही होना चाहिए। अथवा आगामी निर्वाचन पर्यन्त उन्हें किसी भी दल में सम्मिलित न होकर निष्पक्ष रहना चाहिए। अथवा उन्हें चाहिए कि मनोनीत नवीन दल के केवल मात्र एक सदस्य बने रहकर आगामी अवसर की प्रतीक्षा करें।

स्वनामधन्य इने गिने नेताओं को छोड़ बाकी सब के सब केवल दलीय प्रतिष्ठा के बल पर ही जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। जनता जो मतदान करती है, वह इन नेताओं के लिए नहीं वरन् इन दलों के लिए, जिनके वे एक हैं। व्यक्तिगत प्रतिष्ठा से मत प्राप्त करने वाले अधिकतर निर्दलीय प्रत्याशी ही होते हैं। तथा इने गिने दो चार प्रख्यात नेता होते हैं, जिनके सम्बन्ध विभिन्न राजनैनिक दलों से ही होते हैं। ऐसा यह भी कहा जाता है कि निर्दलीय प्रत्याशी गण चुनाव काल में तो प्रतिद्वन्द्वी राजनैतिक दलों के विरुद्ध अनेक प्रचार करते रहते हैं, परन्तु निर्वाचित हो जाने के बाद जब उनके लिए अपनी सरकार गठन करना असम्भव होता है, (क्योंकि निर्दलीय सदस्यों की संख्या कम होती है) तब मन्त्री मण्डल गठन काल में वे ही राजनैतिक दलों को अपने आपको बेच डालते हैं। वे भूल जाते हैं अपने आदर्श, प्रतिज्ञा और नीतियाँ ; प्रबल हो उठता है स्वीय स्वार्थ। वहाँ देश प्रेम तथा देश सेवा का महत्व नहीं है। ऐसे ही नेताओं की मनोदशा तथा आचरण इस देश को पक्षाघाती बनाने में सहायक होते जा रहे हैं।

मजे की बात और यह हो रही है कि जिन-जिन राज्यों में संविद सरकारों का पतन हुआ है अथवा भंग कर दी गई एवं राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया, उन राज्यों में शीघ्र ही मध्यावधि चुनाव कराया जा रहा है। बात तो अति सुन्दर है। परन्तु इस बात का क्या भरोसा कि मध्यावधि चुनाव के बाद भी वह स्थिति उत्पन्न नहीं होगी, जिसके कारण मध्यावधि चुनाव कराना आवश्यक प्रतीत हो गया है ? और यदि उन्हीं परिस्थितियों की पुनरावृत्ति हुई तो इस मध्यावधि चुनाव से लाभ किसको होने जा रहा है ? इन मध्यावधि चुनावों में जो अर्थ व्यय होगा, वह कौन वहन करेगा ? निश्चय ही जनता के अर्थ का अपव्यय होने जा रहा है। उन्हीं प्रतिनिधियों के कारण जिन्हें अपने व्यय से वह एक बार निर्वाचित कर चुकी है। यदि मध्यावधि चुनाव ही सफल होगा, ऐसा समझा जाय, तो नियमित आम चुनाव सफल क्यों नहीं हुआ ? नाटक तो वही है और कलाकार भी वही हैं ! तब जनता के लिए ऐसी कौन सी अलौकिक घटना घटने जा रही है !

पक्षाघाती रोग का निवारण मध्यावधि चुनाव नहीं है। रोग का निवारण एक ही औषधि की पुनरावृत्ति से कैसे हो सकता है? जब कि यह देखा गया है कि वह औषधि प्रथम प्रयोग में ही पूर्णतया असफल रही है। औषधि यदि काम ही कर देती तो मध्यावधि चुनाव का अवसर ही क्यों आता? जनता तो अपने प्रतिनिधियों का चयन कर चुकी थी। तब पुन: उन्हीं सब प्रतिनिधियों के चयन कराने का ढोंग जनता के समझ में नहीं आता है। जो प्रतिनिधि मतदाताओं के साथ विश्वासघात कर दल बदलते रहे हैं उन्हें जनता के प्रतिनिधित्व से बहिष्कृत समझ लेना चाहिए। जब वे जनता के प्रतिनिधि ही नहीं रहे तो उन्हें क्या अधिकार है कि जनता का ही अर्थ व्यय करा कर पुन: मध्यावधि चुनाव करायें? ये सब गतिविधियाँ इस ओर संकेत कर रही हैं कि आज देश भर में प्रजातन्त्र के पवित्र नाम पर कलंकमय 'मन्त्री-पद-प्राप्ति' योजना चल रही है। फलस्वरूप राष्ट्र पक्षाघात से पंगु होता जा रहा है तथा क्षयरोग से जीर्ण होता जा रहा है। जिन प्रतिनिधियों के ध्यान सदा अपने सिंहासन तथा अपने दल के स्वार्थ को बचाये रखने में व्याप्त रहे वे देश तथा जनता के हित में कौड़ी भर का काम करने का सौभाग्य कब और कैसे पा सकते हैं?

यदि इन राजनीतिविदों ने समझ लिया है कि उनके मन्त्री बने रहे बिना इस देश का शासन चल नहीं सकता, तो यह उनकी बहुत बड़ी भूल है। इस देश की जनता का तो यह कहना है कि जो मन्त्रीपद वे कल छोड़ने वाले हैं वह आज ही छोड़ दें। और देखें कि उनका तथा देश का कुछ नहीं बिगड़ेगा। केवल इतना ही नहीं, इनके हट जाने से, इनके कर कमलों द्वारा जो हमें इस पुण्य भूमि का बढ़ा अंश शत्रुओं को भेंट चढ़ाना पढ़ रहा है वैसा करना नहीं पड़ेगा। हमारी मातृ भूमि का पुन: अर्जित अंश भी इन जैसे चन्द नेताओं की हठधर्मिता से हमारे हाथ से छिन गया। हमारे सेनानिओं ने अपने प्राणों की आहुति इससिए नहीं दी कि वे उन वीरों की खून से अर्जित भूमि शत्रुओं को अर्पित कर दें। यह अधिकार इन्हें किसने दिया है? इनको हमने अपना प्रतिनिधि इसलिए नहीं बनाया कि वे हमारा तथा देश का सर्वनाश करते रहे और स्वयम् अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करते रहें। इनकी निजी ख्याति से हमारा कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता। अत: हमें इनकी आवश्यकता नहीं है। वे हमारे राष्ट्र के पक्षाघाती बनने में कारण और सहायक दोनों ही बनते जा रहे हैं। अत: कृपया अब वे हट जायें। अन्यथा इनको बलपूर्वक सिंहासनच्युत करने के लिए हम अपने आपको बाध्य समझने लगेंगे।

हिन्दू पत्रकारों का दायित्व

○

ब्रह्मचारी श्री विश्वनाथजी

(प्रस्तुत लेख ब्रह्मचारी जी के अंग्रेजी लेख "दि टास्क बिफोर हिन्दू जरनलिस्ट्स" का अविकल अनुवाद नहीं प्रत्युत भावात्मक अनुवाद है। त्यागमूर्ति श्री ब्रह्मचारी जी मसुराश्रम संस्था एवं मसुश्रम पत्रिका के माध्यम से प्रसुप्त हिन्दुओं को प्रबुद्ध करने के लिये सतत प्रयत्नशील हैं। प्रस्तुत लेख में जो मार्मिक अपील उन्होंने की है, आशा है उनकी भावना को यथार्थ में समझा जायगा और इस देश का पत्रकार अपने दायित्व एवं कर्तव्य को पहचानेगा। 'शाश्वत वाणी' परिवार ऐसे किसी भी सद्प्रयास का स्वागत करेगा।
—सम्पादक)

भारत में सहस्रों ऐसी पत्र-पत्रिकायें हैं जिनका एकमात्र उद्देश्य ईसाइयत और इस्लाम का प्रसार, हिन्दू विरोधी प्रचार एवं हिन्दुओं को धर्मभ्रष्ट करना है। इन पत्र-पत्रिकाओं में कार्य करने वाले पत्रकारों की भावना सदैव अपने मत का प्रसार करने की ही रहती है। ईसाइयत और इस्लाम के मानने वाले भारत से अन्यत्र भी रहते हैं और इन पत्र-पत्रिकाओं की भावना भारतीय होने की अपेक्षा बाह्योन्मुखी ही रहती है। इनमें से लगभग सभी पत्र अपने क्रियाकलापों की बढ़ोत्तरी के लिये बाहरी संस्थाओं से आर्थिक एवं अन्य भी विविध प्रकार की सहायता ग्रहण करते हैं, और कोई भी व्यक्ति बिना किसी सोच-विचार के ही यह स्पष्ट समझ सकता है कि इस राजनीतिक षड्यन्त्र ने हमारे राष्ट्र की अखण्डता एवं सुरक्षा को भयावह स्थिति में खड़ा कर दिय है।

इस सब के विपरीत हिन्दुओं के इस देश में हिन्दू प्रेस नाम की तो कोई वस्तु अथवा संस्था है ही नहीं। जो छोटे-मोटे पत्र अथवा पत्रिकायें हैं भी तो उनकी स्थिति नितान्त दयनीय है। उनमें कोई परस्पर समन्वय भी नहीं है। कुछ पत्र तो ऐसे भी हैं जिनकी न कोई निर्धारित नीति है और न लक्ष्य अथवा उद्देश्य ही। इतना ही नहीं, यह और भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण है कि परस्पर सहयोग, सद्भाव एवं समन्वय की भावना तो दूर, कभी-कभी तो वे एक दूसरे

की सफलता में बाधक बनने में ही गौरव का अनुभव करते हैं। यह हिन्दुओं का दुर्भाग्य ही है कि इस देश में कतिपय ऐसे प्रमुख समाचार-पत्र भी हैं कि जिन पर स्वामित्व तो हिन्दुओं का है, किन्तु उन पर प्रभुत्व ऐसे लोगों का है कि जिसके कारण अहिन्दु एवं बाह्य शक्तियों का प्रचार-प्रसार होता है। कुछ वर्ष पूर्व हमने देखा था कि इस देश का हिन्दू प्रेस युचेरिस्ट कांग्रेस के प्रचार में स्वयं को धन्य मानने लगा था। युचेरिस्ट कांग्रेस रोमन कैथोलिकों की ऐसी संस्था है जिसका एकमात्र उद्देश्य ही यह है कि करोड़ों नर-नारियों को ईसाइयत में दीक्षित किया जाय।[1]

हिन्दुओं के कहे जाने वाले समाचार-पत्र ईसाई पादरियों से सम्बन्धित समाचार तथा उनकी गतिविधियों को—भले ही वे हिन्दुओं के प्रति दुर्भावना-पूर्ण एवं राष्ट्रघातक हों—तुरन्त एवं प्रमुख स्थान देते हैं। जबकि उत्कल विधान सभा में धर्म-परिवर्तन विरोधी बिल का स्वीकृत होना तथा ऐसे ही अन्य प्रमुख समाचारों की जान-बूझ कर उपेक्षा की जाती है, अथवा किसी समाचार-पत्र के किसी उपेक्षित कोने में, स्थान दे दिया जाता है। इन समाचार पत्रों में हमें ईसाई मिशनरियों की राष्ट्र-विरोधी तथा सार्वजनिक रूपेण धर्मपरिवर्तन की गतिविधियों की अपेक्षा ईसाई मिशनरियों द्वारा किसी पादरी या मिशनरी के देश निष्कासन के विरोध में किये गये आन्दोलन के समाचार अधिक पढ़ने को मिलते हैं। शिक्षा तथा समाज-सुधार क्षेत्र में इन ईसाई मिशनरियों के क्रिया-कलापों की प्रशंसा में लिखे गये पत्र अथवा समाचार इन तथाकथित हिन्दू समाचार-पत्रों के मुख्य आकर्षण होते हैं। जैसे कि उन समाचार-पत्रों के सम्पादकों को यह विदित ही न हो कि ईसाई मिशनरियों द्वारा किये जाने वाला शिक्षा का प्रसार हिन्दुओं से बन्दूक तथा तोपों द्वारा छीनी गई भूमि एवं सम्पत्ति के बल पर ही होता है। और यह तथ्य भी कदाचित् उनकी दृष्टि से ओझल ही रहा है कि उनके सैकड़ों वर्षों से सतत अध्यवसाय के बावजूद भारत की लगभग ९० प्रतिशत जनसंख्या आज भी अशिक्षित एवं दीन-हीन स्थिति में है।

हमें इस दुखद् स्थिति का विश्लेषण कर यथाशीघ्र (नहीं तुरन्त) इसके निराकरण के लिये सन्नद्ध हो जाना चाहिये।

हिन्दुओं द्वारा संचालित सभी प्रमुख समाचार-पत्रों के सम्पादक, उप-

---

१. (सम्भवतया ब्रह्मचारी जी को इस लेख के लिखने तक वह समाचार नहीं मिला होगा कि संसद के एक सौ सदस्यों ने राष्ट्रघाती पादरी फर्रर के समर्थन में प्रधानमन्त्री को एक ज्ञापन दिया है। —संपादक)

सम्पादक, सह-सम्पादक, सम्वाददाता, अभिप्राय यह कि समस्त सम्पादकीय विभाग ईसाइयों से अथवा मिशनरियों द्वारा संचालित संस्थाओं में शिक्षित-प्रशिक्षित (अनबैप्टाईज्ड) ईसाइयों से, जो अपने पूर्वजों के धर्म एवं पंथ तथा संस्कृति को सर्वथा भूल अथवा त्याग चुके हैं, ऐसे व्यक्तियों से भरे पड़े हैं। वर्षों पूर्व ईसाई पत्रकारों ने वैटिकन चर्च के प्रचारकों के निर्देशन में क्रिश्चियन जरनलिस्ट्स ऐशोशियेशन का गठन कर लिया था। ईसाई पादरी यह भली-भाँति जानते हैं कि जनसाधारण पर प्रभादोत्पादक कार्य करने के लिये समाचार पत्र ही एकमात्र प्रबल साधन हैं, और वे लोग किसी भी ऐसे सुअवसर से वंचित नहीं रहते जो कि हमारी घातक धर्म-निरपेक्षता और मूर्खतापूर्ण सहिष्णुता की परम्परा से उन्हें सुलभ हो जाता है। हमारे समाचार-पत्र विज्ञापनों के आधार पर फूलते-फलते हैं और विदेशी व्यवसायी प्रतिष्ठान जो कि समाचार-पत्रों के लिये धन के स्रोत हैं, उन पर क्रिश्चियन चर्च का नियंत्रण है। इसलिये समाचार-पत्रों के हिन्दू मालिक स्वाभाविकतया परोक्षरूपेण चर्च की दया पर निर्भर हैं और चर्च द्वारा प्रसारित विचार एवं समाचार को (अनुपयुक्त) प्राथमिकता देने के लिये विवश भी हैं। और सम्भवतया उन्हें धमकी भी दी जाती हो कि वे चर्च की पोल खोलने वाले समाचारों को स्थान न दें। ईसाई पत्रकार चर्च के निर्देशन में कार्य करते हैं और वे धर्म के प्रति अपने कार्यक्षेत्र में भी सजग रहते हैं।

और दूसरी ओर हिन्दू पत्रकार अपने जीविकोपार्जन के लिये घटनावश पत्रकार बन गये हैं। न तो उन्हें पत्रकारिता के सिद्धान्तों एवं उद्देश्यों का ज्ञान है और न ही उन्हें अपनी समर्थ सांस्कृतिक परम्परा एवं धार्मिक उत्तरदायित्वों का ही ज्ञान है। उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं कि क्रिश्चियनिटी तथा इस्लाम ने छल, बल तथा बर्बरता एवं अमानुषिक कृत्यों द्वारा संसार की असंख्य जनता को दास एवं दीन बनाया। हिन्दू पत्रकारों ने कभी इस दिशा में विचार ही नहीं किया कि वे हिन्दू पत्रकारों का कोई प्रबल संगठन बनायें और हिन्दुत्व की सेवा करें। जबकि हिन्दुत्व के विघातक पत्रकार कभी के संगठित होकर अपने दुष्कृत्य में निरत हैं।

हिन्दू कहे जाने वाले समाचार-पत्रों में एक और प्रवृत्ति देखने में आती है। वह यह कि प्रत्येक समाचार-पत्र सहयोगी समाचार-पत्र को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझता है और फिर परस्पर यही प्रयत्न रहता है कि एक के द्वारा की जाने वाली जाति की सेवा तथा उसकी महत्ता को किस प्रकार क्षीण किया जाय। यह हिन्दू प्रतिष्ठानों में परस्पर सहयोग की भावना न होने और ईर्ष्या

के कारण ही है। इसलिये इस समय सहस्रों ऐसे हिन्दू संगठनों एवं संस्थाओं की आवश्यकता है जो हिन्दुत्व का प्रसार और प्रचार ही अपना लक्ष्य बनायें। ऐसी संस्थाओं में परस्पर सहयोगिता की भावना होना नितान्त आवश्यक है। हो सके तो हमारे धर्माचार्यों के निर्देशन में ये संस्थायें कार्य करें। हमारा विश्वास है कि भारत में हिन्दुओं के पत्र-पत्रिकाओं की संख्या नगण्य है। विधर्मियों के राष्ट्रघाती प्रचार को रोकने के लिये तथा हिन्दुओं में धार्मिक भावना जागृत करने के लिये सहस्रों पत्र-पत्रिकाओं की आवश्यकता है। तदपि जो पत्र-पत्रिकायें इस समय विद्यमान हैं उन्हें क्रिश्चियन मिशनरियों के देशघातक, धर्मविनाशक क्रिया-कलापों का, चाहे वे देश के किसी भी कोने में क्यों न हों, भण्डाफोड़ को प्रमुख महत्व देना चाहिये। शुद्धि के समाचारों को प्रमुखता मिलनी चाहिये। हमारे धर्माचार्यों एवं मठाधीशों को चाहिये कि वे ऐसे पत्रों के संचालन के लिये हिन्दू समाज को प्रेरित करें। हमारे पत्रकार एवं पत्र-पत्रिकायें समय की पुकार एवं आवश्यकता को पहचानें और हिन्दुत्व की रक्षा, प्रचार एवं प्रसार में अपनी शक्ति एवं प्रतिभा का प्रयोग करें।

(पृष्ठ २५ का शेषांश)

कितना समझ सकते हैं, यह उपर्युक्त तथ्यों से भली-भाँति ज्ञात होता है।

'प्राचीन आर्यों का भूला इतिहास' शीर्षक लेख के लेखक ने वेदों को पूर्ण रूप से न जानते हुए, उन पर अपनी सम्मति प्रकट करके एक अनधिकार चेष्टा की है और वेदों से ऐतिहासिक वर्णन निकालने का जहाँ असफल प्रयास किया है, वहाँ उनके प्रति श्रद्धा को हटाकर व्यर्थ में भ्रम फैलाने का अपराध किया है।

अतएव ऐसे विद्वानों से निवेदन है कि वे पाश्चात्य विद्वानों का अन्धानुकरण करना त्यागकर स्वतन्त्र बुद्धि से विचार करना आरम्भ कर दें और वेदों का यथार्थ रूप प्रस्तुत करें। अन्यथा भावी पीढ़ी उन्हें कोसेगी।

(पृष्ठ ३० का शेषांश)

ढंग है। यदि देश को भय से बचने का कुछ उपाय करना है, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, तो राष्ट्रपति के चुनाव को संसद और राज्य सभाओं के विधेयकों से स्वतन्त्र करना होगा। राष्ट्रपति का पद उनको सन्मार्ग पर रखने के लिये ही तो निर्माण किया गया है। अतः राष्ट्रपति का निर्वाचन उनके अधीन नहीं होना चाहिये।

साथ ही राष्ट्रपति का निर्वाचन बहुत सावधानी से होना चाहिये।

एक कहानी

मानव कथा आरम्भ

○

श्री गुरुदत्त

अभी पृथिवी सर्वथा कुँवारी थी, इस पर अभी हल नहीं चला था, इस पर भी अति उर्वरा थी और फल फूल कंद प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते थे। अपने आप ही इतना अधिक उत्पन्न होता था कि किसी प्राणी को पेट भरने की चिन्ता नहीं थी, जन संख्या भी बहुत कम थी।

वर्ष भर ऋतु सम रहती थी, अतः वस्त्रों की कुछ अधिक आवश्यकता अनुभव नहीं होती थी। शरीर ढाँपने के लिए न्यूनातिन्यून वस्त्र ही पहिने जाते थे। सब जीव-जन्तु सुखी थे।

मानव भी अति सुखी था। रहने को साधारण निवास स्थान और शरीर ढाँपने के लिए वस्त्र। बस ये ही आवश्यकतायें थीं, जिनको प्राप्त करने के लिए परिश्रम करना पड़ता था। शेष था भोजन और प्रकृति की अद्भुत सृष्टि, जिसे देख देख विचारशील मानव चकित हो रहा था।

ईश्वर की कृपा से कुछ ऋषि लोग थे, जो बुद्धिशील मनुष्यों को परिश्रम कर आवश्यकताएँ उपलब्ध करने के उपाय बताते रहते थे। उन्होंने जन-साधारण को रहने का मकान, कुटिया इत्यादि बनाने का ढँग बताया और शरीर ढाँपने को वस्त्र उपलब्ध करने का उपाय बताया।

आरम्भ में तो ऋषियों ने बताया था के पेड़ों के पत्ते अथवा छाल इस काम के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं, परन्तु शीघ्र ही मृत जन्तुओं की खालें और तदनन्तर वनस्पतियों के तन्तुओं से और पीछे जन्तुओं के बालों से वस्त्र निर्माण का ढँग पता चल गया।

कथा काल वह है जब ऋषियों की कृपा से मनुष्य निवास स्थान और पहिनने के वस्त्र बनाने लग गया था। इतना सीखने में बहुत काल नहीं लगा। अमैथुनीय सृष्टि के उपरान्त अभी एक आध पीढ़ी ही चली थी। अभी ब्रह्मा, सृष्टि के आदि पुरुष, जीवित थे। उनके पोते पोतियाँ ही अभी उत्पन्न हुई थीं।

परिश्रम के फल का ज्ञान हो जाने पर प्रायः मानव अपनी आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता था। आवश्यकताएँ थीं भी कम और मनुष्य में सामर्थ्य और बुद्धि अभी तीव्र थी। सहज ही सुख सुविधाओं की प्राप्ति हो रही थी।

परन्तु सब मानव एक समान नहीं थे। कुछ ऐसे भी उत्पन्न हो गये थे, जो स्वयं परिश्रम करने के स्थान दूसरे के परिश्रम से निर्मित वस्तुओं को छीना झपटी करना सुगम अनुभव करते थे। कुछ ऐसे भी थे जो विद्वानों द्वारा बताये उपायों को न तो समझ सकते थे, न ही उनको प्रयोग करने में रुचि रखते थे। अतः जहाँ नव निर्मित मानव अपने सुख सुविधाओं की उपलब्धि में परिश्रम कर रहा था, वहाँ ऐसे भी थे, जो बिना परिश्रम किये दूसरों के परिश्रम के फल को अपने प्रयोग में लाने की ही लालसा बना रहे थे। इसी प्रकार के प्राणियों में एक पुलोम नाम का कुमार भी था।

जब पुलोम अपना भोजन स्वयं उपलब्ध करने की योग्यता प्राप्त कर चुका तो, पुलोम के माता पिता उसे छोड़ चले गए। कहां? कोई नहीं जानता था। पुलोम एक पेड़ के नीचे सो रहता था। भूख लगती तो जंगल में चला जाता और किसी जन्तु को, पत्थर मार घायल कर पकड़ लेता। आग जलाने का ढंग उस के पिता ने उसे बता दिया था। वह आग जला लेता और जानवर को भून कर खा जाता था। कभी मरे जन्तु की खाल उतार, सुखाकर शरीर ढाँपने को वस्त्र बना लेता। वन में फल मूल पर्याप्त मात्रा में मिलते थे, परन्तु उनको उखाड़ने अथवा पेड़ पर चढ़ कर उतारने की अपेक्षा किसी जन्तु को मार लेना सुगम समझ, प्रायः माँस खाने में वह सुख मानता था।

वहीं वन के किनारे देव नाम का एक परिश्रमी जीव भी रहता था। उस ने अपने रहने के लिए एक स्वच्छ, सुन्दर गृह और उसके चारों ओर वाटिका बना ली थी। वह सदा विद्वानों की संगत में रहता था और उनसे नई नई बातें सुनता समझता और फिर उन पर कार्य करता था। इस प्रकार सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत कर रहा था। उसको एक पत्नी थी और उस पत्नी से एक सन्तान भी थी। यह एक कन्या थी। कन्या का नाम उस ऋषि ने पुलोमा रखा था।

पुलोमा अभी बालिका मात्र ही थी कि उस की दृष्टि निवास गृह से बाहर पेड़ के नीचे सोते बालक पर जा पड़ी। वह अपनी माँ माधवी के साथ वन विहार कर लौट रही थी जब उसने पुलोम को देखा। वह वृक्ष के नीचे गहरी नींद सो रहा था। लड़की उसे देख खड़ी हो गई और माँ से पूछा

लगी ? "यह कौन है ?"

"एक लड़का है।"

"यहाँ क्यों सो रहा है ?"

"इसने मकान नहीं बनाया ?"

"क्यों ?"

"यह बनाना जानता नहीं। बनाना सीखना नहीं चाहता।"

"बाबा इसको सिखा क्यों नहीं देते ?"

"हमारी गाय भी मकान बनाना नहीं जानती। उसे सिखाने पर वह सीखती भी नहीं।"

"क्यों नहीं सीखती ?"

"उसमें सीखने की बुद्धि नहीं ?"

"तो इसमें भी सीखने की बुद्धि नहीं ?"

"होती तो अवश्य इस दिशा में यत्न करता।"

"पर माँ ! हमने गाय के लिए तो मकान बना दिया है। इसके लिए भी बना दें तो कैसा रहे ?"

"गाय हम को दूध देती है।"

"इसको मकान बना देंगे तो यह भी हमारा कुछ काम कर देगा।"

माँ विचार करने लगी और फिर बोली, "अच्छा। तुम्हारे बाबा से कहूँगी।"

पुलोमा की बात पुलोमा के पिता देव से कही गई। उसको भी बात समझ में आ गई। अगले दिन वर्षा हो रही थी। देव गृह के बाहर पड़े रहने वाले कुमार को देखने चल पड़ा। निवास गृह से कुछ अन्तर पर, पुलोम एक वृक्ष के नीचे सिकुड़ कर बैठा, वर्षा से बचने का यत्न कर रहा था। देव वहाँ पहुँचा और पुलोम को सम्बोधित कर पूछने लगा, "तुम को यहाँ कष्ट नहीं होता क्या ?"

"होता है, परन्तु वर्षा तो कुछ ही देर में हट जायेगी और फिर कष्ट नहीं रहेगा।"

"मैं तुम को अपने गृह में स्थान दे सकता हूँ।"

"क्यों दोगे ?"

"तुम मेरी वाटिका की क्यारियों में जल दे दिया करना।"

"कैसे ?"

"कुएं से निकाल कर।"

"तो यह नित्य करना होगा।"

"हाँ। और नित्य ही वहाँ रह सकोगे।"

"पर मैं वन में पशु मार कर खाता हूँ।"

"तुम को वाटिका के फल कंद मूल मिल सकेंगे।"

"नहीं मैं वन पशु ही खाऊँगा।"

"जैसा मन करे करना।" देव का विचार था कि जब इस को पता चलेगा कि फल सुगमता से प्राप्त होते हैं और मांस से स्वादिष्ट होते हैं तो यह पशुओं को मारना बन्द कर देगा। इस कारण वह मान गया।

पुलोम देव के मकान के एक कोने में रहने लगा। उस ने कदली फल खाया तो उसको भला प्रतीत हुआ और वह फल खाने लगा। वह देव की वाटिका में जल देने का काम करने लगा और उस के निवास गृह में गाय के मकान के साथ उसे भी एक कुटिया बना दी गई।

कई दिन व्यतीत हो गए। देव उसके काम से प्रसन्न था और पुलोम को वहाँ सुख था। इस पर भी पुलोम कभी कभी अनुभव करता था कि उसके जीवन में कुछ रसमय बात विलुप्त हो गई है। वह समझ नहीं सका था कि क्या विलुप्त है। इस कारण कभी-कभी उसके जीवन में उदासी के क्षण आते थे।

(२)

एक दिन पुलोम उदासी में वन में घूम रहा था कि उस की दृष्टि एक बिलार पर पड़ी। बिलार को देखते ही उसका हाथ एक पत्थर पर जा पड़ा। उसने पत्थर उठाया और बिलार के सिर का निशाना बांध दे मारा। पत्थर बिलार के सिर पर लगा। वह घायल हुआ और अचेत हो भूमि पर लेट गया।

पुलोम ने उसे उठाया। दुम से पकड़ लटकाये हुए वह निवास गृह पर आ पहुँचा। उस के जीवन का अभाव मिट गया था और वह आज प्रसन्न था। उसने अपनी कुटिया के बाहर आग जलाई और उस अचेत बिलार को उसमें भूनने के लिए अग्नि में लटका दिया।

बिलार अचेत था। अग्नि की गर्मी से वह होश में आ गया और चिचलाने लगा तथा उछल-कूद मचाने लगा।

देव की लड़की पुलोमा किसी जानवर के चिल्लाने का शब्द सुन गृह से निकल आई। पुलोम को बिलार की दुम से पकड़े अग्नि के ऊपर लटकाये हुए खड़े देख तथा बिलार को चिचलाते देख वह भयभीत घर को भागी और माँ की गोदी में मुख छुपा पड़ गयी।

माँ ने पूछा, "क्या हुआ है ?"

"माँ ! बहुत भयंकर है।"

"कौन ?"

"वही जो वाटिका में काम करता है, पुलोम।"

"क्या किया है उसने ?"

पुलोमा ने बिलार की कथा सुना दी। उसने बिलार के चीं चीं करने की करुणाजनक आर्तनाद की नकल उतार कर सुनायी।

मां ने कह दिया, "वह राक्षस है। अपने कर्म का फल वह भोगेगा और हम अपने कर्म का फल।"

"माँ, राक्षस क्या होता है ?"

"राक्षस उसको कहते हैं, जो अपने सुख स्वाद के लिए दूसरों के दुःख दर्द का विचार न करे।

"पर माँ, वह उसको भून कर क्या करेगा ?"

"उसकी चमड़ी उतार देगा और भीतर कोमल कोमल माँस दातों से नोच नोचकर खाएगा।"

पुलोमा की चीख निकल गयी और भय से वह काँपने लगी। माँ ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, 'डरो नहीं पुलोमा ! हम ऐसा कर्म नहीं करते। इस कारण हमको ऐसा कष्ट प्राप्त नहीं होगा।"

"तो उसको होगा ?"

"निस्सन्देह।"

"कब होगा ?"

"अगले जन्म में। उसका यह जन्म समाप्त होगा। तब वह किसी वन पशु के शरीर में चला जायेगा और कोई उसको भी पकड़ कर भून कर खा जायेगा।"

"पर वह तो मर जायेगा।"

माँ मुस्कराई और कहने लगी, "पुलोम, हम, तुम सब प्राणी यह शरीर ही नहीं हैं। यह शरीर मरता है। इसमें उपस्थित जीव दूसरे शरीर में चला जाता है और फिर जन्म लेता है। जो इस जन्म में दूसरों को कष्ट पहुँचाता है, वह वैसा ही कष्ट किसी दूसरे जन्म में भोगता है।"

इससे पुलोमा को सांत्वना मिली। इसपर भी उसका समाधान नहीं हुआ। उस ने पूछ लिया, "पर माँ, वह ऐसा करता ही क्यों है ? उसको इतना क्रूर किसने बनाया है ?"

"उसके अपने कर्मों ने। इस क्रूरता को रखता हुआ भी, वह ये कार्य नहीं भी कर सकता। ईश्वर ने उसमें बुद्धि दी है। यदि वह अपनी बुद्धि का प्रयोग करता तो वह इस क्रूर फर्म से बच सकता था। वह बुद्धि का प्रयोग नहीं कर रहा। करता तो वह यह विचार करता कि इस बिलार ने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा। इस कारण इसको कष्ट देकर वह न्याय नहीं कर रहा।"

पुलोमा इस सब गोरख धंधे को सुन कर विस्मय में माँ का मुख देखने लगी। उसे परेशान देख माँ ने आगे कह दिया, "देखो पुलोमा! जब कोई लड़की अपने माता-पिता का कहा नहीं मानती, तो उसको इसी प्रकार का पति मिल जाता है। वह उसको भून भानकर खा जाता है।"

"पर माँ, कहना तो मैं भी नहीं मानती।"

"तो अब से माना करो। नहीं तो तुम्हारे बाबा तुम्हारा विवाह पुलोम से कर देंगे।"

पुलोमा एक हठी लड़की थी। परन्तु पुलोम की क्रूरता देख और अपना उससे विवाह कर दिए जाने की बात सुन वह काँप उठी :

यह बात पुलोम को पता चल गई थी कि पुलोमा का उससे विवाह किए जाने की सम्भावना है। वह बहुत प्रसन्न था। उसके मन की यह बात एक दिन उसके मुख से निकल गई।

वह एक मुर्गा भूनकर खा रहा था। पुलोमा ने उसे देखा तो पूछ लिया, "यह क्या खा रहे हो?"

'यह एक मुर्गा है।"

"तुम यह क्यों खाते हो? यह तो पाप है।"

"मुझे यह स्वाद लगता है।"

"तुम स्वयं भी एक दिन इसी प्रकार जला भूनकर खा लिए जाओगे।"

"जब कोई मुझे पकड़ कर भूनेगा तो मैं उसको भून कर खा जाऊँगा। पुलोमा, यह बहुत स्वाद है।"

"तुम राक्षस हो।"

"पर मैं तो तुम से विवाह करूँगा। तुम्हारे बाबा तुम्हारा मुझसे विवाह करेंगे।"

"नहीं करेंगे।"

पुलोम ने पुलोमा को पकड़ कर बताना चाहा कि वह विवाह कर सकता है। पुलोमा भयभीत भागी और उसने माँ से पुलोम की शिकायत की— "मां वह मुझको पकड़ कर मुझ से विवाह करना चाहता था। मैं भाग आई

हूँ। मैं उससे विवाह नहीं करूँगी।"

देव की पत्नी डर गई। उसने पुलोमा के पिता से पुलोम की शिकायत की और वह गृह से निकाल दिया गया।

(३)

पुलोम को देव के घर से निकाले जाने का शोक तो इस कारण हुआ था कि उसके मन का स्वप्न, कि उसका पुलोमा से विवाह होगा, भंग हो गया था। वनों में घूमने और वन पशुओं का माँस खाने से वह दिन प्रति दिन अधिक और अधिक भयानक होता गया। उसका काम यह हो गया कि वह जिस किसी को मार ले, उसका ही माँस भून कर खा जाता। मारे पशुओं की खालों के वस्त्र बना पहिनता और स्वच्छंद विचरता। इस जीवन से वह अति सुख अनुभव करता था।

कई वर्ष व्यतीत हो गये। वह एक भयंकर आकृति वाला पशु हो गया। पशु इस विचार से कि उसका जीवन पशुओं की भाँति पेट भरना और विषय वासना की तृप्ति करना मात्र रह गया। कई देव कन्यायों को उसने पतित किया और अपने कुकर्म को छिपाने के लिये उनको मार कर तथा भून कर खा गया। अब तो उसे नर माँस वन-पशुओं के माँस से अधिक स्वादिष्ट लगने लगा था।

उसका मकान तो कोई था नहीं। जहाँ रात हो गयी, वहाँ ही सो रहा। धूप हुई तो पेड़ की छाया में जा बैठा। वर्षा हुई तो घने वन में चला गया और वर्षा बंद होते ही वह पुनः अपने उदर पूर्ति के उपाय में लग जाता।

एक दिन घूमते घूमते वह महर्षि भृगु के आश्रम में जा पहुँचा। वहाँ वह किसी देव कन्या अथवा देव पत्नी को अपनी वासना तृप्ति के लिये पाने की आशा कर रहा था। एकाएक उसकी दृष्टि महर्षि की नवविवाहिता पर जा पड़ी। वह उसे देख पहिचान गया। वह पुलोमा थी।

पुलोमा का विवाह महर्षि से हो गया था। महर्षि ने पुलोमा को वेद की शिक्षा दी और उसको धर्म-अधर्म की मीमाँसा बतायी। इस मीमाँसा को सुन उसे पुलोम एक वन पशु ही समझ आया था।

आज एक भयंकर जीव को अपने सामने देख वह त्रसित खड़ी रह गयी। वह अपनी कुटिया के निकट वाटिका में टहल रही थी। वह गर्भ से थी और महर्षि ने उसे भ्रमण का आदेश दे रखा था।

पुलोमा एक भयंकर जीव को अपने सामने देख वापिस कुटिया में लौटने लगी तो पुलोम ने उसका मार्ग रोक कहा, "पुलोमा! मुझे पहिचाना नहीं?"

"नहीं? तुम कौन हो?" भयभीत पुलोमा ने पूछा।

"मैं पुलोम हूँ। तुम्हारा बचपन का साथी और तुम्हारे पिता से नियत तुम्हारा पति।"

"नहीं, यह गलत है। मेरा विवाह मेरे पिता ने यहाँ के आश्रम के महर्षि भृगु महाराज से किया है।"

"यह कैसे हो सकता है? तुम मेरी पत्नी हो।"

"तुम झूठ कहते हो। मेरे पिता का ऐसा आशय कभी नहीं था।"

इस समय देव के घर का होत्री पावक वहाँ पुलोम को दिखायी दे गया। उसने कहा, "मेरी बात का एक साक्षी है। वह देखो, तुम्हारे पिता का होत्री खड़ा है। उससे पूछ लो। वह मेरी साक्षी भरेगा।"

पुलोम ने स्वयं ही उसे आवाज दे बुला लिया और जब वह समीप आया तो उसको डाँट के भाव में कहा, "बताओ पावक! इस लड़की के पिता ने इसे मेरे लिये नियत किया था अथवा नहीं?"

पावक ने पुलोम को देखा, पहिचाना और कह दिया, "हाँ। जब यह अभी बालिका मात्र थी और तुम भी बचपन में अति सुन्दर प्रतीत होते थे। तब देव ने तुम्हें इसका पति बनाने का विचार किया था। तभी तो तुम्हारे नाम पर इसका नाम पुलोमा रखा था।"

पुलोम इस साक्षी से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, "ठीक है। उस महर्षि को कह देना कि वह पुलोमा को उठा लाया था, आज मैं यहाँ आया था और अपनी पत्नी को पहिचान पकड़कर ले गया हूँ।"

इतना कह पुलोम ने पुलोमा को उठा कंधे पर डाला और वन को चला गया। महर्षि उस समय आश्रम में नहीं थे। वह जब आये तो उसे पुलोमा के हरण का समाचार बताया गया। इस पर पुलोमा की खोज आरम्भ हुई।

दूर वन में पुलोमा अपने नवजात शिशु को गोदी में लिये बैठी थी और उसके समीप ही एक विशाल काय दैत्य जल रहा था।

महर्षि ने पूछ लिया, "यह क्या है?"

"यह दैत्य मुझे बल पूर्वक पकड़ कर यहाँ ले आया था और मुझसे बलात्कार करने लगा। तब ये महात्मा उत्पन्न हो गये। इसे देख वह भयभीत हो मुझे छोड़ इसकी हत्या करने दौड़ा। परन्तु पूर्व इसके कि वह इसे छूए, वह चटपट जलने लगा। मैं नहीं जानती कि कैसे? वह जीवित आग की लपेट में आ जाने से चीखने और पुकारने लगा। परन्तु शीघ्र ही वह अचेत हो यहाँ गिर गया और अब वह जल रहा है।"

भृगु इस सब पर विश्वास नहीं कर सका। इस पर भी उसने एक बात कह दी, "कुछ भी हो, तुम पतित हो गयी हो। मैं तुम को और तुम्हारे पुत्र को ग्रहण नहीं कर सकता।" इतना कह महर्षि भृगु पुलोमा को वहीं छोड़ आश्रम को लौट गया।

पुलोमा अपने बच्चे को लिए हुए पितामह के पास पहुँची और उनसे न्याय की याचना करने लगी।

ब्रह्मा ने उसे पाप मुक्त घोषित कर दिया। साथ ही कह दिया कि बालक पिता से भी अधिक ओजस्वी और धर्मात्मा होगा। चूँकि यह बालक गर्भपात होने से उत्पन्न हुआ है, इस कारण इसका नाम च्यवन होगा।

आपका पुस्तकालय और हमारा सहयोग

१. हमारी पुस्तकालय योजना के सदस्य बनिये । केवल दो रुपये मनी-आर्डर द्वारा भेजकर आप हमारे सदस्य बन सकते हैं ।

२. हमारी नटराज पाकेट बुक्स में से आप अपनी पसन्द की १५ रुपये की चुनी हुई पुस्तकें मंगवाइये और हम केवल १३ रुपये में ये पुस्तकें आपको भेजेंगे । डाक व्यय लगभग दो रुपये हम देंगे । इसके साथ ही—

३. एक लोहे की तार का बना हुआ सुन्दर रैक जिसमें आप अपनी पुस्तकें लगा सकते हैं, बिना मूल्य हम अपनी ओर से आपको भेंट में देंगे।

४. प्रति दो मास बाद जब हमारी नयी पुस्तकें प्रकाशित होंगीं, हम आपको सूचना भेजेंगे । तथा आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें सात रुपये में आपको भेजी जायंगी । यदि नवीन प्रकाशनों में से कोई पुस्तक आप नहीं लेना चाहेंगे तो आप उसके स्थान पर कोई अन्य उसी मूल्य की पुस्तक मंगवा सकेंगे ।

५. बीच की अवधि में कभी भी आप आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें केवल सात रुपये में मंगवा सकेंगे ।

भारती साहित्य सदन,

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

पाकेट माला में श्री गुरुदत्त की रचनाएँ

अन्तिम यात्रा	१.००
एक और अनेक	१.००
कामना	२.००
खेल और खिलौने	२.००
गुण्ठन	३.००
गृह संसद	२.००
चंचरीक	१.००
छलना	२.००
जमाना बदल गया—१	२.००
,, ,, ,, —२	२.००
,, ,, ,, —३	२.००
,, ,, ,, —४	२.००
,, ,, ,, —५	२.००
,, ,, ,, —६	२.००
,, ,, ,, —७	२.००
,, ,, ,, —८	३.००
,, ,, ,, —९	३.००
जीवन ज्वार	३.००
देश की हत्या	३.००
दो भद्र पुरुष	२.००
द्रष्टा	२.००
धरती और धन	३.००
धर्म और समाजवाद	३.००
नयी दृष्टि	३.००
नये विचार नई बातें	२.००
निष्णात	२.००
निर्मल	२.००
पतन का मार्ग	३.००
पाणिग्रहण	३.००
प्रेरणा	३.००
बहती रेता	३.००
बीती रात	१.००
भाग्य का सम्बल	२.००
भाग्य रेखा	१.००
मानव	३.००
मायाजाल	३.००
यह सब झूठ है	२.००
लालसा	३.००
लोक परलोक	२.००
विकृत छाया	२.००
विकार	२.००
विडम्बना	३.००
विद्यादान	२.००
विश्वास	१.००
संस्खलन	२.००
सम्भवामि युगे युगे—१	२.००
,, ,, —२	२.००
साहित्यकार	२.००
स्नेह का मूल्य	२.००

भारती साहित्य सदन

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

कुछ विशेष प्रचारित साहित्य

भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ भाग—१	ले० श्री सावरकर		२.५०
भाग—२	,,		२.२५
भाग—३	,,		४.००
१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर	,,		१८.००
हिन्दू पद पादशाही	,,		६.५०
हिन्दुत्व	,,		३.५०
मोपला (उपन्यास)	,,		४.००
गोमान्तक ,,	,,		४.००
मोपला-गोमान्तक संयुक्त पाकेट संस्करण	,,		३.००
अमर सेनानी सावरकर : जीवन झांकी	ले० शिवकुमार गोयल		२.५०
भारत और संसार	श्री बलराज मधोक		५.००
भारत की सुरक्षा	,,		४.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	,,		६.००
अन्तिम यात्रा	श्री गुरुदत्त	सजिल्द	२.००
अन्तिम यात्रा	,,	पाकेट संस्करण	१.००
धर्म संस्कृति और राज्य	,,		८.००
धर्म तथा समाजवाद—	,,	सजिल्द संस्करण	६.००
धर्म तथा समाजवाद—	,,	पाकेट संस्करण	३.००
देश की हत्या (उपन्यास)	,,	सजिल्द	६.००
देश की हत्या	,,	पाकेट संस्करण	३.००
जमाना बदल गया	,,	सजिल्द ४ भाग	३६.००
जमाना बदल गया	,,	पाकेट ६ भाग	२०.००
मेरे अन्त समय का आश्रय : श्रीमद्‌भगवद्‌गीता	भाई परमानन्द		५.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ता कुमार	सजिल्द	३.००
धरती है बलिदान की	,,	पाकेट संस्करण	१.००
हिमालय पर लाल छाया	,,		१२.००
शक्तिपुत्र शिवाजी	श्री सीताराम गोयल		१.५०

भारती साहित्य सदन (बिक्री विभाग)

३०/९० कनाट सरकस नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं राष्ट्र भारती प्रेस, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनॉट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

शाश्वत वाणी विशेषाँक

प्रेरणात्मक एवं रोचक साहित्य

धर्म संस्कृति और राज्य	श्री गुरुदत्त	८.००
धर्म तथा समाजवाद	,,	६.००
मेरे अन्त समय का आश्रय : श्रीमद्भगवद्गीता	भाई परमानंद	५.००
हिमालय पर लाल छाया	श्री शान्ताकुमार	१२.००
अमर सेनानी सावरकर : जीवन झाँकी	श्री शिवकुमार गोयल	२.५०
धरती है बलिदान की	श्री शान्ताकुमार	३.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	श्री बलराज मधोक	६.००
भारत और संसार	,, ,,	५.००
भारत की सुरक्षा	,, ,,	४.००
शक्तिपुत्र शिवाजी (पाकेट संस्करण)	श्री सीताराम गोयल	१.५०
साम्यवाद के संघर्ष ,, ,,	च्याँग काई शेक	२.००
अन्तिम यात्रा (डा० मुखर्जी की)	श्री गुरुदत्त	२.००
देश की हत्या (उपन्यास)	,,	६.००
ज़माना बदल गया ,, चार भागों में	,,	४०.००
गंगा की धारा ,, दो भागों में	,,	१८.००
खण्डहर बोल रहे हैं ,,	,,	८.५०
छलना ,,	,,	७.००
पुष्यमित्र ,,	,,	४.००
वीर पूजा ,,	,,	३.००

उपर्युक्त पुस्तकों में से निम्न पुस्तकों के पाकेट संस्करण (सम्पूर्ण) भी उपलब्ध हैं। पाठक आर्डर देते समय स्पष्ट लिखें कि कौन-सा संस्करण भेजा जाए।

धर्म तथा समाजवाद	श्री गुरुदत्त	३.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ताकुमार	१.००
अन्तिम यात्रा	श्री गुरुदत्त	१.००
देश की हत्या	,,	३.००
ज़माना बदल गया (नौ भागों में)	,,	२०.००
छलना	,,	२.००
वीर पूजा	,,	१.००

भारती साहित्य सदन

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

जुलाई १९६८ वर्ष ८—अंक ७ रजि० क्र० ६६८६/६०

शाश्वत वाणी

डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी विशेषांक

लेख क्रम

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

सरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
पं० भगवद्दत्त
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७-एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी

स्वराज्य काल के प्रथम मन्त्री-मण्डल पर, यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाये तो तीन व्यक्ति ऐसे दिखाई देते हैं जो मन्त्री-मन्डल के अन्य साथियों की तुलना में हिमालय की चोटियों की भाँति गगन का चुम्बन करते हुए प्रतीत होते हैं। इनमें एक थे जवाहरलाल नेहरू, दूसरे सरदार वल्लभ भाई पटेल और तीसरे डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी थे। मन्त्री-मण्डल के भीतर के जो समाचार अब सार्वजनिक ज्ञान में आ रहे हैं, उनसे यही विदित होता है कि मन्त्री-मण्डल के अन्य सदस्य प्रायः कांग्रेस आन्दोलन के उपरान्त पेन्शन प्राप्त करने वाले वृद्ध जन थे।

नेहरू अपने बाल्यकाल के संस्कारों के कारण और अपने परिवार में अपने पिता की चलाई परम्पराओं के कारण एक तानाशाह के रूप में कार्य करते थे। जो कुछ वह कह देते थे, वह दूसरों को मानना ही पड़ता था। कभी किसी ने नेहरू के कथन अथवा व्यवहार पर संशय प्रकट किया तो उसे डाँट दिया जाता था। इससे अधिकांश सदस्य मत-भेद होते हुए भी मौन रहने में ही अपना हित समझते

थे। इस प्रकार ही उनकी लगी हुई पेंशन चालू रह सकती थी।

सरदार वल्लभ भाई पटेल का जवाहर लाल नेहरू से आरम्भ से ही मतभेद था। वैसे तो दोनों महानुभाव बैरिस्टर थे, परन्तु जहाँ नेहरू एक थर्ड क्लास विद्यार्थी थे वहाँ सरदार पटेल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते रहे थे। इस पर भी भारत के राजनीतिक गगन-मण्डल में नेहरू का सितारा ऊँचा रहा और वल्लभ भाई पटेल का नीचा। इसके कई कारण हैं। जवाहरलाल गौर-वर्णीय, चिकना-चुपड़ा मुख, सुन्दर आँखें और लम्बी गरदन वाले तथा चपल और दृढ़ शरीर रखते थे। इसके विपरीत सरदार पटेल गहरे गन्दमी रंग के, मोटा भद्दा शरीर, कम बोलने वाले तथा सत्य व स्पष्टवादी थे। एक अहिन्दू, अन्तर्राष्ट्रीय तथा समाजवादी था तो दूसरा हिन्दुत्व की धारणा से ओत-प्रोत, देशभक्त और व्यवहार में कुशल व्यक्ति था।

गाँधी को नेहरू पसन्द आया और यदा-कदा वे नेहरू को जनता के सामने लाने के लिए प्रयत्नशील रहे। नेहरू चार बार काँग्रेस के प्रधान बने। सन् १९२९ में, '३६ में, '४६ में और १९५० में। सरदार पटेल एक बार सन् १९३१ में काँग्रेस के प्रधान बने, परन्तु जवाहर लाल से मतभेद होने के कारण गोलमेज कान्फ्रेंस में उनके जाने का विरोध करने के लिए कांग्रेस का एक मात्र प्रतिनिधि महात्मा गाँधी को बना दिया गया। महात्मा गाँधी गोलमेज कान्फ्रेन्स में जाकर विघटनात्मक कार्य ही करने में सफल हुए।

जवाहर लाल और सरदार पटेल का मतभेद मन्त्री-मण्डल में भी चलता रहा। यद्यपि प्रधान मन्त्री जवाहर लाल थे और किसी को मंत्री पद पर रखना और निकाल देना उनके हाथ में था तो भी सरदार पटेल वहाँ अपना प्रभाव रखते थे और जवाहर लाल को समय-समय पर सरदार पटेल की अनुमति से काम करना पड़ता था।

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी प्रायः सरदार पटेल के पक्ष में रहते थे। इनका सरदार पटेल से भी मतभेद तो था। उन दिनों डाक्टर साहब हिन्दू महा सभा के प्रधान थे और सरदार पटेल काँग्रेस के मान्य नेता। विचारधारा में स्पष्ट अन्तर था, परन्तु सरदार पटेल डाक्टर साहब के अधिक समीप थे और नेहरू बहुत दूर। हिन्दू महा सभा का सदस्य न होते हुए भी सरदार पटेल भावनाओं से हिन्दू थे। इस कारण डाक्टर साहब और सरदार पटेल में विचार समानता भी थी और जब-जब भी नेहरू कोई हिन्दू विरोधी कार्य करने लगते तो डाक्टर साहब, सरदार वल्लभ भाई पटेल से मिल कर नेहरू का विरोध करते थे।

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी, स्वातन्त्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर की प्रेरणा से हिन्दू महा सभा में सन् १९३८ में सम्मिलित हुए थे और तब से वे निरन्तर हिन्दू महा सभा का काम करते रहे थे। मन्त्री-मण्डल में सम्मिलित होते समय वे हिन्दू महा सभा के प्रधान थे। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जाता था, नेहरू और सरदार पटेल में मतभेद बढ़ता जाता था। यद्यपि सरदार पटेल अपने कार्यों में सफल हो रहे थे और नेहरू के वे कार्य जिनको वे सरदार की रुचि के विपरीत करते थे, असफल हो रहे थे। इस पर भी मन्त्री-मण्डल में बहुत सी भेड़ों के इकट्ठा हो जाने के कारण बात नेहरू की चलती थी और वाह वाह पटेल की होती थी।

दोनों में गम्भीर मतभेद भारत सरकार के कश्मीर और पाकिस्तान के साथ व्यवहार के विषय में रहता था। नेहरू कश्मीर में शेख अब्दुल्ला को सर्वेसर्वा बना रहे थे और पाकिस्तान को भारत के हितों से भी ऊँची स्थिति पर रखने का यत्न कर रहे थे। इन दोनों विषयों में डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, पटेल साहब के दृष्टिकोण के समर्थक थे।

सरदार पटेल और नेहरू में प्रथम संघर्ष सन् १९४७ में ही हुआ। सरदार पटेल पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपया देने का विरोध कर रहे थे। यह रुपया देश विभाजन के समय देश की सम्पत्ति के बटवारे के हिसाब में था। यह निश्चय हुआ था कि भारत सरकार पाकिस्तान को शीघ्र ही पचपन करोड़ रुपया देगी और भारत सरकार ने इसी हिसाब में जो तीन सौ करोड़ पाकिस्तान से लेना है, उसके लिए कुछ काल तक प्रतीक्षा करेगी। इस बीच में कश्मीर पर पाकिस्तान ने आक्रमण कर दिया और सरदार का विचार था कि इस युद्ध की अवस्था में वह रुपया पाकिस्तान को नहीं देना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि मन्त्री-मण्डल ने सरदार पटेल के रुपया न देने के प्रस्ताव को पारित कर दिया था। रुपया देने के पक्ष में केवल नेहरू और मौलाना आजाद थे। मन्त्री-मण्डल में अपने पक्ष की पराजय को नेहरू सह नहीं सके। वे लार्ड माउण्टबेटन के पास मन्त्री-मण्डल के निर्णय का समाचार लेकर गए। लार्ड माउण्टबेटन स्वत: अथवा नेहरू की प्रेरणा पर महात्मा जी से मिले। महात्मा गांधी को जवाहर लाल का पक्ष ठीक प्रतीत हुआ और उन्होंने मन्त्री-मण्डल को जवाहर लाल की बात मानने पर विवश करने लिए भूख हड़ताल कर दी। गांधी की भूख हड़ताल से कांग्रेस में हाहाकार मच गया और सरदार पटेल विवश हो गए। उन्होंने इस विषय को पुन: विचारार्थ मंत्री-मण्डल में रख दिया। मन्त्री मंडल भी भयभीत हो जवाहर लाल के मत का

समर्थन करने लगा। इस बार मन्त्री-मंडल ने केवल दो मतों के विरोध में पचपन करोड़ रुपया देना स्वीकार कर लिया। ये दो मत थे डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी और डाक्टर अम्बेदकर। सरदार पटेल ने भी रुपया देने के पक्ष में मत दिया।

इससे यह स्पष्ट होता है कि डाक्टर मुखर्जी, सरदार से भी अधिक पाकिस्तान के साथ युक्तियुक्त व्यवहार रखने के पक्ष में थे।

पुन: विवाद हुआ सन् १९५० में। पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दुओं को मार मार कर निकाला जा रहा था। उनकी सम्पत्ति लूटी जा रही थी, मकानों को आग लगाई जा रही थी और स्त्रियों का अपहरण हो रहा था। लाखों की संख्या में पूर्वी पाकिस्तान के हिन्दू कलकत्ता में शरणार्थी के रूप में एकत्रित हो गए थे। इस विषय पर मन्त्री-मंडल में उग्र विवाद हुआ। डाक्टर श्यामा प्रसाद मुखर्जी का मत था कि इन हिन्दुओं को अपनी सेना के संरक्षण में वापिस इनके घरों में ले जाकर ठहराना चाहिए। अन्यथा इनकी संख्या के अनुसार पाकिस्तान के क्षेत्र पर अधिकार कर इन शरणार्थियों को वहाँ बसाना चाहिए। इसके विपरीत नेहरू पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री लियाकत अली खाँ से बात-चीत द्वारा निश्चय करना चाहते थे। डाक्टर साहब को इस प्रकार की बातचीत में विश्वास नहीं था। कहा जाता है कि मन्त्री मंडल की एक बैठक में नेहरू और डाक्टर मुखर्जी में खूब विवाद हुआ और दोनों क्रोध में ऊँचे ऊँचे बोलने लगे। श्री एन० बी० गाडगिल के कथनानुसार हाथा-पाई होने वाली प्रतीत होती थी कि मन्त्री मंडल की बैठक विसर्जित कर दी गई। इस व्यवहार पर डाक्टर मुखर्जी ने मन्त्री-मंडल से त्याग-पत्र दे दिया। श्री नियोगी, मन्त्री मंडल के एक अन्य सदस्य भी त्याग-पत्र दे, बाहर आ गए। यद्यपि सरदार पटेल भी लियाकत अली से बातचीत के पक्ष में नहीं थे तो भी वे डाक्टर साहब के त्याग-पत्र को पसन्द नहीं करते थे। डाक्टर साहब समझते थे कि लियाकत अली से बातचीत का कुछ भी परिणाम नहीं होगा और नेहरू कुछ न कुछ ऐसी बेहूदा बात मान आयेगा जो भारत के लिए अत्यन्त हानिकर होगी।

हुआ भी ऐसा ही। लियाकत अली से बातचीत हुई और एक समझौता हो गया। श्री गाडगिल के कथनानुसार इस समझौते में दो शर्तें ऐसी थीं, जिनका परिणाम भारत में रहने वाले मुसलमानों को सरकारी सेवाओं में और विधान सभाओं में पृथक प्रातिनिध्य दिया जाना था। डाक्टर साहब कुछ इसी प्रकार की मूर्खता की आशा करते थे। यद्यपि यह पृथक् प्रातिनिध्य की बात मन्त्री-मंडल ने अस्वीकार कर दी, परन्तु नेहरू की मानसिक अवस्था का

दिग्दर्शन हो गया। पटेल इस समय भी मन्त्री-मंडल में टिके रहे और नेहरू अपनी बेढंगी चाल चलते रहे।

डाक्टर मुखर्जी मन्त्री-मंडल से बाहर आ संसद में विरोधी दल का संगठन करने लगे। इसके कुछ काल उपरान्त नए निर्वाचन आ गए और डाक्टर साहब नयी संसद में एक विरोधी दल का निर्माण करने में लग गए। उस समय लगभग पाँच सौ सदस्यों की संसद में केवल सोलह-सत्रह सदस्यों का विरोधी दल बन सका और वह भी कई प्रकार के विचार के लोगों को एकत्रित करके। डाक्टर साहब स्वयं जनसंघ के प्रतिनिधि थे। इनके साथ जनसंघ का एक सदस्य और था। शेष जनसंघ से बाहर के थे। इस छोटे से दल ने भी अपना प्रभाव जमाना आरम्भ कर दिया।

इस समय कश्मीर का आन्दोलन उग्र हो रहा था। कश्मीर में प्रजा परिषद कश्मीर का भारत में पूर्ण विलय चाहती थी। शेख अब्दुल्ला इसका घोर विरोध कर रहा था। नेहरू उचित समय आने पर जन मत संग्रह द्वारा निर्णय करना चाहते थे। इस गड़बड़ में भारतीय जनसंघ ने जम्मू-कश्मीर की प्रजा परिषद के समर्थन का निर्णय किया। प्रजा परिषद सत्याग्रह कर रही थी। जनसंघ भी उसमें सम्मिलित हो गया। इस आन्दोलन में श्री डाक्टर मुखर्जी अपने कुछ साथियों के साथ कश्मीर में जाकर शेख अब्दुल्ला से मिलना चाहते थे। कश्मीर जाने के लिए भारत के नागरिकों को परमिट लेने की आवश्यकता थी। डाक्टर साहब का विचार था कि यह पार-पत्र अवैधानिक है। इस कारण उन्होंने एक पत्र देश के विदेश विभाग को भेजकर यह जानने का यत्न किया कि पार-पत्र की आवश्यकता किस कानून के आधार पर है ? विदेश विभाग ने कोई उत्तर नहीं दिया। डाक्टर मुखर्जी ने भारत सरकार को सूचित कर दिया कि वे पार-पत्र लेना आवश्यक नहीं समझते। इसलिए अमुक तिथि को बिना पार-पत्र के वे कश्मीर जा रहे हैं। वे गये। उनके साथ वैद्य श्री गुरुदत्त और श्री टेकचन्द शर्मा भी थे। ये तीनों महानुभाव माधोपुर के रावी का पुल पार करते हुए पकड़ लिए गए और इन्हें श्रीनगर में ले जाकर एक कोठी में, जिसे विशेष रूप से बन्दी-गृह बनाया गया था, रख दिया गया।

डाक्टर मुखर्जी और उनके साथी १२ मई सन १९५३ को बन्दी बना कर इस कोठी में रखे गये थे। २२ जून को बीमार होने के कारण डाक्टर साहब को हस्पताल ले जाया गया और २३ जून को प्रातःकाल संदिग्ध स्थिति में उनका देहान्त हो गया।

उन दिनों कश्मीर हाईकोर्ट में डाक्टर साहब के वकील श्री उमाशंकर

त्रिवेदी ने "हैबियस कार्पस" का प्रार्थना-पत्र किया हुआ था और हाईकोर्ट २२ जून सन् १९५३ को उन्हें छोड़ने वाला था, जब सरकारी वकील ने यह कह कर कि उसे कुछ और निवेदन करना है, निर्णय को एक दिन के लिए स्थगित करा लिया। अगले दिन २३ जून सन् १९५३ को प्रातः ३-४० पर डाक्टर साहब का देहान्त हो गया। हस्पताल के डाक्टर ने ऐसी घोषणा की थी। यद्यपि सन्देह है कि देहान्त रात के बारह बजे के लगभग हुआ था। उन परिस्थितियों पर भी सन्देह किया जाता है जिनमें डाक्टर साहब का देहान्त हुआ।

कुछ भी हो, नेहरू साहब का संसद में एक प्रबल विरोधी समाप्त हो गया। डाक्टर साहब का पूर्ण जीवन एक विशेष धारा में प्रवाहित होता हुआ चल रहा था। डाक्टर साहब की आयु उस समय बावन वर्ष के लगभग थी। नेहरू डाक्टर साहब से लगभग बारह वर्ष बड़े थे और डाक्टर साहब की योग्यता, उनका वाणी पर अधिकार, उनके ज्ञान की प्रखरता और बुद्धि की कुशाग्रता नेहरू से कहीं अधिक थी। वे सरदार वल्लभ भाई पटेल से अधिक उग्र विचार और आचरण के थे। ऐसा प्रतीत होता था कि कुछ ही वर्षों में वे कांग्रेस के कुकृत्यों और नेहरू की बेहूदगी को जनता के समक्ष रखकर कांग्रेस राज्य को समाप्त कर देंगे।

देश का दुर्भाग्य था कि जहाँ सरदार पटेल सन् १९५० में स्वर्ग सिधार गए, वहां सन् १९५३ में नेहरू के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी का भी निधन हो गया।

देश का चित्र जो इन दो महानुभावों के निधन के उपरान्त बना, वह केवल नेहरू के एकांकी प्रयास का फल है। इस समय देश में साम्प्रदायिक झगड़े लगभग वैसे ही होने लगे हैं जैसे सन १९४६-४७ में हुए थे। इन साम्प्रदायिक झगड़ों को शान्त करने में कांग्रेस वैसे ही असफल हो रही है जैसे तब हुई थी।

देश में विघटनात्मक प्रवृत्ति सिर उठाने लगी है। कश्मीर अभी तक भारत से पूर्ण विलय प्राप्त नहीं कर सका और कश्मीर की जनता का एक विशाल अंश यह समझ रहा है कि कश्मीर भारत का अंग नहीं है। कश्मीर के रहने वालों का अधिकार है कि वे भारत से अपना काम चलाने के लिए आर्थिक, सैनिक, नैतिक और सामाजिक सहायता लें। परन्तु कश्मीर में एक भी भारत-वासी को एक इंच भर भी स्थान लेने की स्वीकृति न दें। कश्मीर घाटी में हिन्दुओं को अथवा भारतवासियों को रहने की स्वीकृति न दी जाये। यहां तक कि भारत के राष्ट्रपति को भी सम्पत्ति क्रय करने की स्वीकृति न दी जाये।

असम राज्य में खुले आम विद्रोह भड़क रहा है। इस विद्रोह को शान्त करने के लिए भारत सरकार हाथ-पाँव मार रही है, परन्तु कुछ बन नहीं रहा। नागा क्षेत्र, मिजो क्षेत्र और अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में भारत से विलग एवं स्वतन्त्र होने की भावना बढ़ रही है। अन्य राज्यों में भी केन्द्रीय सरकार की भावनाओं और अधिकारों का समय समय पर विरोध होता है। भाषा के विषय में तो एक राज्य ने विद्रोह का झण्डा ऊंचा कर रखा है, एक अन्य राज्य में विद्रोह करने की धमकी दी जा रही है। देश में कोई किसी की नहीं सुनता। सब अपनी-अपनी खिचड़ी पका रहे हैं। देश में सबसे बड़ा भय कम्युनिस्टों ने उत्पन्न कर रखा है। यह सब जवाहर लाल की नीतियों के परिणाम हैं। इन नीतियों का विरोध करते-करते ही डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी का असामयिक एवं संदिग्ध अवस्था में देहान्त हुआ था। यदि वे आज जीवित होते तो निःसन्देह भारत का चित्र इतना निराशाजनक न होता जितना कि अब है।

शाश्वत वाणी

१. भारतीय धर्म, भारतीय संस्कृति एवं भारतीय परम्पराओं के आधार पर देश की राजनैतिक, सामाजिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं पर विचार प्रकट करने वाली यह एक मात्र हिन्दी पत्रिका है।

२. प्रत्येक पाठक से पत्रिका के प्रचार एवं प्रसार की हम अपेक्षा रखते हैं। आप हमें निम्न प्रकार से सहयोग दे सकते हैं:—

क—पत्रिका में अपने विचार प्रकट करें।

ख—पत्रिका के अधिकाधिक पाठक एवं ग्राहक बनाएँ।

३. शाश्वतवाणी का वार्षिक मूल्य केवल ५ रुपये है। पाठकों को वर्षान्त से पूर्व एक विशेषांक बिना मूल्य भेंट किया जाएगा। वह विशेषांक पुस्तकाकार में कम से कम ६ रुपये में ही उपलब्ध हो सकेगा।

शाश्वत वाणी

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

समाचार समीक्षा

देर आयद दुरुस्त आयद !

'शाश्वत वाणी' के जून अंक के इसी स्तम्भ में हमने "श्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा हिन्दू मुस्लिम एकता" शीर्षक एक लेख प्रकाशित किया था। उस लेख की पाठकों में पर्याप्त चर्चा रही है। कुछ को तो वह बात नागवार भी गुजरी और हम पर दोषारोपण भी हुए। किन्तु इन सबमें प्रमुख बात यह है कि श्री अटल जी को इस पर पुनर्विचार करना पड़ा है और सुधार भी। परिणामस्वरूप सहयोगी 'पांचजन्य' के ११ जून '६८ के अंक में उन्होंने एक छोटा सा स्पष्टीकरण भी प्रकाशित कराया है। वह स्पष्टीकरण कितने अंशों में परिपूर्ण है यह पाठकों अथवा स्वयं अटल जी के विचार करने की बात है। हमारा अभिप्राय तो केवल एक गलत बात की ओर संकेत करना मात्र था और हमें प्रसन्नता है कि हम अपने उद्देश्य में किसी सीमा तक सफल रहे हैं, और आशा करते हैं कि शेष की ओर भी अटल जी ध्यान देंगे। इसी में उनके नेतृत्व की सफलता निहित है।

बेटी बाप से भी बढ़ कर

राजधानी से प्रकाशित हिन्दी के दैनिक 'हिन्दुस्तान' के ११ जून '६८ के अंक में निम्नोद्धृत समाचार प्रकाशित हुआ था—

प्रधानमन्त्री की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचाने के प्रयत्नों पर चिंता
रोक के लिए प्रभावकारी कदम संभव
(हमारे विशेष संवाददाता द्वारा)

नई दिल्ली, १० जून। केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय संवाद समितियों और समाचार पत्रों के माध्यम से प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के स्वरूप को बिगाड़ने तथा उनकी कुर्सी को अस्थिर बताने की अनवरत चेष्टा से चिन्तित हो उठा है तथा वह इसे रुकवाने के लिए प्रभावकारी कदम उठाने के प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार कर रहा है।

केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मन्त्री श्री के० के० शाह ने आज रात यहां एक अनौपचारिक चर्चा में बताया है कि इससे विदेश में देश की प्रतिष्ठा

गिरती है तथा देश में विघटनकारी तत्वों को बढ़ावा मिलता है।

उन्होंने कहा कि भारत में प्रेस को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली हुई है और सरकार का विचार उस पर अंकुश लगाने का नहीं है। पर इसके साथ ही श्री शाह के मत में प्रेस को भी मनघड़न्त बातें आये दिन नहीं कहनी चाहियें। तथा इस प्रकार असत्य को सत्य का रूप दिलवाने का दुःस हस नहीं होना चाहिये।"

बहुत दिनों से सभी यह अनुभव कर रहे हैं कि श्री शाह का मन्त्रालय व उसका मुख्य अंग "आकाशवाणी" सरकार तथा कांग्रेस का प्रचार करना ही अपना परम एवं मुख्य कर्तव्य समझता है। श्री शाह के उक्त कथन से इस बात की पुष्टि होती है। इस बात से तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि गलत बात और भ्रान्ति फैलाना अनुचित है। असत्य को सत्य का रूप दिलाने का दुःसाहस भी निन्दनीय है। किन्तु देश देवी इन्दिरा से बढ़ कर है। हम श्री शाह एवं प्रधानमन्त्री देवी इन्दिरा से आग्रह करेंगे कि अपनी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जन के लिये देवी इन्दिरा अपने पिता की भाँति इस देश को मात्र क्रीड़ाभूमि न समझें और यहां के बहुसंख्यक जन समुदाय की भावनाओं का आदर करना सीखें। तभी देशवासी एवं पत्र पत्रिकाएँ भी देवी के स्वरूप को बनाये रखना अपना कर्तव्य समझने में संकोच नहीं करेंगे। आशा है श्री शाह महोदय भी समय की आवश्यकता को समझ कर अपने कर्तव्य का निर्णय करेंगे।

कश्मीर में सम्पन्न मेला : राष्ट्रीय एकता परिषद :

हमारा विचार था कि २०-२१ जून '६८ को भारत के मुकुटमणि अर्थात् शीर्षस्थ स्थान श्रीनगर में सम्पन्न राष्ट्रीय एकता परिषद स्वरूपी समुद्र मन्थन से जिस अमृत कलश की उपलब्धि होगी उससे भारत का देवगण परि-तृप्त हो सुख और शान्ति की साँस लेगा। किन्तु आशा दुराशा बन कर रह गई। समुद्र मन्थन के समय अमृत से पूर्व जो विष निकला था उसका पान कर स्वयं को नीलकण्ठ की उपाधि से विभूषित करवाने वाले देवाधिदेव महादेव वहाँ पर विद्यमान थे। किन्तु इस परिषद में कोई विषपायी नीलकण्ठ महादेव उठ कर खड़ा नहीं हो सका, अतः उसकी जो उपलब्धियाँ हैं वे सबके सम्मुख हैं।

परिषद के गठन, आवश्यकता, अनिवार्यता, औचित्य, सदस्यता, कार्य-क्रम आदि-आदि बातों पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है किन्तु हम समझते हैं कि इस सबके परिपेक्ष्य में हमारा जून ६८ अंक का सम्पादकीय पुनर्पठनीय एवं पर्याप्त है। यदि आवश्यकता हुई तो इस पर फिर कभी विस्तृत विचार व्यक्त किया जावेगा।

डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी का राजनैतिक चिन्तन

○

प्रा० बलराज मधोक, संसद सदस्य

विगत १९६७ के आम चुनावों में भारतीय जनसंघ की अभूतपूर्व सफलता के कारण भारत में ही नहीं अपितु सारे संसार में जनसंघ को एक राजनैतिक दल के रूप में विशेष प्रतिष्ठा और मान्यता मिली है। इसके सम्बन्ध में उत्सुकता बढ़ी और इसकी विचारधारा तथा नीतियों और रीतियों के सम्बन्ध में भी अधिक छानबीन होने लगी। राजधानी दिल्ली का नागरिक और प्रादेशिक शासन इसके हाथ में आना ऐसी बात थी जिसने मित्र और शत्रु दोनों को ही चकित कर दिया। बाद में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा पंजाब के संविद मन्त्रिमण्डलों में शामिल होने से जनसंघ की कीमत और भी बढ़ी और अवसरवादी तत्त्व बड़ी संख्या में इसमें शामिल होने लगे। उस सफलता और सत्ता प्राप्ति की चकाचौंध में जनसंघ के कुछ नियन्त्रक भी अपना विवेक खो बैठे और ऐसी नीतियों और बातों का प्रतिपादन करने लगे जिनका जनसंघ की विचारधारा और पृष्ठभूमि के साथ कोई मेल नहीं बैठता था। जनसंघ के बहुत से कार्यकर्ताओं तथा हितचिन्तकों को इससे एक धक्का सा भी लगा।

तात्कालिक प्रतिक्रिया पर बनाई गई नीतियों के कुपरिणाम भी शीघ्र ही सामने आने लगे। उससे जनसंघ के कार्यकर्ताओं को दुःख होना स्वाभाविक ही था। इसके साथ-ही-साथ आत्मनिरीक्षण का भाव भी जगा। उनमें भारतीय जनसंघ की मूल विचारधारा और दृष्टिकोण के बारे में एक नई जिज्ञासा भी पैदा होने लगी। जनसंघ के विकास की दृष्टि से यह शुभ लक्षण है।

भारतीय जनसंघ की मूल विचारधारा के सर्वप्रमुख स्रष्टा स्वर्गीय डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी थे। वे सच्चे अर्थों में भारतीय जनसंघ के निर्माता, विचारक, मार्गदर्शक तथा प्रेरणास्रोत थे। भारतीय जनसंघ के प्रथम घोषणापत्र को, जिसमें जनसंघ के मूल सिद्धान्त और नीतियाँ लिपिबद्ध की गई थीं, बनाने के लिए मुझे कई मास तक उनके साथ बैठ कर विचारों का मंथन करने का अवसर मिला। घोषणापत्र लिखा मैंने था परन्तु उसमें दिया गया मसाला बहुत से व्यक्तियों, जिनमें डाक्टर मुखर्जी प्रमुख थे, के सामूहिक चिन्तन का

परिणाम था। उस पर डाक्टर मुखर्जी के चिन्तन और अनुभव की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। परन्तु इसमें उनके सभी विचारों और तर्कों का विस्तार से समावेश करना सम्भव नहीं था। प्रथम घोषणापत्र के अतिरिक्त दिल्ली और कानपुर में हुए जनसंघ के प्रथम दो सम्मेलनों में दिए गए उनके अध्यक्षीय भाषण तथा संसद के अन्दर तथा बाहर विभिन्न मौलिक प्रश्नों पर प्रकट किए गए उनके विचार, उनके राजनीतिक चिन्तन और दृष्टिकोण की अधिकृत व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उनका अध्ययन जनसंघ की मूल विचारधारा को समझने के लिए आवश्यक है। यह लेख घोषणापत्र बनाते समय हुई चर्चा और उनके लेखों तथा भाषणों पर आधारित है।

डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी सन् १९३८ में हिन्दू महासभा के सम्पर्क में आये। उनके राजनीतिक चिन्तन पर सबसे अधिक प्रभाव स्वातन्त्र्यवीर सावरकर का था। इसके अतिरिक्त कांग्रेस के अन्दर के विशुद्ध राष्ट्रवादी तत्वों के साथ भी उनका गहरा सम्बन्ध था। स्वर्गीय सरदार बल्लभ भाई पटेल के लिए उनके मन में बड़ी श्रद्धा थी। और केन्द्रीय मन्त्री-मण्डल में वे सरदार पटेल के ही साथी समझे जाते थे। सरदार पटेल गांधी जी के अनन्य भक्त होते हुए भी वैचारिक दृष्टि से ऋषि दयानन्द, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्रपाल और महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय द्वारा प्रतिपादित उग्र राष्ट्रवाद और यथार्थवाद के अनुयायी थे। इसलिए उनके और डाक्टर मुखर्जी के चिन्तन में कोई मौलिक मतभेद नहीं था।

डाक्टर मुखर्जी ने हिन्दू महासभा से अपना सम्बन्ध विच्छेद करते हुए स्पष्ट कर दिया था कि उनका महासभा की विचारधारा से कोई मौलिक मतभेद नहीं। वे केवल यही चाहते थे कि हिन्दू शब्द के व्यापक अर्थों के अनुरूप स्वतन्त्रता के बाद हिन्दू महासभा के द्वार सभी भारतीय नागरिकों के लिए खोल दिए जावें। वे सभी भारतीयों को जिनकी प्रथम आस्था भारत और उसकी संस्कृति और परम्परा के प्रति है हिन्दू की परिधि के अन्तर्गत मानते थे और भारत को हिन्दूराष्ट्र के रूप में विकसित होते देखना चाहते थे। यदि हिन्दू महासभा ने उनके सुझाव को मान लिया होता तो उनकी दृष्टि से भारतीय जनसंघ के निर्माण की आवश्यकता ही न रहती।

उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि हिन्दू राष्ट्र का निर्माण भारतीय जनसंघ का प्रमुख लक्ष्य हो। घोषणापत्र पर विचार करते हुए उन्होंने कई बार बड़े स्पष्ट और तर्कपूर्ण शब्दों में हिन्दू राष्ट्र की व्याख्या की और कहा कि भारतीय जनसंघ को हिन्दू राष्ट्र शब्द का प्रयोग अपनाना चाहिये। परन्तु बहुत से

अन्य साथियों के दबाव पर जो सामयिक परिस्थितियों से अधिक प्रभावित थे, नीति के तौर पर हिन्दू राष्ट्र शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। यदि उस समय डाक्टर मुखर्जी के सुझाव को स्वीकार कर लिया गया होता और भारतीय जन-संघ स्पष्टरूप में हिन्दू राष्ट्र शब्द के प्रयोग को इसके व्यापक अर्थों में अपना लेता तो इसके विकास की दिशा सर्वसाधारण के लिए भी स्पष्ट हो जाती और किसी प्रकार का विभ्रम उत्पन्न होने की सम्भावना न रहती।

डाक्टर मुखर्जी प्रारम्भ से ही भारत के विभाजन के विरुद्ध थे। उनका यह निश्चित मत था कि इससे न केवल हिन्दू-मुस्लिम समस्या हल नहीं होगी अपितु अन्य अनेकों नई समस्यायें उत्पन्न हो जावेंगी। उन्होंने १९४४ में ही गाँधी जी को लिखा था कि यदि पाकिस्तान बन गया तो इसकी विदेश नीति निश्चित ही भारत की विदेश नीति के विपरीत होगी। जिससे भारत के लिए सुरक्षा सम्बन्धी कई नई समस्यायें उत्पन्न हो जावेंगी।

उनका यह भी निश्चित मत था कि विभाजन के लिए सबसे अधिक कांग्रेस का दुर्बल, दूषित और अयथार्थवादी नेतृत्व उत्तरदायी था। यदि मौलाना आजाद, जिसे कांग्रेस ने पंजाब, सिंध और बंगाल की संसदीय गतिविधियों का इंचार्ज बना रखा था, निष्ठावान और सच्चे अर्थों में मुस्लिम लीग और भारत विभाजन के विरोधी होते तो वे इन प्रान्तों के काँग्रेस संसदीय दलों को मिली-जुली सरकार बनाने की अनुमति देकर मुस्लिम लीग को सत्ता हथियाने से रोक सकते थे। यदि पंजाब बंगाल और सिन्ध में मुस्लिम लीग के मन्त्रीमण्डल नहीं बनते तो पाकिस्तान के पक्ष में मुसलमानों का जनमत भी खड़ा न हो पाता। इसलिए उनका यह निश्चित मत था कि विभाजन के पूर्व कई वर्षों तक मौलाना आजाद का कांग्रेस अध्यक्ष बना रहना, उनका स्पष्ट साम्प्रदायिक दृष्टिकोण और गांधी जी तथा पंडित नेहरू की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति पाकिस्तान निर्माण के प्रमुख कारण बने।

डाक्टर मुखर्जी अखण्ड भारत के अनन्य पुजारी थे और उनका विश्वास था कि भारत पुनः एक होगा। इसलिए वे अखण्ड भारत के विचार को जीवित रखना चाहते थे। जनमानस से भारत की मूल एकता का भाव लुप्त न हो और देश को अखण्ड करने की आकांक्षा बनी रहे, इसके लिए पाकिस्तान की वास्त-विकता को स्वीकार करते हुए भी भारत को अखण्ड करने की बात वे सदा कहते थे। जो देश को एक करने की बात को साम्प्रदायिकता कहते थे, उनके विषय में डाक्टर जी का कहना था कि वे जानते ही नहीं कि राष्ट्रीयता होती क्या है।

परन्तु जब तक पाकिस्तान का अस्तित्व बना हुआ है वे उसके प्रति दृढ़ता और 'जैसे को तैसा' की नीति चाहते थे। उनका यह निश्चित मत था कि पाकिस्तान के प्रति तुष्टीकरण की नीति के वैसे ही दुष्परिणाम निकलेंगे जैसे की मुस्लिम लीग के प्रति तुष्टीकरण की नीति से निकले थे। इसलिए वे जब तक केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल में रहे, पाकिस्तान के प्रति दृढ़ नीति अपनाने पर बल देते रहे और जब उन्हें यह अनुभव हुआ कि वे मन्त्री मण्डल के अन्दर रहते हुए उस नीति को प्रभावी रूप से प्रचलित नहीं कर सकते तो वे बाहर जनमत जागृत कर इसका विरोध करने के लिए मन्त्रीपद को लात मार कर बाहर आ गये।

उनका मस्तिष्क इस मामले में बिल्कुल स्पष्ट था कि पाकिस्तान को शरारत करने से रोकना और उसकी शरारत करने की क्षमता को बढ़ने न देना भारत की विदेशनीति का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिये। किसी देश की विदेश नीति का प्रथम उद्देश्य देश की सुरक्षा होता है। सुरक्षा की दृष्टि से पड़ोसी देशों का सबसे बड़ा महत्व रहता है। इसलिये पाकिस्तान और चीन के साथ सम्बन्ध ही भारत की विदेशनीति की सफलता अथवा असफलता की कसौटी हो सकते थे। डाक्टर मुखर्जी भारत की पाकिस्तान नीति को बिल्कुल अव्याव· हारिक और राष्ट्रहित के प्रतिकूल मानते थे। इसी प्रकार नेहरू की चीन नीति को भी वे गलत मानते थे। उन्होंने पंडित नेहरू की तिब्बत सम्बन्धी नीति का हर पग पर विरोध किया था। परन्तु भारत की विदेश नीति के निर्माण में नेहरू का पूर्णरूपेण एकाधिपत्य होने के कारण वे और मन्त्री-मण्डल के उनके अन्य साथी उसे विशेष प्रभावित नहीं कर सकते थे। इस बात की शिकायत तत्कालीन मन्त्री-मण्डल में गाडगिल प्रभृति अन्य कांग्रेसी मन्त्रियों को भी रहती थी। इसलिए नेहरू द्वारा निर्मित विदेश नीति शाब्दिक अर्थों में भी नेहरू नीति ही थी जिसे वह संसद में अन्धे बहुमत के बल पर देश पर लादने में सफल हुए। विदेश नीति के सम्बन्ध में साधारण भारतीयों की अरुचि और सरदार पटेल के निधन के बाद कांग्रेस दल पर नेहरू का एकाधिपत्य भारत की विदेश नीति को वह गलत दिशा देने के कारण बने, जिसके दुष्परिणाम के रूप में भारत पर १९६२ में चीन का और १९६५ में पाकिस्तान का आक्रमण हुआ। डाक्टर मुखर्जी इस नीति में आमूल-चूल परिवर्तन चाहते थे। उनका यह निश्चित मत था कि तिब्बत को हड़पने के बाद चीन भारत की ओर बढ़ेगा। जब कुछ कांग्रेसी संसद सदस्यों ने उनकी इस बात का प्रतिवाद किया तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि आप वही लोग हैं जो कुछ वर्ष पूर्व कहते थे कि पाकि-

स्तान का बनना असम्भव है। जिस प्रकार तुम्हारी गलत नीतियों से पाकिस्तान का बनना सम्भव हुआ है, उसी प्रकार तिब्बत के सम्बन्ध में गलत नीति के कारण भारत पर चीन के आक्रमण का मार्ग प्रशस्त हो जावेगा।

डाक्टर मुखर्जी अन्य देशों पर निर्भर रहने के विरुद्ध थे और चाहते थे कि भारत स्वयं अपने पाँवों पर खड़ा हो तथा पश्चिम की ओर झाँकने के बजाय पूर्वी एशिया के देशों के साथ अपने सम्बन्ध बढ़ाये।

डाक्टर मुखर्जी चाहते थे कि संयुक्तराष्ट्र अमरीका के साथ भारत के सम्बन्ध मधुर हों। इस लिए जब अमरीका के प्रतिनिधि के रूप में स्टीवैंन-सन उनको १९५३ में दिल्ली में मिले तो उन्होंने उनसे पूछा कि कि क्या अमरीका समझता है कि भारत की अपेक्षा पाकिस्तान अमरीका के लिए अधिक सहायक हो सकता है? उत्तर में स्टीवैंनसन ने उन्हें बताया कि अम-रीका भलीभांति समझता है कि पाकिस्तान की अपेक्षा भारत का उसके लिए बहुत अधिक महत्व है। इसलिए अमरीका चाहता भी है कि उसके सम्बन्ध भारत के साथ अधिक घनिष्ठ और मधुर हों। परन्तु कठिनाई यह है कि अमरीका यह नहीं समझ पा रहा है कि भारत क्या चाहता है। नेहरू का वैचारिक दृष्टि से कम्युनिस्ट चीन और रूस की ओर अधिक झुकाव और उसकी हर समय पश्चिमी देशों को उपदेश देने की आदत अमरीका वालों को अखरती है। इसलिए, डाक्टर मुखर्जी का मत था कि यदि भारत ने अपने हितों को ध्यान में रखते हुए अपने पत्ते ठीक ढंग से खेले होते और बाहरी सहायता तथा सहानुभूति की अपेक्षा पाकिस्तान से निपटने के लिए अपनी शक्ति पर अधिक विश्वास किया होता तो अमरीका या पश्चिम के अन्य देशों में भी भारत के प्रति आदर और सहानुभूति बढ़ती। वे नेहरू द्वारा निर्मित और प्रतिपादित विदेश नीति को देश के लिए सर्वथा घातक मानते थे। उनकी इच्छा थी कि वे स्वयं अमरीका जा कर भारत का सही चित्र वहाँ की जनता के सामने रखें। उन्हें अमरीका वालों की ओर से निमन्त्रण मिला हुआ भी था। उनकी योजना थी कि वे कश्मीर आन्दोलन के बाद अमरीका और पश्चिम के देशों के प्रवास पर जायेंगे। परन्तु नियति की कुछ और ही नियत थी।

जो हिन्दू तथा अन्य अल्पसंख्यक पाकिस्तान में रह गये थे उनके विषय में डाक्टर मुखर्जी के मन में विशेष कसक थी। पूर्वी पाकिस्तान को काट कर आधे बंगाल को भारत के लिए बनाने में उनका विशेष हाथ था। उस समय उन्होंने पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं को आश्वासन दिये थे कि भारत

उनके दुःख सुख का भागीदार होगा। सम्भवतया उनके तथा सरदार पटेल के इस प्रकार के आश्वासन के कारण ही पूर्वी बंगाल में हिन्दू टिके रहे। अन्यथा पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल के बीच पंजाब की भाँति आबादी का तबादला हो जाता।

पाकिस्तान के शासकों ने पश्चिमी पाकिस्तान से सारे हिन्दुओं को खदेड़ देने के बाद पूर्वी पाकिस्तान से भी हिन्दुओं को निकालना शुरू किया। तब डाक्टर मुखर्जी ने मन्त्री मण्डल के अन्दर से भारत सरकार पर दबाव डाला कि पाकिस्तान सरकार को अपने हिन्दू नागरिकों के साथ न्याय करने के लिए बाध्य किया जाय।

डाक्टर मुखर्जी यह भली भाँति जानते थे कि भारत सरकार की ओर से प्रभावी दबाव के बिना पाकिस्तान हिन्दुओं के सर्वनाश की नीति से बाज़ नहीं आयेगा। परन्तु जब उन्होंने देखा कि नेहरू इस मामले में भी पाकिस्तान के आगे घुटने टेकू नीति अपनाने पर उतारू है, जिसका प्रमाण नेहरू-लियाकत समझौता था, तो उन्होंने मन्त्रीमण्डल से बाहर निकल आना ही उचित समझा। मन्त्री-मण्डल से अपने त्यागपत्र के सम्बन्ध में १९ अप्रैल १९५१ को लोक सभा में दिया गया उनका वक्तव्य भारत पाक सम्बन्धों और पाकिस्तान में रह गये हिन्दुओं के विषय में उनके विचारों पर विस्तृत प्रकाश डालता है। उन्होंने उस वक्तव्य में कहा था कि पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं का प्रश्न एक राष्ट्रीय और राजनीतिक प्रश्न है। इसे साम्प्रदायिक अथवा प्रादेशिक प्रश्न मानना सर्वथा अनुचित और तथ्यों के विपरीत है। भारत में बचे मुसलमानों और पाकिस्तान में बचे हिन्दुओं को एक स्तर पर रखना सरासर गलत होगा। जब कि भारत में बचे मुसलमानों में कुछ अपवादों को छोड़ कर लगभग सर्वसम्मति से उन्होंने भारत विभाजन की माँग का समर्थन किया था, पाकिस्तान में बचे सभी हिन्दू विभाजन के विरोधी थे। उनका दोष इतना ही था कि वे देशभक्त थे और उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए कठोर बलिदान किये थे। उनके प्रति अपने कर्तव्य से विमुख होना ऐसी कृतघ्नता है जिसके लिए इतिहास भारत की सरकार और जनता को कभी भी क्षमा नहीं करेगा।

इसी वक्तव्य में उन्होंने यह भी कहा था कि यदि भारत सरकार की पाकिस्तान और भारत में बचे मुसलमानों के प्रति तुष्टीकरण की नीति चलती रही तो मुस्लिम साम्प्रदायिकता फिर सिर उठायेगी और विभाजन के पूर्व की स्थिति फिर पैदा हो जायगी। आज उस वक्तव्य के १८ वर्ष बाद उनका एक-एक शब्द सत्य सिद्ध हो रहा है। यह जहाँ उनकी दूरदर्शिता का परिचायक है

वहाँ भारत सरकार का पाक तथा मुसलमानों सम्बन्धी नीतियों की घोर विफलता का भी द्योतक है ।

नेहरू की इसी प्रकार की दुर्नीतियों और उनके भारत पर कुप्रभावों के कारण ही वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि भारत के लम्बे इतिहास में किसी एक व्यक्ति ने भारत का इतना अनिष्ट नहीं किया जितना कि नेहरू ने।

आर्थिक मामलों में भी डाक्टर मुखर्जी का दृष्टिकोण यथार्थवादी था। वे किसी वाद विशेष से बंधे हुए नहीं थे। भारत और भारतीय जनता के हित ही उनके मापदण्ड थे। उद्योगमंत्री के नाते उन्होंने मिश्रित अर्थ व्यवस्था का व्यावहारिक रूप तय किया जिसके अन्तर्गत निजी उद्योगों के साथ उन क्षेत्रों में जिनके लिए निजी पूँजी और प्रयत्न आसानी से उपलब्ध नहीं थे और जिनका सुरक्षा और औद्योगिक प्रगति के लिए शीघ्र विकास करना आवश्यक था, सरकारी पूंजी लगा कर सार्वजनिक कारखाने की व्यवस्था थी। चितरंजन रेल के इंजन का कारखाना और बंगलौर का हवाई जहाज बनाने का कारखाना उन्हीं के प्रयत्न का परिणाम हैं।

डाक्टर मुखर्जी जानते थे कि सभी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की बात करना न तो व्यावहारिक है और न उचित ही। इससे निजी उद्योग वालों में भय और शंका पैदा होती है, जिससे देश के औद्योगिक विकास में रुकावट पड़ती है। उनका कहना था कि सरकार के पास न इतने साधन हैं और न ऐसा शिक्षित और प्रामाणिक जन-बल है जिससे कि सरकारी उद्योग सफलता पूर्वक चलाये जा सकें।

पूंजी और श्रम के सम्बन्धों के विषय में उनका मत था कि जब तक श्रमिकों को उत्पादन बढ़ाने में स्वार्थ पैदा नहीं होता तब तक वे पूरी लगन से काम नहीं कर सकते। इसी दृष्टि से उन्होंने सबसे पहले श्रमिकों को कारखाने के संचालन और उसके लाभ में साझीदार बनाने की बात कही थी।

वे जानते थे कि कृषि ही भारत का बुनियादी उद्योग है और उसकी सबसे बड़ी आवश्यकता सिंचाई के लिए पानी है। खेती को पानी शीघ्र सुलभ हो सके उसके लिए वे छोटी सिंचाई योजनाओं पर बल देते थे। सभी बड़ी सिंचाई योजनाओं को एक साथ हाथ में लेने के स्थान पर वे एक दो योजनाओं को पहले पूर्ण करने के पक्ष में थे ताकि वहाँ की मशीनें तथा प्रशिक्षित कर्मचारी फिर दूसरी योजनाओं को चलाने के काम में लग सकें। इससे बचत भी होती और सारा रुपया एकदम कुछ बड़ी योजनाओं में बंधने से भी रुक जाता।

वे इस बात को भली प्रकार समझते थे कि भारतीय जनसंघ को सबल

होने और काँग्रेस का स्थान लेने की क्षमता प्राप्त करने में समय लगेगा। वे यह भी जानते थे कि समान विचार वाले बहुत से दलों का बना रहना काँग्रेस को ही बल प्रदान करना है। इसलिए उनका प्रयत्न था कि समान विचार वाले दलों को एक मंच पर एकत्रित कर सकें। यदि जनसंघ का निर्माण शीघ्र हो पाता तो उड़ीसा की गणतन्त्र परिषद अलग दल के रूप में बनती ही नहीं। गणतन्त्र परिषद के नेताओं का डाक्टर मुखर्जी पर पूर्ण विश्वास था और जनसंघ बनने के बाद लगभग यह निश्चित ही था कि गणतन्त्र परिषद जनसंघ में विलीन हो जावेगी। यदि वे जीवित रहते तो सम्भवतः स्वतन्त्र पार्टी बनने की नौबत न आती। जिन लोगों ने स्वतन्त्र दल का गठन किया उन सबकी डाक्टर मुखर्जी पर श्रद्धा थी। डाक्टर साहब उन सबको जनसंघ में ले आने की क्षमता रखते थे।

लोक सभा में जिस प्रकार उन्होंने कम्युनिस्टों और सोसलिस्टों को छोड़ अन्य सभी दलों को इकट्ठा करके अपने नेतृत्व में नेशनल डैमोक्रेटिक पार्टी का निर्माण किया, वह उनके समन्वयात्मक दृष्टिकोण और व्यवहार का सुन्दर दृष्टाँत है। इस प्रकार की सफलता को देख कर संसदीय सोशलिस्ट दल के उस समट के नेता श्री अशोक मेहता भी उस संयुक्त मोर्चे में सम्मिलित होने को तैयार थे। परन्तु उनकी शर्त थी कि हिन्दू महासभा को मोर्चे से निकाल दिया जाय। डाक्टर मुखर्जी ने इस शर्त को अस्वीकार कर दिया। यदि वे अशोक मेहता की बात मान लेते तो वे सरकारी तौर पर विरोधी पक्ष के नेता मान लिये जाते और उनको मन्त्री जितना वेतन तथा अन्य सुख सुविधायें भी उपलब्ध हो जातीं। इसके साथ ही उनको भी तथाकथित प्रगतिवादी होने का सर्टिफिकेट मिल जाता। परन्तु डाक्टर मुखर्जी की यह महानता थी कि उन्होंने कभी भी व्यक्तिगतहित के लिए सिद्धान्तों का खून नहीं किया। उन्हें हिन्दू कहलाने में गर्व था, तथाकथित प्रगतिवादी कहलाने में नहीं।

अपनी विचारधारा और नीतियों को कार्यरूप देने के लिए डाक्टर मुखर्जी केवल लोकतन्त्रीय साधनों का उपयोग करने के पक्ष में थे। लोकतन्त्र में उनकी आस्था अटूट थी। वे लोकतन्त्र के विषय में केवल जमा-खर्च ही नहीं करते थे अपितु अपने जीवन और व्यवहार में उसे चरितार्थ भी करते थे। वे भारतीय जनसंघ को विशुद्ध लोकतन्त्रीय ढंग से चलाने के लिए कृत-संकल्प थे। उन्होंने अपने काल में संगठन को चलाने की दृष्टि से जो लोक-तन्त्रीय परम्परायें स्थिर की थीं वे घिसते घिसते भी कुछ सीमा तक अभी

(शेष पृष्ठ २६ पर)

डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी

○

जैसा मैंने देखा

श्री गुरुदत्त

कश्मीर जेल में लगभग डेढ़ मास तक डाक्टर साहब की सुसंगति का अवसर जीवन में एक अविस्मरणीय घटना है। उनके समीप रह कर यह अनुभव किये बिना रहा ही नहीं जा सकता था कि एक हिमालय जैसा ऊँचा व्यक्तित्व सामने बैठा हुआ है। उनके भारत-निर्माण के कार्य का अनुमान तो उनके अनेक जीवन कार्यों को देखकर आँका जा सकता है। इस पर जो कुछ उन्होंने देश-विभाजन के विषय में किया, वह हिन्दू, विशेष रूप से पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल के हिन्दू तब तक नहीं भूलेंगे जब तक वर्तमान खण्डित भारत रहेगा। जो कुछ सन् १९४७ में पश्चिमी पंजाब में और जो कुछ पूर्वी बंगाल के साथ सन् १९४७ से लेकर आज तक हो रहा है, वह उस महान् कार्य की ओर ही संकेत करता है जो डाक्टर श्यामाप्रसाद और उनके नेतृत्व में कुछ हिन्दुओं ने बंगाल और पंजाब के विभाजन से किया था।

जो कुछ लिखा जा रहा है वह कश्मीर जेल में रहते हुए डाक्टर साहब से इस विषय पर हुए वार्त्तालाप का संक्षेप मात्र ही है। बात इस प्रश्न से चल पड़ी थी—डाक्टर जी ! लोग कहते हैं कि देश विभाजन में आपका और हिन्दू महासभा का भी भारी हाथ है।

यह प्रश्न मैंने पूछा था अथवा हमारे साथ तीसरे बन्दी श्री टेकचन्द शर्मा ने, स्मरण नहीं। डाक्टर साहब का उत्तर स्पष्ट था। उनका कहना था, "जो कुछ हमने किया वह देश विभाजन नहीं कहा जा सकता। यह तो किसी डाकू को घर की सम्पत्ति लूट कर ले जाते देख, उसके लूटे माल से थोड़ा-सा वापिस छीन लेना मात्र है।"

डाक्टर साहब ने इसका इतिहास भी बताया था। जब सन् १९३८-३९ में श्री सावरकर कलकत्ता आये तो डाक्टर साहब को उनसे भेंट करने का अवसर मिला। दोनों महापुरुषों में बातचीत हुई और उस वार्त्तालाप में देश-विभाजन के विषय पर भी विचार हुआ। उस समय तक मुसलमान जिन्ना के

नेतृत्व में खुले रूप से पाकिस्तान की माँग करने लग गए थे।

डाक्टर साहब का विचार था कि देश का हिन्दू-हिन्दुस्तान और मुसलमान-हिन्दुस्तान में विभाजन अँग्रेज ने सन् १९०६ में ही विचार लिया था। तब आगा खाँ के अधीन मुसलमानों का डैपुटेशन तत्कालीन वाइसराय से मिला था। कांग्रेस ने यह विभाजन सन् १९१६ में लखनऊ के समझौते के समय माना था।

जिस दिन कांग्रेसी नेताओं ने मुसलमानों के लिए पृथक् मतदाता सूची और उनके लिए पृथक् प्रातिनिध्य स्वीकार किया, उस दिन ही उन्होंने मुसलमान एक पृथक् जाति स्वीकार कर ली थी। पृथक् जाति के लिए पृथक् देश एक स्वाभाविक बात है। इतना स्वीकार कर लेने के उपरान्त कोई मूर्ख ही यह कह सकता था कि उसने देश विभाजन स्वीकार नहीं किया था और न ही करना चाहता था।

गांधीजी लखनऊ के हिन्दू-मुसलमान समझौते को कैसा समझते थे, कहा नहीं जा सकता। उनका उस समय का इस विषय पर कोई वक्तव्य है नहीं। इस पर भी यह ज्ञात है कि ये लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में उपस्थित थे। इनके देखते-देखते लखनऊ समझौता पारित हुआ। पण्डित मदन मोहन मालवीय ने इसका विरोध किया था और श्री गांधीजी मौन थे।

परन्तु जो कुछ गांधीजी ने सन् १९२० से लेकर सन् १९४७ तक किया वह देश का विभाजन करने में सहायक ही हुआ था। यह ठीक है कि गांधीजी मुख से देश-विभाजन को न पसन्द करने की बात कहते थे, परन्तु जिस प्रकार वे मुसलमानों की एक-एक करके सब बातें मानते जाते थे, उससे यह स्पष्ट ही था कि वे देश-विभाजन भी मानेंगे।

अमृतसर हिन्दू महासभा के अधिवेशन के उपरान्त यह स्पष्ट हो चुका था कि मुसलमानों को अपना पृथक् देश मिलेगा। वह देश शेष हिन्दुस्तान के साथ किस प्रकार सम्बन्धित होगा यही विचारणीय रह गया था। ऐसी अवस्था में पूर्ण पंजाब को और पूर्ण बंगाल को एक-एक ईकाई बनाना न तो मुसलमानों की माँग में फिट बैठता था और न ही न्याय-संगत।

मुसलमान पाकिस्तान इस कारण नहीं माँग रहे थे कि वहाँ मलिक खिज़र हयात का राज्य होने वाला था अथवा मास्टर तारा सिंह का। पाकिस्तान की माँग स्पष्ट रूप में मुसलमानों के लिए पृथक् देश की थी। जब कांग्रेस ने यह स्वीकार कर लिया कि भारत के तीन 'ज़ोन' होंगे—पश्चिमी, पूर्वी और मध्य का भाग, तो पाकिस्तान स्वीकार हो गया था। पूर्वी और

पश्चिमी 'ज़ोनों' का मध्यमक 'ज़ोन' के साथ सुरक्षा इत्यादि के विषय में क्या सम्बन्ध होता है, यह गौण था। मुसलमानों का व्यवहार सदा यह रहा था कि उनके राज्य में अमुसलमानों की स्थिति गुलामों की-सी हो सकती है।

ऐसी अवस्था में जब कैबिनेट मिशन की योजना काँग्रेस ने मानी तो यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक था कि पश्चिमी और पूर्वी ज़ोन में कौन-कौन भाग होगा ?

तब से ही डाक्टर साहब का यह नारा हो गया था कि पश्चिमी ज़ोन में पूरा पंजाब नहीं जा सकेगा और पूर्वी ज़ोन में पूरा बंगाल और पूरा आसाम नहीं जा सकेगा।

उन दिनों श्री सावरकरजी ने माना था कि देश में दो जातियाँ बस रही हैं। ऐतिहासिक कारणों से दूसरी जाति उग्रवादी हो रही है। उसकी उग्रता (aggressiveness) को रोकना आवश्यक है।

डाक्टर साहब का कहना था कि पंजाब और बंगाल का विभाजन उस जाति की उग्रता को कम करने का एक उपाय है।

हिन्दू-महासभा देश का विभाजन नहीं चाहती थी। हिन्दू-महासभा पूर्ण भारत खण्ड पर एक शासन के पक्ष में थी। हिन्दू महासभा के नेता पंडित मदनमोहन मालवीय ने विभाजन का श्री गणेश करने वाली योजना का सन् १९१६ में ही विरोध किया था। इस बात को आज निष्पक्ष लेखक मान रहे हैं।

श्री के० एम० मुन्शी अपनी पुस्तक 'Pilgrimage to Freedom' के पृष्ठ सं० ७ पर लिखते हैं—

A constitution for India was drafted and it was adopted by the sessions of the Congress and of the League.

The Historical Lucknow Pact was an integral part of this constitution. Under it, the Muslims, led by League, promised to work with the Hindus to achieve freedom in return for the Congress conceeding to the Muslims separate electorate with weightage far in excess of their numerical strength.

The Pact of which the moving spirit was Jinnah, was really accepted by Mrs.-Besant, Sir Chimanlal Seetalwad and other Hindu leaders, anxious, as they were to secure constitutional advance through Hindu Muslim unity. Malviyaji opposed it. Gandhiji remained a silent observer.

इसका अर्थ है—कांग्रेस ने हिन्दुस्तान में शासन सुधार के लिए संविधान का एक प्रारूप स्वीकार किया था। ऐतिहासिक लखनऊ समझौता उस संविधान का एक अभिन्न अंग था। इस समझौते में हिन्दुओं ने, मुस्लिम लीग के नेतृत्व में मुसलमानों को पृथक् मतदाता सूची के साथ ही अपनी संख्या से अधिक कौंसिलों में स्थानों का वचन दिया था और मुस्लिम लीग ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए हिन्दुओं के साथ मिलकर यत्न करने का वचन दिया था।

यह समझौता जिसमें मुख्य भाग मिस्टर जिन्ना ने लिया था, हिन्दुओं के नेताओं-मिसेज़ बिसैण्ट, सर चमन लाल सीतलवाद और अन्य नेताओं ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। वे होने वाले सुधारों में मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे। पण्डित मदन मोहन मालवीय ने इसका विरोध किया था। गांधीजी चुपचाप बैठे देखते रहे थे।

डाक्टरजी ने कहा था, "हम तो विभाजन नहीं चाहते, परन्तु जो स्थिति देश में गांधीजी और उनके नेतृत्व में कांग्रेस ने बना रखी है उसमें जो कुछ भी मुसलमानों के पास जाने से बच सकता था, बचाने का श्रेय हमको है।"

डाक्टर साहब ने बताया कि कांग्रेस का नेतृत्व इतने बुद्धओं के हाथ में था कि सब कुछ निश्चय हो जाने पर, शेष भी मुस्लिम लीग के जाल में फँस वे विनष्ट करने वाले थे।

जब बंगाल और पंजाब को विभक्त करने का निश्चय हो चुका था और इस योजना पर लार्ड माउण्टबेटन नेताओं से विचार विमर्श कर रहे थे, बंगाल के मुख्य मन्त्री श्री सुरहवर्दी साहब, गांधीजी और अन्य कांग्रेसी नेताओं से मिलने आये। सुरहवर्दी चाहते थे कि बंगाल का विभाजन न हो। और क्योंकि मुसलमान बंगाल के हिन्दू, हिन्दुस्तान में जाना पसन्द नहीं करते और हिन्दू बंगाल का पाकिस्तान में जाना पसन्द नहीं करेंगे, इस कारण समूचे बंगाल को एक स्वतन्त्र राज्य बना दिया जाये।

श्री सुरहवर्दी जी की बात का समर्थन करने के लिए श्री शरत चन्द्र बोस और बंगाल मुस्लिम लीग के सैक्रेटरी अब्दुल हशीमजी गांधीजी से मिले। लीग के सैक्रेटरी बंगाली संस्कृति, भाषा और टैगोर का वास्ता डाल-डाल कर बंगाल को एक रखने की बातें करने लगे।

एक अन्य कांग्रेसी वृद्ध नेता अखिल चन्द्र दत्त भी सम्पूर्ण बंगाल के लिए मनोद्‌गार प्रकट करने लगे। आपने गांधीजी को एक पत्र लिखा। इस पत्र में आपने लिखा था—

A movement has been set on foot for partition of Bengal and thus, 'secure a homeland for the Hindus .' This appears to be the result of defeatist mentality. In fact this movement seems to me to be a communal one. Communalism must no doubt be fought, but not by a counter-communal movement for a homeland of Hindus. This movement is practically a concession to the principle on which the demand for Pakistan is based. This will not be solution of the communal problem but will aggravate and prepetuateit.

(एक आन्दोलन बंगाल का विभाजन कर बंगाली हिन्दुओं के लिए अपना देश बनाने के विचार से चलाया गया है। यह एक हीन भावना का परिणाम प्रतीत होता है। वास्तव में यह आन्दोलन साम्प्रदायिक ही प्रतीत होती है। इसमें सन्देह नहीं कि साम्प्रदायिकता का विरोध होना चाहिए, परन्तु यह विरोधी-साम्प्रदायिकता की चाल से नहीं हो सकेगा। यह आन्दोलन व्यवहार में उसी सिद्धान्त का समर्थन है जिसके अनुसार पाकिस्तान की माँग हो रही है। इससे साम्प्रदायिकता कम नहीं होगी, वरंच अधिक होगी।)

यह कांग्रेसी नेताओं की बुद्धि का दिवालियापन था। डाक्टर मुखर्जी कह रहे थे, "मैं इसी के विषय में गांधीजी से मिलने गया था।

"मैंने उनसे कहा था कि जब स्वतन्त्र बंगाल बन जायेगा तब सुरहवर्दी को कौन रोक सकेगा कि वे अपनी मुसलमानों की संख्या के बल पर पूर्ण बंगाल का समन्वय पाकिस्तान के साथ नहीं कर लेंगे।

"मैंने यह भी गांधीजी से कहा था कि ये सुरहवर्दी वही हैं जिन्होंने १६ अगस्त सन् १९४६ में कलकत्ता में 'डायरैक्ट ऐक्शन' चलवाया था। मैंने शरत बोस जी के विषय में भी बताया कि ये महानुभाव दो दिन तक, जब हिन्दुओं का कत्ल-ए-आम होता रहा, घर में छिपकर बैठे रहे थे। अब ये ही दोनों नेता सुरहवर्दी के प्रस्ताव का समर्थन करने आए हैं। भला, किस मुख से ? उस सम्भावना पर जो मैंने आप से बताई है, ये क्या कर सकेंगे ?"

डाक्टर मुखर्जी का विचार था कि उनकी युक्ति का प्रभाव गांधीजी पर हुआ था और उनको बताया गया था कि गांधीजी ने सुरहवर्दी को एक पत्र में यह प्रस्ताव किया है कि मुसलमान और मुस्लिम लीग वचन दें कि संयुक्त बंगाल में कोई निर्णय नहीं लिया जा सकेगा, जब तक हिन्दुओं की दो

तिहाई संख्या उसके पक्ष में नहीं होगी ।

डाक्टर साहब इस प्रस्ताव को भी धोखे में फ़ँसने वाला समझते थे । कारण यह कि मुस्लिम लीग वचन भंग कर सकती थी और गांधीजी अथवा कांग्रेस में वह शक्ति नहीं कि मुस्लिम लीग से वचन का पालन करा सके ।

यह बात डाक्टर साहब १६५३ में बता रहे थे और तब तक पाकिस्तान कई बार वचन भंग कर चुका था और नेहरू सरकार में यह दम नहीं था कि वे उनसे वचन पालन करवा सकें ।

मेरा डाक्टर साहब से प्रश्न था, "यदि सुरहवर्दी सब कुछ मान जाते और कांग्रेस उनके फ़न्दे में फँस जाती तो क्या होता ?"

'वही होता जो ३ मार्च से १६ अगस्त सन् १६४७ तक पंजाब में हुआ है । मुझे इस बात के कहने में कुछ भी संकोच नहीं कि नेहरू सरकार बंगाल के एक भी हिन्दू की जान वहाँ जाकर बचा नहीं सकती थी और बंगाली संस्कृति की कूक लगाने वालों की संस्कृति का कहीं चिह्न भी नहीं मिलता ।"

हिन्दुस्तान में बड़े-बड़े नेता हो चुके हैं । उनकी लोकप्रियता भी बहुत रही है, परन्तु ऐसे विरले ही देखे हैं जो भीड़ के समय पर अपनी बुद्धि को स्थिर रख युक्तियुक्त व्यवहार रख सके हों । अक्ल की बात छोड़ भावनाओं के पीछे भागने वाले सदा समय पर अपनी भावना को भी स्थिर नहीं रख सके।

डाक्टर साहब गांधीजी का बहुत मान करते थे, परन्तु वे भी यह कह दिया करते थे, "महात्माजी में विचार-शक्ति तो कभी देखी नहीं । वे सदा भावनामय व्यवहार के पीछे लगे रहते थे । यही कारण है कि उनकी भावनाएँ सफल नहीं हुईं ।"

●

पृष्ठ २० का शेष)

स्थिर हैं । जनसंघ के विकास और उसे एक जन आन्दोलन का रूप देने के लिए उन परम्पराओं को बनाये रखना और दृढ़ करना आवश्यक है ।

डाक्टर मुखर्जी की विचारधारा, जीवनदर्शन और अपने साथियों और सहयोगियों के साथ, क्षमता के आधार पर अनुपम व्यवहार, भारतीय जनसंघ का सबसे मूल्यवान खजाना है । उनके जन्मदिन के अवसर जनसंघ के कार्यकर्ता उनके विचारों, गुणों और व्यवहार को कुछ अंशों में भी अपने-अपने जीवन में ढालने का संकल्प कर पाए तो यह उस महा-मानव के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धान्जलि होगी ।

●

डाक्टर मुखर्जी बनाम गुरुजी और हिन्दू राष्ट्र

श्री टेकचन्द शर्मा की डायरी के कतिपय पृष्ठ

(सम्प्रति दैनिक वीर अर्जुन के सम्पादकीय विभाग के सदस्य के रूप में कार्य करने वाले श्री टेकचन्द शर्मा जीवन के प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सक्रिय स्वयंसेवक ही नहीं अपितु अनेक महत्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित रहे हैं। जनसंघ के संस्थापक सदस्यों में से वे प्रमुख थे। डाक्टर मुखर्जी की ऐतिहासिक कश्मीर यात्रा के समय वे उनके निजी सचिव के रूप में साथ थे। जनसंघ की स्थापना, उसकी प्रगति एवं प्रतिष्ठा प्राप्ति में डाक्टर मुखर्जी के योगदान के वे प्रत्यक्ष-द्रष्टा रहे हैं। साथ ही प्रवास और कारावास के दिनों में उन्हें डाक्टर मुखर्जी को बिलकुल समीप से देखने एवं परखने का अवसर सुलभ रहा है।

प्रस्तुत लेख को उन्होंने अपनी डायरी के उन पृष्ठों से अंकित किया है जिसे वे अपने सामाजिक जीवन के कार्यकाल से लिखते आ रहे हैं। उन्हीं पृष्ठों से शीघ्र ही वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं जनसंघ के नेतृत्व तथा राष्ट्र को इन संस्थाओं की देन से सम्बन्धित एक बृहदाकार ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। हिन्दुओं के इस देश में उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में नेताओं की अदूरदर्शिता के कारण हिन्दू समाज की जो दुर्गति और दुर्दशा हुई है, इस पर उससे पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा।

उन्होंने बड़े ही रोचक ढंग से ये पृष्ठ प्रस्तुत किये हैं। जनसंघ की स्थापना के समय अनेक घटकों में जो अन्तर्द्वन्द्व विद्यमान था, उसकी एक झांकी यहाँ प्रस्तुत है। जिस प्रस्ताव का इस लेख में मुख्य रूप से उल्लेख है, उसे परिशिष्ट के रूप में लेख के अन्त में प्रकाशित किया जा रहा है।—सम्पादक)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का आदर्श, उद्देश्य और लक्ष्य हिन्दू राष्ट्र भले ही था, किन्तु १९५१ में भारतीय जनसंघ की स्थापना के अवसर पर इसके सर-संघचालक श्री गुरुजी द्वारा कोई मत, आग्रह या विरोध व्यक्त न किये जाने के कारण उनकी मूक स्वीकृति समझते हुए जनसंघ के विधान और उसके बाद किसी प्रस्ताव या चुनाव घोषणापत्र में 'हिन्दूराष्ट्र' शब्द का उल्लेख नहीं किया

गया । हिन्दू राष्ट्र के बारे में डाक्टर मुखर्जी के दृष्टिकोण से गुरुजी भली-भाँति परिचित थे ।

जनसंघ की पहली वर्षगाँठ के अवसर पर जालन्धर में हुए सम्मेलन में कुछ लोगों के प्रयत्न पर "भारत दैट इज़ हिन्दू राष्ट्र" (भारत अर्थात् हिन्दू राष्ट्र) स्वीकार कराये जाने की पूर्ण आशा के बावजूद भी कुछ अक्ल के पट्ठे विरोध पर डट गये । इसका कारण यह था कि प्रस्ताव उन क्षेत्रों से आया था जिन्हें वे अपना विरोधी समझते थे । इनके द्वारा अपने समर्थन के लिए पंजाब प्रान्त के संघ के प्रचारक श्री माधवराव का 'दुरुपयोग' किया गया और उनसे प्रस्ताव का विरोध व्यक्त करवा दिया गया । परिणामस्वरूप 'भारत राष्ट्र' मान्य करवा लिया गया और 'हिन्दू राष्ट्र' फिर धरा का धरा रह गया ।

१९५२ के आम चुनाव में गुरुजी द्वारा सभी राजनीतिक दलों के विरुद्ध 'षट्पदी' से संघ के स्वयसेवकों को अत्यन्त आश्चर्य और खेद हुआ । इसका परिणाम जनसंघ की भारी विफलता के रूप में निकला । 'गुनाह बेलज्जत' और 'ईमान फरोशी' पर कुछ क्षेत्रों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की आलोचना शुरू हो गई । चुनाव में निभाई भूमिका और उससे उत्पन्न आलोचना को जन-संघ के माथे मढ़ कर आप बच निकले और जनसंघ की चाबी अपने हाथ में ले लेने के उद्देश्य से गुरुजी ने व्यर्थ बैठे ठाले अचानक यह 'रहस्योद्घाटन' किया कि उन्होंने अब तक और विशेष रूप में गत चुनाव में जनसंघ अथवा किसी अन्य राजनीतिक दल का इसलिए समर्थन नहीं किया क्योंकि इनमें से कोई भी दल हिन्दू राष्ट्र नहीं मानता । यदि जनसंघ के नेता (डा० मुखर्जी) हिन्दू राष्ट्र स्वीकार कर लें तो वे प्रकट रूप से जनसंघ को आशीर्वाद दे देंगे । यदि जन-संघ हिन्दूराष्ट्र नहीं मानता था तो हिन्दू महासभा तो हिन्दू राष्ट्र का नारा लगा रही थी ? फिर गुरुजी ने उसका समर्थन क्यों नहीं किया ? इसका कारण स्वयं हिन्दू महासभा के नेताओं का १३ वर्ष पूर्व वह अदूरदर्शी व्यवहार है जिसे ये कभी भुला नहीं पाये । हिन्दू महासभा की कार्यकारिणी के पदाधिकारी बनते ही प्रबल 'राजनीतिक महत्वाकांक्षा' पूर्ण न किये जाने पर उस दिन से गुरुजी हिन्दू महासभा से विमुख रहे । इस घटना को हिन्दू राष्ट्र का एक महान दुर्भाग्य ही कहा जावेगा । भारत के इतिहास में रामायण, महाभारत, राजपूत और अब तक के काल में भी ऐसे दर्जनों उदाहरण मिलेंगे जहाँ एक व्यक्ति की मानापमान की भावना का कितना भारी मूल्य राष्ट्र को चुकाना पड़ा । इसी इतिहास की श्रृंखला में २०वीं शताब्दि की यह घटना एक कड़ी बन कर जुड़ गई है ।

'इस घर को आग लग गई घर के चिराग से'।

काश ! हिन्दू महासभा से वे आरम्भ से ही ऐसी बेरुखी न अपनाते।

"बे मुरव्वत बे रुखी से शीशए दिल को न तोड़।

यह वही है आइना जिसमें तेरी तस्वीर है।"

डेढ़ वर्ष विलम्ब से हिन्दू राष्ट्र की दुहाई के प्रश्न पर उन दिनों संघ और जनसंघ के क्षेत्रों में भारी विवाद उठ खड़ा हुआ। एक बार तो प्रो० महावीर और पं० मौलिकचन्द्र शर्मा में काफी झड़प भी हुई। यह स्पष्ट होने लगा कि अब राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जनसंघ से हिन्दू राष्ट्र का सिद्धान्त स्वीकार कराने के आग्रह पर जोर शोर से डट गया है। यहाँ तक कि इससे लिये वह 'शिशु हत्या' के लिए भी तैयार हो गया है।

डाक्टर मुखर्जी को गुरुजी की कई अन्य बातों की भाँति इस प्रश्न पर भी उनकी दखल-अन्दाजी नागवार गुजरी। उन्होंने 'हिन्दू राष्ट्र' को जनसंघ के लक्ष्य में सम्मिलित करने के सुझाव को मानने से साफ इन्कार कर दिया। उनका कहना था कि जनसंघ की स्थापना के समय ही इस प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिये था।

"कबीरा तब क्यों न चेत्या, जब जामी थी बेर।"

हिन्दू राष्ट्र के प्रश्न पर डाक्टर साहब ने कई बार अपने विचार व्यक्त किये थे और इस बारे में उनका मत अत्यन्त स्पष्ट था। उनके तर्क इतने वजनदार और अकाट्य थे, या यह कहिये कि डाक्टर साहब का व्यक्तित्व ही इतना प्रभावशाली था कि हिन्दू राष्ट्र के किसी 'अमर पुजारी' से उनकी काट नहीं बन पड़ रही थी। डाक्टर साहब का पहला तर्क यह था कि हिन्दू राष्ट्र के लिये यहाँ सिवाय लफ्फाजी के और किया ही क्या गया है ? यदि स्वाधीनता से पूर्व हिन्दुस्तान और हिन्दू राष्ट्र के लिए खाली 'जबानी जमा खर्च' के कुछ आगे बढ़ा जाता तो स्वाधीन भारत का चित्र यह न होता जो आज है। अगर विवशता के कारण चित्र अधूरा ही उतरता तो भी वह हिन्दू राष्ट्र के रंग से चमचमाता होता। बिना मूल्य कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती। मुसलमान ने मूल्य चुकाया और अपने लिये मुस्लिम राष्ट्र बना लिया। क्या यह गलत है कि मूसलमानों ने पृथक् राष्ट्र लड़ कर नहीं लिया ? हिन्दुओं ने क्या किया ?

यह सही है कि डाक्टर हैडगेवार का स्वप्न हिन्दू राष्ट्र का था। परन्तु उन्होंने यह कब कहा था कि वह बिना हाथ पाँव मारे 'प्रतापगढ़ की पहाड़ी' पर छिप कर जा बैठने से सेतमेत बख्शीश में प्राप्त हो जावेगा ? राष्ट्र प्रस्ताव पास करवाने से नहीं बाहुबल से बनाये जाते हैं।

आजादी के बाद भी हालात ऐसे हुए हैं कि हिन्दूराष्ट्र की भावना स्वतः उभर कर प्रकट होने लगी है। यहाँ तक कि गांधी जी ने भी अपने अन्तिम दिनों में यह महसूस कर लिया कि कांग्रेसी नेता देश की बदली हुई स्थिति में इस पर शासन करने योग्य नहीं है। यदि इनके हाथ में शासन रहने दिया तो साम्प्रदायिकता से अपनी पुरानी समझौतावादी और दब्बू नीति के अभ्यासी होने के कारण एक आध पीढ़ी के बाद वे देश में ऐसी भयानक परिस्थिति पैदा करके रख देंगे जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। साम्प्रदायिक भेड़िया जिसके मुँह में लहू लग चुका है, एक दो पीढ़ी ही होंठ चाटेगा। उसके बाद वह खूँखार होकर फिर झपटेगा। उस स्थिति के मुकाबले के लिए मजबूत हाथों की जरूरत होगी। यदि उस समय इस भेड़िये को 'शिक्षा' दी जा सकी तो वह सदा के लिए 'पालतू' होकर रह जावेगा। परन्तु वे मजबूत हाथ इन काँग्रेसियों के पास नहीं हैं। संस्कार और चिन्तन न होने के कारण ये भेड़िये के पंजे व नाख़ून नहीं निकाल पावेंगे, दांत नहीं उखाड़ सकेंगे। अतः भविष्य की परिस्थिति का ध्यान रख कर 'निकम्मे और नालायक' हाथों को शासन से दूर करने के उद्देश्य से महात्मा गांधी ने काँग्रेस को ही भंग करने का परामर्श अपनी मृत्यु से एक दिन पूर्व दिया ताकि काँग्रेस भंग होने के बाद नये शासक काँग्रेस की पिछली समझौतावादी मान्यताओं, धारणाओं और प्रस्तावों से बंधे नहीं रहें और नई परिस्थितियों में नया मार्ग निकालेंगे।

इसके अतिरिक्त डा० मुखर्जी का यह तर्क भी था कि यदि स्वाधीन देश में ९० प्रतिशत जनसंख्या होने के बाद भी यह हिन्दू राष्ट्र नहीं है तो क्या है ? वे कहते "मैंने तो सुना है कि डा० हैडगेवार उस अंग्रेजी दासता के अन्धकारपूर्ण युग में अकेले अपने बल बूते पर यह कहा करते थे कि 'यह हिन्दूराष्ट्र है क्योंकि डाक्टर हैडगेवार ऐसा कहता है।" कितना आत्मविश्वास था। जहाँ तक मुझे पता है डाक्टर हैडगेवार ने कोई प्रस्ताव पास नहीं करवाया था। अतः हिन्दूराष्ट्र के लिए किसी कागजी प्रस्ताव की नहीं अपितु मन का संकल्प दृढ़ करने की आवश्यकता है। यह हिन्दूराष्ट्र है क्योंकि यह हिन्दूराष्ट्र है। मैं डाक्टर मुखर्जी हूँ यह बताने के लिए मुझे प्रस्ताव पास करवाने की आवश्यकता नहीं है।"

डाक्टर मुखर्जी का यह भी कहना था कि हम यह भी देखें कि आजादी के बाद देश में बन क्या रहा है। क्या हमें प्रत्येक क्षेत्र व स्थान में शनैः शनैः एक एक पग करके हिन्दूराष्ट्र बनता दिखाई नहीं दे रहा ? हमारे संविधान, कानून, भाषा, संस्कृति, लिपि, रीतिरिवाज, परम्परा किसी में भी कहीं किसी

अहिन्दू बात की झलक है ? हजार वर्ष के भग्न मन्दिर के नव निर्माण में कुछ समय तो लगेगा ही ।

सबसे बड़ी मजेदार बात डाक्टर साहब यह बताते थे कि आज यह हिन्दूराष्ट्र मैं और आप नहीं, अपितु पण्डित जवाहर लाल नेहरू बना रहा है। कोई भी इसका बनना नहीं रोक सकता । पं० जवाहरलाल स्वीकार करता है कि आखिर इस देश में वही होगा जो इस देश की ९० प्रतिशत जनसंख्या चाहेगी। यह सब कुछ उसी की इच्छा, आकांक्षा, आदर्शों और मान्यताओं के अनुरूप ही करना पड़ेगा । इसके अतिरिक्त और कोई चारा अब नहीं है ।

अतः हमें जनसंघ के लिए हिन्दूराष्ट्र प्रस्ताव स्वीकार करने पर आग्रह न करते हुए एक ऐसा प्रस्ताव पास करना चाहिये जिसमें हिन्दूराष्ट्र का उल्लेख न होते हुए भी इसके लक्ष्य और दिशा की ओर स्पष्ट निर्देश हो । हम लोग यह भी न भूलें कि सरकार की निगाह जनसंघ पर ही है । इसे ही वह अपना प्रतिद्वन्द्वी समझती है । वह इस पर प्रतिबन्ध लगाने के किसी बहाने की तलाश में है । वह किसी भी साम्प्रदायिक राजनीतिक दल पर तब तक प्रतिबन्ध नहीं लगायेगी जब तक कि वह जनसंघ को किसी बहाने कानून के शिकंजे में न फंसा सके । अतः सिद्धान्त के अतिरिक्त व्यवहार की दृष्टि से भी सम्भल कर चलना ही उचित है ।

ऐसी हालत में जनसंघ का प्रथम वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर १९५२ के अन्त में कानपुर में हुआ । इस अधिवेशन में "हिन्दू राष्ट्र" सम्बन्धी प्रस्ताव पास कराया जाना था जिसे बाद में "सांस्कृतिक पुनरुत्थान" प्रस्ताव के नाम से स्वीकार किया गया । कानपुर में अधिवेशन रखने का एक मुख्य कारण यह भी था कि उत्तर-प्रदेश राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का गढ़ और भारत का सबसे बड़ा राज्य होने के कारण इसमें सर्वाधिक प्रतिनिधि (लगभग ८० प्रतिशत) सम्मेलन में भिजवाकर हिन्दू राष्ट्र सम्बन्धी प्रस्ताव आसानी से पास करवाया जा सके ।

कानपुर अधिवेशन

डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी इस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये थे। अधिवेशन बहुत सफल रहा। दीनदयाल (स्वर्गीय पं० दीन दयाल जी) चतुर तो है ही । कार्यकारिणी की बैठक में अधिवेशन उत्तर-प्रदेश में करने की जिस जिम्मेदारी को उसने अपने ऊपर लिया था उसे खूब निभाया । राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ की 'सफर मैना" का बढ़िया ढंग से उपयोग किया । एवरेस्ट की चोटी पर भी कभी अधिवेशन रखा गया तो यह सफ़र मैना उसे भी इतना ही

सफल बना कर दिखा सकती है, यह विश्वास हो गया। पण्डाल की सजावट के क्या कहने। मुख्य द्वार पर राम और कृष्ण के चित्रों के साथ सबसे ऊपर हिन्दू राष्ट्र के प्रथम उद्घोषक डा० हैडगेवार का चित्र बस देखते ही बनता था। पण्डाल के भीतर किसी का चित्र नहीं था।

पहले दिन शोभायात्रा बहुत सुन्दर रही। कानपुर ने दिल खोल कर डाक्टर मुखर्जी का स्वागत किया। जलूस की समाप्ति पर ध्वजारोहण के उपरान्त पहले स्वागताध्यक्ष और फिर डाक्टर मुखर्जी का अध्यक्षीय भाषण हुआ। डाक्टर मुखर्जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में दो बातें मार्के की कहीं। पण्डाल के भीतर किसी का भी चित्र न होने पर उन्होंने जब आरम्भ में ही यह कहा कि इसका अर्थ हैं कि हम घोषित करते हैं कि हम किसी भी व्यक्ति के मुकाबले चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, अपने सिद्धान्तों को ही श्रेष्ठ मानते हैं (पता नहीं उनका संकेत किधर था) तो सारा पण्डाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। डाक्टर साहब के इस कथन ने कि वे व्यक्ति की तुलना में सिद्धान्त और दलहित की तुलना में राष्ट्रहित को श्रेष्ठ समझते हैं, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवकों पर विशेष रूप से प्रभाव डाला। उनका हृदय बोल रहा था कि डाक्टर मुखर्जी के रूप में उन्होंने डाक्टर हैडगेवार को पा लिया है। पण्डाल के मुख्य द्वार पर डाक्टर हैडगेवार का चित्र और पण्डाल के भीतर डाक्टर साहब सशरीर विराजमान। फिर और किसी की क्या आवश्यकता और क्यों? डाक्टर हैडगेवार का अधूरा काम डाक्टर मुखर्जी के हाथों अवश्य पूर्ण होगा, यह आशा सबको बँध गई। वही भारी भरकम शरीर, वही गरजती हुई जोरदार आवाज़, वही प्रेम भरी मुस्कान बखेरती चुम्बक के समान अपनी ओर खींचती आँखें, वही विचार, वही निर्भीकता, वही दूरदर्शिता और वही समस्याओं को समझने और स्वयं आगे बढ़ कर उनसे जूझ जाने की उत्सुकता एवं तत्परता।

दूसरी महत्वपूर्ण बात डाक्टर साहब ने अपने भाषण में यह कही कि देश में केवल तीन मुख्य दल होने चाहिएं और अन्त में ऐसा ही नक्शा बनेगा। प्रथम सत्तारूढ़ कांग्रेस दल, दूसरे समस्त बामपन्थी दलों का संयुक्त मोर्चा और तीसरे वे सब देशभक्त दल जो भारत का उत्थान भारत की संस्कृति के अनुरूप किन्तु प्रगतिशील आर्थिक कार्यक्रम के आधार पर करना चाहते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि वे दलहित की अपेक्षा राष्ट्रहित को श्रेष्ठ मानते हैं और राष्ट्रहित के लिए वे अपने दलीय अस्तित्व को मिटाने के लिए तैयार हैं। उन्हें न नाम की चिन्ता है और न स्वयं नेता बनने की। वे देश में प्रबल राष्ट्रीय लोक-

तन्त्रीय विरोधी दल का निर्माण करना चाहते हैं, उसका कोई भी नाम हो और कोई भी नेता हो।

इस प्रकार एक ओर डाक्टर मुखर्जी और दूसरी ओर गुरुजी।

जनसंघ में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के उन कार्यकर्ताओं को, जो गुरुजी के बन्धन में थे, बड़ी विचित्र स्थिति हो गई। दीनदयाल की हालत तो सर्वाधिक दीन थी। किसकी माने और किसकी न माने। संघ की ओर से हिन्दू राष्ट्र मनवाने का कार्य इसके सुपुर्द किया गया था। किन्तु डाक्टर मुखर्जी की दलील का वह हृदय से कायल था। मुखर्जी को छोड़ा नहीं जा सकता, या छोड़ नहीं सकते। भय है कि उन्हें छोड़ा और पुनः जा पड़े घोर अन्धकार में। जैसे-तैसे तो अन्धकार से प्रकाश में आये हैं। डाक्टर साहब ही तो आँखें हैं। इनके बिना कौन मार्गदर्शन करा सकेगा? इतने अल्प समय में डाक्टर मुखर्जी में सबको इतना विश्वास, निष्ठा और श्रद्धा हो गई थी कि उसके विरुद्ध कोई बात कोई सोच भी नहीं सकता था। और फिर डाक्टर साहब के तर्क का जवाब भी तो किसी के पास नहीं था।

अतः यह प्रस्ताव इस प्रकार घड़वाया गया कि डाक्टर साहब की बात को स्वीकार करते हुए भी गुरुजी की बात का 'भाव' बनाये रखने का रास्ता निकल आये। अर्थात्—बागवाँ भी खुश रहे, राजी रहे सैयाद भी। बागवाँ को तो हर कीमत पर खुश रखना ही था, लेकिन सैयाद को भी नाराज होने का कोई कारण क्यों दिया जाये!

इस नवगठित प्रस्ताव का नाम "सांस्कृतिक पुनरुत्थान प्रस्ताव" रखा गया। दीनदयाल को प्रस्ताव के इस रूप से यह स्पष्ट हो गया कि यह पास अवश्य हो जायेगा। परन्तु गुरुजी की बात तो इससे पूरी होगी नहीं। भाव से क्या होता है? बस गजब हो जावेगा। अतः यह उसके गले में अटक गया। निगलने की कोशिश करता पर "श्री गुरु चरण सरोज" स्मरण होते ही उलटी होने को आती। दीनदयाल की दीन अवस्था देख कर दया आती। उसे स्वयं भी खेद था कि यह हिन्दू राष्ट्र का "बीड़ा" मैं क्यों चाब कर आया। किन्तु अब किया क्या जाय? इलाज यह सोचा गया कि हिन्दू राष्ट्र के जिस मूल प्रस्ताव को पारित करवाने के लिए सम्मेलन में संघ का वातावरण छा कर प्रतिनिधियों पर दबाव डालने के उद्देश्य से उत्तर-प्रदेश भर के संघ के संघचालकों, कार्यवाहों और प्रचारकों को कानपुर सम्मेलन में एकत्रित किया गया था, उनका उपयोग इस संशोधित सांस्कृतिक प्रस्ताव को पारित न होने देने में किया जाय। वारांगना राजनीति के सहवास का मजा मारने राज्य भर के

ब्रह्मचारी अपने-अपने लंगर लंगोटे घरों में छोड़ कर यहाँ प्रतिनिधियों के तम्बुओं में पहले से ही डटे थे।

३० दिसम्बर को विषय समिति की प्रातः की बैठक में कई अन्य प्रस्ताव निपटाने के बाद दोपहर लगभग १२ बजे जब "सांस्कृतिक पुनरुत्थान" प्रस्ताव पेश हुआ तो संघ से सम्बन्धित प्रतिनिधि यह देखकर दंग रह गये कि गुरुजी का स्पष्ट आदेश होते हुए भी प्रस्ताव में हिन्दू राष्ट्र कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा है। प्रस्ताव पर लगभग सवा घंटा बहस हुई और इसे रात्रि की बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया। रात्रि की बैठक में लगभग साढ़े ग्यारह बजे प्रस्ताव विषय समिति की बैठक में पुनः पेश हुआ और दो घंटे इस पर जोरदार बहस चली। दोनों ओर से आस्तीनें चढ़ी हुई थीं। दीनदयाल को वक्ताओं के भाषणों और बैठक के मूड से पूर्ण आभास हो गया कि प्रस्ताव अवश्य पास हो जावेगा। इसलिए उसने पर्दे की ओट में प्रस्ताव को फिलहाल स्थगित करवाने की जबर्दस्त कोशिश शुरू कर दी। प्रस्ताव का वह खुले आम विरोध नहीं कर सका क्योंकि वह डाक्टर साहब की निगाह में बना रहना चाहता था। वसन्त राव इस प्रस्ताव पर जाहिरा मौन थे। वैद्य गुरुदत्त तो एक बार नाराज होकर यह कहते हुए बैठक से बाहर चल दिये कि प्रस्ताव के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। प्रस्ताव को फ़िलहाल स्थगित करने के दीनदयाल के सुझाव को चुनौती देकर उसे रद्द कर दिया गया। इसमें सन्देह नहीं कि यदि दीनदयाल के सुझाव को चुनौती न दी जाती तो वह अवश्य ही टल जाता। इस बार तो यह लगभग स्थगित हो ही गया था। खैर पं० मौलिचन्द्र शर्मा के जोर लगाने पर अन्त में प्रस्ताव विषय समिति में पास हो गया और सबको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इसे स्वीकार करने के लिए उठे हाथों में दीनदयाल का हाथ भी शामिल था। इस समय रात्रि का डेढ़ बजा था।

इस जबर्दस्त टकराव में सबसे उल्लेखनीय बात डाक्टर मुखर्जी का रवैया थी। "हिन्दू राष्ट्र" के प्रस्ताव पर अपने विचार वे पहले ही दृढ़ता से व्यक्त कर चुके थे। इस नये प्रस्ताव से उनकी स्थिति में कोई अन्तर न पड़ने के कारण इसके पारित होने-न-होने में उन्हें कोई रुचि नहीं थी। संघ के बंधन में बँधे प्रतिनिधियों ने ही इसे गुरुजी की प्रतिष्ठा का प्रश्न बना कर इसे पारित न होने देने का निश्चय किया। इस पर संघ के बन्धन से मुक्त कार्यकर्त्ता इसे स्वीकार करने पर अड़ गये। इस प्रकार यह प्रस्ताव संघ के ही दो गुटों में शक्ति परीक्षा का प्रश्न बन गया। डाक्टर मुखर्जी ने किसी प्रकार भी यह प्रकट होने नहीं दिया कि प्रस्ताव के सम्बन्ध में उनका अपना क्या रुख है।

उनके द्वारा बैठक का संचालन देखकर सब वाह-वाह कर रहे थे। सबको अपनी बात कहने का उन्होंने अवसर दिया। किसी ने कैसी भी बात कही उन्होंने न रोका और न टोका। प्रत्येक बात बहुमत से स्वीकृत या अस्वीकृत की गई। बैठक के संचालन के ढंग पर सब मुग्ध थे। कोई यह न कह सका कि वे प्रस्ताव के पक्ष में हैं या विपक्ष में। जब यह सुझाव दिया गया कि प्रस्ताव न रखा जाय तो वे उसे मान गये। जब प्रस्ताव को तीन मास के लिए स्थगित करने की राय जाहिर की गई तो उस पर आपत्ति नहीं की और अन्त में जब बहुमत से यह निर्णय हुआ कि प्रस्ताव पेश किया जाय तो उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। तनिक मात्र भी यह आभास नहीं मिल सका कि वे प्रस्ताव के पक्ष या विपक्ष में अपने व्यक्तित्व का दबाव डाल कर प्रतिनिधियों की स्वतन्त्र राय को प्रभावित कर रहे हैं। इस बैठक की कार्यवाही देख कर प्रत्येक व्यक्ति में उनके प्रति आदर का भाव श्रद्धा में बदल गया।

विषय समिति में प्रस्ताव पारित हो हाने के बाद, इस भय से कि गुरुजी इससे रुष्ट होंगे, इसे प्रतिनिधि सभा में परास्त करने से अन्तिम अवसर का लाभ उठाने का निश्चय किया गया। प्रतिनिधि सभा की बैठक ३०-३१ दिसम्बर की रात्रि को जब डेढ़ बजे लगभग समाप्त होने को थी, घोषणा की गई कि प्रातः ६ बजे संघ की शाखा फूलबाग में जनसंघ के पण्डाल में लगेगी व उसमें डाक्टर साहब का भाषण होगा। रात विषय समिति की बैठक के बाद डाक्टर साहब २ बजे के बाद ही सोए थे। परन्तु उन्हें अगले दिन प्रातः ६ बजे संघ स्थान पर उपस्थित पाया। उतर प्रदेश के प्रान्तीय संघ चालक बैरिस्टर नरेन्द्रजीत सिंह ने "परम पूज्य डाक्टर साहब" कह कर जब उन्हें सम्बोधित किया तो डाक्टर हैडगेवार का चित्र आँखों के आगे घूमने लगा। डाक्टर साहब ने अपने दस मिनट के संक्षिप्त भाषण में जो कुछ कहा उसका साराँश यह था कि डाक्टर हैडगेवार एक महान व्यक्ति थे। उन्होंने मुझे अपने काम से परिचित कराया था। परन्तु उनकी वास्तविक महानता का ज्ञान मुझे अब पिछले दो ढाई वर्ष में हुआ है। उनकी शक्ति को देखकर मैं दंग रह गया हूँ। मुझे पहले इसका अंशमात्र भी आभास और अनुमान नहीं था। अब मैं पूर्ण विश्वास से कह सकता हूँ कि भारत का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। हमें डाक्टर हैडगेवार के अपूर्ण कार्य को पूर्ण करना है। मैं आपको प्रोग्राम दे सकता हूँ, अमल आपको करना होगा। यदि ऐसा हो गया तो डाक्टर हैडगेवार का स्वप्न अवश्यमेव साकार हो जाएगा।

संघ की शाखा जनसंघ के पण्डाल में क्यों लगाई गई? संघ के इति-

हास में आज तक ऐसा नहीं हुआ था। १९३८ में नागपुर में हिन्दू महा-सभा के अधिवेशन के अवसर पर, जो स्वातन्त्र्य वीर सावरकर की अध्यक्षता में हुआ था और जिसमें भारत भर के बड़े-बड़े हिन्दू नेता एकत्रित हुए थे, डा० हैडगेवार ने संघ का कार्यक्रम अपने संघस्थान पर ही रखा था, हिन्दू महासभा के पण्डाल में नहीं। नेताओं को वहीं पर आमन्त्रित किया गया था। तो फिर कानपुर में नागपुर से उल्टी बात का क्या कारण ?

'यह काफिर क्यों चला आया मुसलमानों की बस्ती में ?

कौन सी प्यास बुझाने संघ स्वयं चल कर राजनीति के घाट पर पहुंचा ? कारण था वही प्रस्ताव जो आज ३१ दिसम्बर के प्रात: १० बजे खुले अधिवेशन में पेश होने जा रहा था। अधिवेशन प्रात: १० शुरू हुआ और दोपहर २ बजे तक इसे 'पेश न होने देंगे' और 'पेश करवा कर रहने' के लिए "तू डाल-डाल मैं पात-पात" का खेल पर्दे के पीछे चलता रहा। भूख से सब बिलबिला रहे थे। थके शरीर के साथ रुचि और बुद्धि भी काम नहीं दे रही थी। आधे से अधिक प्रतिनिधि जालिम पेट की ज्वाला शाँत करने बाहर जा चुके थे। इस विवादास्पद प्रस्ताव को, जिसे विषय समिति में अब तक पं० मौलिचन्द्र शर्मा घसीट कर लाये थे, बड़ी चतुराई से उत्तर प्रदेश के और संघ के पंडित दीनदयाल से रखवाया गया। क्यों ? इसलिए कि प्रस्ताव के विरोध की सम्भावना केवल संघ के लोगों से ही थी। यह धारणा सही थी कि स्वयं दीनदयाल द्वारा प्रस्ताव पेश किये जाने के कारण किसी विरोधी को भी इसका विरोध करने का ख्याल न आएगा। इक्के दुक्के विरोध से कुछ बनेगा नहीं। और अब गुरुजी की प्रतिष्ठा की बजाय यह प्रस्ताव दीन-दयाल की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाने के कारण उत्तर प्रदेश के ८० प्रतिशत प्रतिनिधि प्रस्ताव का समर्थन कर इसे गिरने नहीं देंगे।

शक्ति परीक्षा के अन्तिम क्षण यह भांप कर कि कितना भी जोर लगने पर प्रस्ताव पास हो जावेगा उसके आघात से संघ की और गुरुजी की प्रतिष्ठा को बचाने के लिए वह आघात अपने ऊपर ले कर अपूर्व बुद्धिमत्ता, साहस और राजनीतिक सूझ का परिचय दीनदयाल ने दिया। प्रस्ताव से तो वह हृदय से सहमत थे ही, अत: उन्होंने बड़ी सुन्दर भूमिका बांधकर प्रस्ताव पेश किया। समय बहुत हो जाने के कारण इस पर अधिक बहस न करते हुए स्वीकार करने की प्रार्थना की। प्रस्ताव के अनुमोदक ने केवल यह शब्द कहे कि "मैं इस प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूँ।" और लो ! प्रस्ताव पर किसी भी तीसरे व्यक्ति को बोलने का अवसर न देते हुए इस पर मतदान ले

लिया गया। प्रस्ताव तो पारित होना ही था। परन्तु इस प्रकार पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने अत्यन्त चतुराई से अपनी हार को न केवल सबकी जीत में बदल दिया अपितु "शिशु हत्या" होने से भी बचा ली।

इस प्रस्ताव के बाद पण्डित उपाध्याय जी डाक्टर मुखर्जी के अत्यन्त निकट आ गए थे। क्योंकि पण्डित जी के रूप में डाक्टर मुखर्जी के हाथ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ रूपी अमूल्य निधि की वह कुंजी आ गई जिसकी उनको तलाश थी।

परिशिष्ट

साँस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रस्ताव

जनसंघ का यह मत है कि भारत तथा अन्य देशों के इतिहास पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि केवल भौगोलिक एकता एक राष्ट्रीयता के लिए पर्याप्त नहीं। एक देश के निवासीजन एक राष्ट्र तभी बनते हैं जब वे एक संस्कृति के द्वारा एक रूप कर दिए गए हों। जब तक भारतीय समाज एक संस्कृति का अनुगामी रहा तब तक अनेक राज्य रहते हुए भी यहाँ के जनों की मूलभूत एक राष्ट्रीयता बनी रही। जबसे विदेशी शासकों ने अपने लाभ के लिए एकात्मता को भंग कर विदेशपरक संस्कृतियों को इस देश में जन्म दिया है तब से भारत की एक राष्ट्रीयता संकटापन्न हो गई। अनेक शताब्दियों तक एक राष्ट्र का घोष करते हुए भी भारत में मुस्लिम सम्प्रदायवादियों के द्विराष्ट्रवाद की विजय हुई, देश विभक्त हुआ और पाकिस्तान में अमुस्लिमों के लिए रहना असम्भव कर दिया गया। दूसरी ओर भारत में मुस्लिम संस्कृति को अलग मान उसकी रक्षा और संवर्द्धन के नाम से उसी द्विराष्ट्रवादी प्रवृत्ति का पोषण हो रहा है जो राष्ट्र निर्माण के मार्ग में बाधक है।

अतः जनसंघ निर्णय करता है कि भारत की एक राष्ट्रीयता के विकास और दृढ़ीकरण के हेतु, यह निन्तात आवश्यक है कि भारत में एक संस्कृति का पोषण हो और समाज के सभी घटकों में चाहे वे किसी धर्म के मानने वाले अथवा किसी प्रदेश के निवासी हों, उसका प्रचार किया जाय और उसे मान्यता दी जाय।

इस कार्य के सम्पादन के लिए वह समाज तथा शासन के लिए निम्न सात दिशाओं में कार्य करने के लिए कहता है :—

१—शिक्षा को राष्ट्रीय संस्कृति पर आधारित किया जाय। गीता, रामायण

उपनिषद, महाभारत के साहित्य से सबको परिचित कराया जाय।

२—राष्ट्रपुरुषों के जन्म-दिवस, राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाए जायें।

३—होली, दीवाली, विजय दशमी, रक्षा बन्धन को राष्ट्रीय त्यौहारों के रूप में मनाया जाय।

४—क्षेत्रीय भाषा का प्रचलन किया जाय।

५—संस्कृत भाषा को पुनर्जीवित किया जाय। उसका ज्ञान विद्वत्ता के लिए अनिवार्य है और देश की सभी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि को ही राष्ट्रीय लिपि के रूप में स्वीकार किया जाय।

६—भारतीय इतिहास शुद्ध रूप में लिखा जाय।

७—(क) संस्कृति के पुनरुत्थान तथा एकीकरण की दृष्टि से यह संघ देश के हिन्दू समाज को सचेत करता है कि अपनी इतिहाससिद्ध अंतरंग सामाजिक दुर्बलताओं का शीघ्रता से निराकरण करें। विशेष कर जाति-भेद के कारण उत्पन्न ऊंच-नीच और विभिन्नताओं को तत्काल दूर किया जाय और पिछड़े वर्गों तथा अन्य हिन्दुओं के बीच पूर्ण साम्यता की स्थापना की जाय। साथ ही समाज के हेतु धार्मिक पर्वों और उत्सवों को सामूहिक, संगठित तथा अनुशासित रूप में मनाय जाय और समाज के सब स्तरों के जनों का उनमें सहयोग प्राप्त किया जाय।

(ख) इस प्रकार अपने अंतरंग सुधार के साथ-साथ हिन्दू समाज का राष्ट्र के प्रति कर्तव्य है कि भारतीय जन के उन भागों के राष्ट्रीयकरण का महान कार्य हाथ में ले जो विदेशाभिमुख बना दिए गए हैं। हिन्दू समाज को चाहिए कि वह उन्हें आत्मसात करले। केवल इसी प्रकार साम्प्रदायिकता का अन्त हो सकता है और राष्ट्र की एकनिष्ठता तथा दृढ़ता निष्पन्न हो सकती है।

शाश्वत वाणी

१. वार्षिक मूल्य केवल पांच रुपये।
२. एक साथ बीस रुपये भेजकर आप पांच पाठकों को इसका वार्षिक ग्राहक बना सकते हैं।

कर्मयोगी की याद

○

डा० महावीर, संसद सदस्य

२३ जून १९५३ का वह दारुण दिवस था जब डॉ० मुखर्जी ने भारत की अखंडता की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दी। कैसे मृत्यु हुई? श्रीनगर के उस अस्पताल में जब कालरात्रि के अन्धेरे के समान उन पर मौत की काली छाया ने अपने पंजे बढ़ाए थे तब उनके पास कौन था? जो कुछ औषधि उनको दी गई वह क्या थी? क्या वे किसी षडयन्त्र का शिकार होकर स्वतन्त्र भारत के प्रथम और महानतम शहीद बने अथवा अयोग्य तथा उदासीन कर्मचारियों की लापरवाही ने देश की एक महान विभूति की जीवन लीला समाप्त की? ये प्रश्न आज भी उत्तर माँगते हैं। परन्तु इनकी ओर ध्यान देनेका साहस न 'सत्यमेव जयते' की घोषणा करने वाली सरकार में था, न विश्व-भर में मानव हितों और लोकतंत्र के लिए जहाद करने वाले हमारे प्रधान मन्त्री पं० नेहरू में। फिर, जिसे कश्मीर में अपनी सल्तनत बनाने के दिवा-स्वप्नों के सिवा कुछ सूझता ही नहीं था, उस महत्वाकाँक्षी, राजनीतिक चालबाजी के धूर्त शकुनि, शेख अब्दुल्ला को कहाँ से हो सकता था? उसने तो श्रीनगर से डॉ० साहिब के शव के चलने के समय उस पर एक शाल ओढ़ाकर अपना कर्त्तव्य पूर्ण मान लिया था। उस शाल से किस-किसके पाप ढँके गए थे यह आज कोई भले ही न कह सके, परन्तु यदि इतिहास की कोई वाणी होती है, यदि सत्य में झूठ और अनाचार के परदों को भेदने की कोई शक्ति है तो एक दिन यह रहस्य खुलकर ही रहेगा कि डॉ० मुकर्जी के खून से किसके हाथ रंगे हुए हैं।

परन्तु मृत्यु के अतिरिक्त डा० मुकर्जी के जीवन में कुछ भी रहस्यपूर्ण नहीं था। वे राजनीति में आए तो एक लक्ष्य की प्रेरणा के कारण—लोकहित की माँग उन्हें खींचकर लाई। वे फजलुलहक के बंगाल मंत्रिमंडल में सम्मिलित हुए तो इसलिए कि श्री जिन्ना के प्रभाव से निकलनेके बाद फिर से वह उनकी शरण में जाने के लिए विवश न हो और जिस क्षण उन्हें यह प्रतीत हो गया कि अब मेरे वहाँ रहने से लाभ नहीं है वे बाहिर आ गए। मंत्री रहते हुए भी १९४२ के ब्रिटिश दमन चक्र के विरोध में जिस प्रकार के कठोर भर्त्सना-

पूर्ण पत्र उन्होंने गवर्नर को लिखे, और जिस तरह वे भागलपुर में हिन्दू महासभा के अधिवेशन पर लगे प्रतिबन्ध के विरोध में वहाँ जाकर गिरफ्तार हुए, उससे उनकी अदम्य भावना ही प्रकट नहीं होती, उस काल में ये घटनाएँ अपने उदाहरण आप ही हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात उन्होंने भारत के पहले उद्योग व प्रदाय मन्त्री के रूप में केन्द्रीय मन्त्री मंडल का सदस्य बनना स्वीकार किया, तो अपने सिद्धान्तों को छोड़कर नहीं, देश सेवा के विचार से हिन्दू महासभा के अध्यक्ष के रूप में वीर सावरकर की अनुमति से। जब तक वहाँ रहे प्रत्येक महत्वपूर्ण प्रश्न के निपटान पर अपनी छाप छोड़ी और जब अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ को कुचलेबगैर न रह सके तो साहसपूर्वक गद्दी को लात मार कर आ गए। उन्हें कुर्सी का मोह नहीं था, राजनीति उनका धंधा नहीं थी।

श्यामाप्रसाद एक होनहार बालक थे और आशुतोष मुकर्जी जैसे महान् पिता से उन्हें बहुमुखी प्रतिभा ही नहीं मिली थी, उत्कृष्ट प्रकार की शिक्षा-दीक्षा भी। बी०ए०, एम०ए०, बी०एल०-किसी भी परीक्षा में उन्होंने दूसरा स्थान नहीं पाया। फिर इंग्लैंड जाकर बैरिस्टर बनकर आए।

भारत के सबसे बड़े विश्वविद्यालय के सबसे कम अवस्था के उपकुलपति के रूप में उन्होंने अपने पिता के अधूरे कार्य को पूर्ण तो किया ही, उसके विकास में जो योगदान उन्होंने दिया वह अविस्मरणीय है। जब और कहीं इसका विचार भी नहीं उठा था, उन्होंने प्रादेशिक भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रयोग किया। शिक्षा के क्षेत्र में यदि वे न रहते तो वकालत के मार्ग से भी प्रतिष्ठा और धन की उच्चतम उपलब्धियाँ प्राप्त करना उनके लिए कुछ कठिन न होता। परन्तु दैवी विधान ने उनके लिए कुछ और ही तय कर रखा था। इसलिए वे बंगाल कौंसल के सदस्य निर्वाचित हुए। यदि वे आराम-कुर्सी छाप के राजनीतिज्ञ बनने में सन्तुष्ट होते तो इस सदस्यता और बाद में मिली वजारत को लेकर किनारे किनारे चलते रहते।

परन्तु हुआ कुछ और। १९३९ में मुस्लिम लीग ने बंगाल में दंगे करवाये। चिटगाँव, मुँशीगंज, ढाका आदि के जिलों में उस समय जो अत्याचार किए गए और महिलाओं को जो कुछ भुगतना पड़ा उसे देखकर वे गहरी चिन्ता में पड़े। अँग्रेज राजकर्त्ता अपने हेतु से इन कार्रवाइयों को बढ़ावा दे रहे थे, काँग्रेस अपने कारणों से मौन साधे बैठी थी और हिन्दू अपनी रक्षा करने में असमर्थ थे। डा० मुकर्जी हिन्दू सभा में सम्मिलित हो गए और हिन्दू संगठन के द्वारा समाज की रक्षा में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति उड़ेल दी। अगले

ही वर्ष वे उसके कार्यकारी प्रधान बनाए गए।

जब कांग्रेस के नेताओं ने अपने सब वचनों को तोड़कर देश विभाजन स्वीकार किया तो डा० मुकर्जी आँकड़ों और नक्शों का पुलिन्दा लेकर गाँधी जी से मिलने के लिए गए। गाँधी जी ने स्पष्टत: स्वीकार किया कि—न मैंने ये नक्शे देखे हैं और न इन आँकड़ों का अध्ययन किया है। इस पर डॉ० साहिब ने उन्हें कहा—महात्मा जी आप लाखों लोगों के जीवन के साथ खेल रहे हैं और आपने इस विषय का विचार तक नहीं किया है कि विभाजन से किस प्रकार की विभीषिका जन्म लेगी? परन्तु लीग की सीधी कार्रवाई से काँग्रेस नेता इतने हतप्रभ हो चुके थे कि पाकिस्तान की माँग मानने के सिवाय उन्हें कोई बचाव नहीं दीखता था। बहुतेरा उन्हें समझाया गया कि आज जो देश का आन्तरिक प्रश्न है कल अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के षडयन्त्रों का अड्डा बन जाएगा, परन्तु सब व्यर्थ। इस पर डॉ० साहिब ने पंजाब और बंगाल के हिन्दू बहुमत भाग को बचाने का बीड़ा उठाया। एक बार श्री नेहरू ने उन पर आरोप लगाया कि विभाजन में उनकी भी सहमति थी। इस पर श्यामा-बाबू ने यह उत्तर दिया—'पं० नेहरू जैसे नेता को ऐसे निराधार और अनुचित आरोप लगाना शोभा नहीं देता। मैंने विभाजन का पूरा विरोध किया, पर जब मैंने देखा कि कांग्रेस उसे मानकर रहेगी तो मैंने आधा बंगाल और आधा पंजाब बचाया। तुमने भारत को बाँट कर दिया, मैंने पाकिस्तान का का टुकड़ा काटा।'

१९५० में पूर्वी बंगाल में फिर से हिन्दुओं पर रोंगटे खड़े कर देने वाले अत्याचार बड़े भारी पैमाने पर शुरू किए गए। लगभग पचास हजार व्यक्ति मौत के घाट उतारे गए। लाखों लोगों को तन के कपड़े तक उतार कर भिखारी बनाकर भारत की सीमा में धकेला गया। भरी गाड़ियों में से खोज-खोज कर सुन्दर स्त्रियों व युवतियों को 'यह पाकिस्तान का माल है, यह नहीं जा सकता'—कहकर बाहिर निकाल लिया जाता था। कई डिब्बों में कुछ वे टूटी हुई चूड़ियाँ, कुछ रक्त के दाग ही अत्याचार के मूक प्रमाण के रूप में भारत पहुँचते थे। श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने देखा कि नेहरू जी सीमा पार के बन्धुओं की रक्षा के लिए न साहस रखते हैं न सामर्थ्य। समस्या की ओर आँखें बन्द कर लेने के सिवा उन्हें कुछ नहीं आता।

'नेहरू और गाँधी में यह अंतर है,' उन्होंने मुझे एक बार कहा—'नेहरू कायर है। वह किसी समस्या का सामना नहीं कर सकता। गांधी उससे डर कर भागते नहीं थे वे उसके बीच में जा पहुँचते थे, भले ही वह सुलझे

नहीं। नेहरू तो उसे टालता है।'

बंगाल की पुकार पर डॉ० मुकर्जी ने मन्त्री पद त्यागा और संघर्ष का पथ स्वीकार किया। कश्मीर की पुकार पर उन्होंने आत्माहुति दे दी। इसके बीच में जो तीन साल की अवधि बीती वह उनके जीवन का कठिनतम और महानतम काल था। नए व अनुभवहीन कार्यकर्ताओं को साथ लेकर जैसे वे चले, दूसरों को सिखाते सिखाते भी उन्होंने अपनी योग्यता अथवा, बड़प्पन का बोझ जिस प्रकार कभी भी उन्होंने दूसरों पर नहीं पड़ने दिया। भारी कष्ट सहन करके भी लोगों और सहकारियों की बात, जिस प्रकार उन्होंने मानी और निभाई, यह मेरे जैसे वे भाग्यवान लोग केवल अनुभव ही कर सके जिन्हें उनके साथ का सुअवसर मिला।

मुझे याद है पहले आमचुनाव के दिनों की वह बात। लगातार प्रवास का उनके शरीर पर काफी परिणाम हो रहा था। दिल्ली पहुँचकर उन्होंने मुझे कहा कि डॉक्टर के आदेशानुसार मुझे एक दिन विश्राम कर लेने दो, पटियाला का कार्यक्रम रद्द कर दो। मैंने तत्काल ट्रंककाल करके पटियाला वालों को सूचना दी। वे तो हक्के बक्के रह गए। उन्हें यह कहाँ स्वीकार हो सकता था। 'बस एक आधे घन्टे के कार्यक्रम के लिए आ जाएँ, हम ज्यादा कुछ नहीं करेंगे, नहीं तो हमारे चुनाव आन्दोलन पर पानी फिर जाएगा।' मैं क्या करता? मैंने कहा कि दो लोग यहाँ आ जाइए, प्रत्यक्ष बात करके कोशिश करेंगे यदि डॉ० साहिब मान गए। वे आए और थोड़े यत्न के बाद ही कार्यक्रम फिर बन गया। शर्त यह रही कि ज्यादा बोझ नहीं डाला जाएगा। मोटर से जाना था और रास्ते में यदि कहीं लोग एकत्रित होंगे तो पाँच-पाँच सात-सात मिनट उन्हें डा० मुकर्जी कुछ शब्द कहते जायेंगे।

आम चुनाव के नशे में कौन किसकी सुनता है। हुआ यह कि दिल्ली से चलकर सोनीपत, पानीपत, करनाल, अम्बाला में तो जुलूस भी निकले और लगभग पौन-पौन घन्टे के भाषण उन्हें देने पड़े और दस दस मिनट के लिए ५-६ जगह जो रोका गया वह अलग। पटियाला में प्रतिष्ठित लोगों का कार्यक्रम, प्रेस सम्मेलन, और सार्वजनिक सभा के अतिरिक्त कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक थी।

डॉ० मुकर्जी दिल्ली वापिस पहुंचे। मैंने सारा वृत्तान्त सुना तो एक अच्छी डाँट खाने के लिए तैयार हो गया। थकावट के मारे वे चूर हो गए थे। लेकिन एक दबी हुई मुस्कान के साथ केवल इतने शब्द उन्होंने कहे—यह आदमी मुझे मार डालेगा।' और सारे प्रवास के उत्साह का वर्णन करने लग

पड़े। कितनी सहनशीलता, कितनी महानता, कितना लोकतंत्री स्वभाव। यह कर्मयोग नहीं तो क्या था ?

आज देश के सामने जो अनेक गंभीर प्रश्न हैं वे प्राय: डॉ० श्यामाप्रसाद के समय भी थे। एक-एक पर उन्होंने जो कुछ कहा वह देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत तो है ही, उनकी बुद्धिमत्ता, दूरदृष्टि और दृष्टिकोण की विशालता का भी द्योतक है।

'हमारे दल का मत है कि कश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघ से वापिस ले लेना चाहिए और अब जनमत संग्रह का कोई प्रश्न बाकी नहीं रहा। कश्मीर भारत का एक अविभाज्य अंग है और उसके साथ अन्य राज्यों जैसा ही व्यवहार होना चाहिए।'

तब भी आज की तरह जनसंघ पर साम्प्रदायिकता का आरोप लगाया जाता था। 'मुस्लिम साम्प्रदायिकता की वेदी पर भारतीय राष्ट्रवाद की बार-बार बलि चढ़ाकर, और विभाजन के पश्चात भी पाकिस्तान सरकार के नखरों और घुड़कियों के सामने हथियार डाल कर श्री नेहरू दूसरों पर साम्प्रदायिकता का आरोप किस मुँह से लगाते हैं ? भारत में आज कोई साम्प्रदायिकता नहीं है सिवाय मुस्लिम तुष्टीकरण की उस नीति के जो श्री नेहरू और उनके मित्रों ने आगामी चुनाव में वोट प्राप्त करने के लिए शुरू की हुई है।'

और फिर—'क्या तुमने साम्प्रदायिक बँटवारे का मुकाबला किया? मुस्लिम लीग से कोई समझौता करने के लिए कितने साम्प्रदायिक प्रतिशतता देना स्वीकार किया ? देश के टुकड़े करना किसने माना ? ऐसा करने में तुम्हारा हेतु ब्रिटिश सरकार को निकालने जैसा कितना भी पवित्र रहा हो किन्तु फिरकापरस्ती पर देश की शक्ति चढ़ाकर हमें साम्प्रदायिक कहना सत्य का उपहास है।'

फिर भी, 'हमारे विरुद्ध कुछ भी कहा जाए, हमारे हेतु कितने भी बुरे बताए जाएँ, मैं प्रधानमंत्री को यह आश्वासन देना चाहता हूँ कि यदि देश में कोई आपतकालीन स्थिति उत्पन्न हुई तो जिस दल का प्रतिनिधित्व मैं करता हूँ उसकी ओर से मैं सरकार को बिना किसी भी शर्त के सहयोग और समर्थन का आश्वासन देता हूँ।'

एक संसदज्ञ के रूप में डा० मुकर्जी की यादें अभी तक हरी हैं। जब कभी दो-दो हाथ हुए तो पं० नेहरू को उनके सामने नीचा देखना पड़ा। नजरबन्दी कानून के विवाद के समय उनका गृह मंत्री काटजू के पूराने भाषणों का उप-

(शेष पृष्ठ ४८ पर)

श्रद्धाँजलि

○

डा० सतीश कुमार आहूजा

अमरीका में जब श्री कैनेडी ४२ वर्ष की आयु में राष्ट्रपति निर्वाचित हुए तो सारे संसार ने आश्चर्य व्यक्त किया कि इतनी छोटी अवस्था में कैसे एक व्यक्ति इतने बड़े राष्ट्र का कर्णधार बन सकता है। परन्तु भारत की राजनीति में उससे कहीं अधिक आश्चर्यजनक घटना घट चुकी थी। २३ वर्ष की आयु में अर्थात् १९२४ में डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने विश्वविद्यालय के प्रबन्ध में सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया। सीनेट के सदस्य के रूप में, स्नातकोत्तर शिक्षा समिति में, फैकल्टी आफ आर्ट के डीन के रूप में और फिर चार वर्ष तक उपकुलपति के रूप में शिक्षा सम्बन्धी तथा साँस्कृतिक कार्य जो आपने १९३४ से १९३८ तक किये वे समय तथा आयु की दृष्टि से विश्व विद्यालय के इतिहास में अद्वितीय हैं। कुछ काल तक वकील तथा फिर बैरिस्टर बन कर वकालत की परन्तु शिक्षा तथा सामाजिक कार्यों की ओर रुचि तथा देश-सेवा की भावना से प्रेरित होकर १९३९ से राजनीति में सक्रिय हो गये। इसी वर्ष आप बंगाल लैजिस्लेटिव असैम्बली के सदस्य निर्वाचित हो गये और श्री दामोदर विनायक सावरकर की प्रेरणा से हिन्दू महासभा के क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ किया। बंगाल के मुसलमानों के साम्प्रदायिक कार्यों को देख कर, काँग्रेस को उनके राष्ट्र विरोधी कार्यों का विरोध करने में असफल पा, डा० साहब के लिये हिन्दू महासभा को अपनाने के सिवा कोई चारा ही न था। यदि श्री निर्मल चन्द्र चटर्जी तथा डा० मुखर्जी का संयुक्त प्रयास न होता तो सारा बंगाल पाकिस्तान बन चुका था। मुस्लिम लीग तथा काँग्रेस के गठबन्धन को तोड़ने के लिए आपने १९४२ में हिन्दू महासभा के प्रधान होते हुए भी, प्रजा कृषक पार्टी के नेता फजलुल हक के मंत्री-मंडल का समर्थन किया और मंत्री पद स्वीकार किया। परन्तु १९४२ में गवर्नर के विशेषाधिकारों के दुरुपयोग के विरोध में त्याग पत्र दे दिया तथा १९४३ में बंगाल के साइक्लोन तथा मनुष्य निर्मित अकाल में पीड़ितों की सहायतार्थ कार्य आरम्भ कर दिया। यह सेवा इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखी जायेगी।

ढाका के हिन्दू मुसलमानों के झगड़े तथा १९४६ के डायरेक्टर ऐक्शन के समय हुए कलकत्ते के हत्याकाण्ड में किये गये आपके शौर्य पूर्ण कार्य केवल सराहनीय ही नहीं, प्रत्युत किसी भी देश के किसी भी वीर पुरुष के लिये अनुसरणीय हो सकते हैं। इसी प्रकार नोआखाली में आप पहले हिन्दू थे जो उस स्थान पर जलती आग में कूद पड़े और हिन्दुओं की जान माल की रक्षा की। उनकी सेवाओं के देखते हुए और योग्यता का सम्मान करते हुए ही, उनके हिन्दू महासभा के प्रधान होने के बावजूद काँग्रेस ने पहले उनको कान्स्टिचूएन्ट ऐसेम्बली का मैम्बर और फिर भारत का एक मंत्री बनाया। आपने इस कार्य को अति सराहनीय ढंग से निभाया।

१९५० में जब पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दुओं की भारी संख्या में हत्यायें होने लगीं और लाखों की संख्या में पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दू भाग-भाग कर भारत आने लगे तो डा० साहब ने सरकार को कहा कि जितने हिन्दू वहाँ से आते हैं, उनको पुनः अपने घरों में अपनी सेना भेज कर बसाया जाये ! पंडित नेहरू लियाकत अली से बातचीत करना चाहते थे और डा० मुखर्जी बातचीत के पक्ष में इस शर्त पर तैयार थे कि पाकिस्तान इन उजड़े हुओं को बसाने में सहायता करे ! इस पर दोनों में मतभेद पैदा हो गया। स्व० काका गाडगिल भी इसी मंत्री मंडल के सदस्य थे। उन्होंने अपने संस्मरणों में लिखा है कि एक दिन मंत्री-मंडल की बैठक में प्रधान मंत्री नेहरू डा० मुखर्जी पर इतने गर्म हो गये कि खड़े होकर घूँसा तान लिया ! इस पर खड़े होकर डा० मुखर्जी ने आस्तीनें चढ़ा लीं और उन्हें ललकारा। सरदार पटेल बैठक से उठकर चले गये। डा० मुखर्जी ने दूसरे ही दिन मंत्री-मंडल से त्याग पत्र दे दिया।

कुछ लोगों का यह विचार है कि पूर्वी बंगाल की घटनायें ही डा० साहब के त्याग पत्र का कारण थीं। परन्तु यह सर्वथा सत्य नहीं है। पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं पर अत्याचार तो उस शृंखला की अंतिम कड़ी थी जिसका आधार डा० साहब का बंगाल के एकीकरण का प्रयास था। बंगाल की घटनाओं ने दोनों नेताओं को आमने-सामने खड़ा कर दिया था। दुर्भाग्य से जीत नेहरू की हुई। लखनऊ से प्रकाशित एक साप्ताहिक में नेता जी सुभाष के साथी अमर शहीद यतीन्द्रनाथ दास के भाई, प्रसिद्ध क्राँतीकारी श्री किरण चन्द्र दास से एक भेंट प्रकाशित हुई थी। श्री दास ने डा० मुखर्जी के त्याग पत्र के कारण में एक घटना का उल्लेख किया है जिसको बहुत कम लोग जानते हैं। उन्हीं के शब्दों में यह घटना इस प्रकार है—

"लो एक खबर सुनो, जिसे बहुत कम लोग जानते हैं। १९५१-५२

की बात है, पूर्वी बंगाल, पाकिस्तान से खबर आई कि बंगाल के दोनों टुकड़े मिला कर महाबंगाल की रचना का यही उचित समय है। भारतीय बंगाल आगे बढ़े तो पाकिस्तानी बंगाल स्वागत करेगा। यह खबर मिजो की थी जो पूर्वी पाकिस्तान में रहते हैं, पर देखना तो यह था कि उनके पीछे कौन है कितनी शक्ति है। मुझे और मेरे साथियों को बताया गया कि प्रस्ताव सरकारी क्षेत्र का है। पूर्वी पाकिस्तान में उस समय फजलुल हक साहब प्रधान मंत्री थे और विधान सभा में उनकी पार्टी का बहुमत था।

"इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर कलकत्ते के एक होटल में कुछ साथियों की एक मीटिंग हुई। इसमें मैं, अरविन्द बोस और हरिकृष्ण मित्रा थे। इस मीटिंग की बात श्री श्यामा प्रसाद मुखर्जी के सामने रखी गई। वे हमें सरदार पटेल के पास दिल्ली ले गए। तय हुआ कि सीधे फजलुल हक साहब से बात की जाये। योजना यह थी कि भारतीय बंगाल की ओर से एक विशाल जन अभियान हो, पश्चिमी बंगाल की विधान सभा महाबंगाल को मान्यता देकर उसमें अपना विलयन स्वीकार करे और जनता स्वागत गान गाये। जन अभियान का संगठन और नेतृत्व करने के लिए सरदार ने मेजर जनरल रुद्रा को हमारे साथ कलकत्ता भेज दिया। पूर्वी बंगाल खबर भेजी गई और फजलुल साहब दौड़े आये। कलकत्ता के···होटल में मीटिंग हुई। उसमें सर्वश्री फजलुल हक, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, किरणशंकर राय, अरविन्द बोस, मैं और शरतचन्द्र बोस आदि थे। पूरी योजना की छानबीन हुई, परिवर्तन, परिवर्धन हुए, वातावरण सफलता के भाव से जगमग हो उठा। उत्फुल्लता इतनी अधिक थी कि प्रसिद्ध गायक पंकज मलिक ने जब गाया, तो स्वयं फजलुल हक साहब भी गाने लगे। गीत यह था—आमरी मोट बंगला भाषा

देशेर गर्व देशेर आशा।
तुम्हार आशोन शून्यो
हे वीर, पुर्नो करो।

(हमारी बंगला भाषा, तू देश का गर्व है, देश की आशा है। तुम्हारा आसन शून्य-लग्न है, उसे पूर्ण करो)।

"दुर्भाग्यवश एक बैरिस्टर मित्र ने यह समाचार एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता महिला को दे दिया और उन्होंने तुरन्त दिल्ली फोन मिला कर प्रधान मन्त्री जवाहर लाल नेहरू से सारी बात कह दी।

"And Panditji rushed to Calcutta over the air to break up the dreams of an united Bengal, which according to us

would have helped the unification of Punjab and liquidate Pakistan. All preparations for the great march were made to be smashed down and the signal of the zero hour together awaiting Rudraji of thc Indian Army at the front never came."

(अर्थात—और पंडित नेहरू जहाज से उड़कर तुरन्त कलकत्ता पहुँचे एकीकृत बंगाल के स्वप्नों को खंडित करने के लिए, जो कि हमारे मतों के अनुसार आगे चलकर पंजाब के एकीकरण में ही नहीं अपितु पाकिस्तान को समाप्त करने में भी सहायक सिद्ध होता। वे तमाम तैयारियाँ जो इस महान अभियान के लिए की गई थीं, धूल में मिटा दी गईं और स्थल सेना के मेजर जनरल रुद्रा जो मोर्चे पर खड़े, अभियान के जिस मांगलिक क्षण की बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहे थे, वह कभी नहीं आया।)

मेजर जनरल रुद्रा ने त्याग पत्र दे दिया। अनुमान है कि उसी महिला ने पाकिस्तान को भी सूचना दी। परिणाम यह हुआ कि श्री फजलुल हक और उनके प्रजातन्त्र दल के सब विधायक पाकिस्तान सरकार द्वारा एक साथ गिरफ्तार कर लिए गए, दल गैर कानूनी घोषित हो गया!

नेहरू तथा डा० साहब में इतने खिचाव का यही कारण था तथा लियाकत अली से समझौते को नेहरू की पेशकश इस खिचाव की सीमा बन गई। भारत के इस सपूत का यह प्रयास सदा भारतीयों के दिलों में अमर रहेगा।

मंत्री पद त्यागने के बाद आप संसद में विरोधी दल के नेता बन गये तथा यह उत्तरदायित्व ऐसी कुशलता से निभाया कि सब उनकी विद्वत्ता, भाषण कला व तर्क शक्ति का लोहा मान गए। धीरे-धीरे नेहरू डा० साहब को साम्प्रदायिक कर कर निन्दा करने लगे (जैसा कि उसका स्वभाव था कि जिस किसी नेता का जनता से सम्मान कम करवाना हो उसको साम्प्रदायिक घोषित कर, रेडियो आदि साधनों से अंधाधुंध इस बात का प्रचार करवा दिया।) डा० साहब कांग्रेस के तथा नेहरू के इस घृणित कार्य को देख तथा पाकिस्तान और अन्य विषयों में उसकी दूषित नीति को देख, उसके दूरगामी परिणामों पर विचार कर एक अलग राजनैतिक संस्था की स्थापना का प्रयास करने लगे। भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओं पर आधारित-शुद्ध राष्ट्र निष्ठा से ओत-प्रोत जन संघ को आपने जन्म दिया। प्रथम निर्वाचनों में, केवल तीन मास की आयु के इस दल को, काँग्रेस की तमाम अनियमितताओं के

बावजूद आपने उस स्थान पर पहुंचा दिया कि लोक सभा में नेहरू भी इससे घबराने लगा। निर्वाचन कमिश्नर ने जनसंघ को देश के चार राष्ट्रीय दलों में एक स्थान दिया।

इसी समय कश्मीर की समस्या अपने उक्त रूप में सामने आई और डा० साहब की प्रेरणा से जन संघ ने कानपुर अधिवेशन में आन्दोलन का निश्चय किया जिससे देश को चेतावनी दी जा सके कि यदि समय रहते इस समस्या को न सुलझाया गया तो यह भी पाकिस्तान की भाँति देश से अलग हो जायेगा। आन्दोलन अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रहा और देश का ध्यान गम्भीरतापूर्वक काश्मीर समस्या पर गया, परन्तु इसकी कीमत भारत को महँगी पड़ी। अकस्मात विचित्र तथा रहस्यमय परिस्थिति में, भारत, भारती तथा भारतीयता के इस पुजारी ने, २३ जून, १९५३ को प्रातः ३ बजकर चालीस मिनट पर, राष्ट्रद्रोही तथा देशघातक शेख अब्दुल्ला की कैद में दम तोड़ दिया। पूर्ण भारत बौखला उठा इस हत्याकाँड पर।

आज डा० साहब नहीं हैं परन्तु उनकी देन जनसंघ के रूप में सामने है। हालांकि अभी तक जनसंघ ने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया परन्तु भारत की जनता को इससे बहुत आशाएं हैं। भगवान डा० साहब की आत्मा को शांति तथा जनसंघ के वर्तमान नेताओं को सदबुद्धि दे ताकि डा० साहब के सपने सरकार तथा भारत की आशायें पूरी हो सकें। ●

(पृष्ठ ४३ का शेष)

योग और खूब उत्कंठा जागृत करके उनका नाम बताना, मंत्री रूप में टुथब्रुशों की बिक्री के समर्थन में ठीक समय पर बिल्कुल बेकार ब्रुशों के दो नमूने जेब से निकाल कर दिखा देना आदि उदाहरणों के अतिरिक्त उनकी वाग्धारा का प्रवाह, उनकी समय सूत्रता, हाजिरजवाबी क्या भूलने वाली वस्तु है ?

हर वर्ष की २३ जून, देश के राजनीतिक क्षितिज के उस दिव्य नक्षत्र की याद लेकर आती है जो अल्पकाल में ही ओझल हो गया परन्तु जिसकी ज्योति अभी भी विद्यमान है। इतनी विद्वत्ता, इतना साहस, इतनी तीव्र बुद्धि, इतनी दूरदृष्टि और सबसे ऊपर ऐसी निष्कलंक देश भक्ति—एक ही व्यक्तित्व में मिलना कितना दुर्लभ है यह आज के दिन फिर से स्मरण आता है। उस कर्मयोगी की खोज में दृष्टि घूमती है जब ७ जुलाई को डा० मुकर्जी का जन्म दिवस आता है। कई बार मन सोचता है कि मृत्यु के बाद जन्म तो होता ही है, क्या उस दिव्यात्मा ने फिर जन्म न लिया होगा ?

दूरदर्शी नेता—स्व० डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी

○

भक्त रामशरणदास—पिलखुवा

प्रत्येक देश के सम्मुख समय-समय पर संकट उपस्थित होते हैं। उन संकटों से मुक्ति के लिए, देश व उसकी अखण्डता की सुरक्षा के लिए कुछ नरपुंगव अपना सर्वस्व राष्ट्र पर समर्पित करके उन संकटों से राष्ट्र को त्रास दिलाते हैं। उसी प्रकार डा० मुखर्जी ने शेख अब्दुल्ला एवं पाकिस्तान के कश्मीर को भारत से अलग करने के षड्यन्त्र का पर्दाफाश किया, अपना जीवन देकर। वह राष्ट्रधर्म पर बलि होने वाले देवों की परम्परा की एक कड़ी ही थे।

डा० मुखर्जी को धर्म, संस्कृति एवं राष्ट्र प्रेम की भावनाएँ उत्तराधिकार में अपने वंश से ही प्राप्त हुईं। उन्हें बालकपन में ही धर्ममय वातावरण में रहने, एवं धर्म के लिए सर्वस्व निछावर कर देने की प्रेरणा मिली। इसी प्रेरणा ने उन्हें बड़े-से-बड़े पद पर रहने के बाद भी धर्म के प्रति अनास्था का भाव उत्पन्न नहीं होने दिया। मन्त्रि-मण्डल में रहने व बाद में राजनीति में संलग्न रहने पर भी उन्होंने कभी अपनी कुलदेवी माँ दुर्गा को विस्मृत नहीं किया तथा बचपन के संस्कारों के कारण ही बलिदान से कुछ समय पूर्व तक वह श्रीनगर की जेल में दुर्गासप्तशती का नियमित पाठ करते रहे।

जन्मजात प्रतिभाशाली श्री श्यामाप्रसाद जी केवल ३३ वर्ष की आयु में ही सन् १९३४ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति नियुक्त हुए। उपकुलपति के पद से दीक्षान्त भाषण करते हुए भी उन्होंने स्पष्ट कहा था—"युवकों को शैक्षणिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक व नैतिक शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए। धार्मिक शिक्षा के अभाव में उनमें उच्छृंखलता पनप सकती है, जिसका परिणाम अनुशासनहीनता के रूप में सामने आएगा।"

डा० मुखर्जी हिन्दू संस्कृति के सम्बन्ध में भ्रान्त धारणा के शिकार नहीं थे। इसीलिए उन्होंने कभी भी न हिन्दू मुस्लिम संस्कृति को एक बताया और न मुसलमानों को "मोहम्मदी हिन्दू" की संज्ञा दी। उन्होंने हिन्दू-संस्कृति के प्रमुख तत्त्वों का विवेचन करते हुए 'पुनर्जन्म का दर्शन' हिन्दू-संस्कृति का

प्रमुख तत्त्व माना था। उनका कहना था कि "भारत में विभिन्न सम्प्रदाय रहते हैं तथा जो भी पुनर्जन्म के दर्शन, भारतीय रीतिरिवाजों व धार्मिक मान्यताओं में विश्वास रखता है वही हिन्दू है।" उन्होंने बौद्ध धर्म को हिन्दू-धर्म का अभिन्न अंग बताते हुए स्पष्ट कहा था—"भगवान बुद्ध ने भारत की पवित्र भूमि में जन्म लेकर बौद्ध धर्म की स्थापना की, अतः बौद्ध जन्मजात हिन्दू है।"

सन् १६३७ में मुसलमानों में अलगाव की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही थी। कांग्रेस ने इस सम्बन्ध में तुष्टीकरण की नीति को अपना लिया। दूरदर्शी नेताओं को इसका परिणाम भयंकर जँचा। उन्हीं दिनों वीर सावरकर ने अपनी रत्नागिरी की नज़रबन्दी की मुक्तता के बाद मुस्लिम तुष्टीकरण की आत्म-घाती नीति से देश व धर्म की रक्षा के लिए हिन्दू-महासभा को प्रबल बनाने का निश्चय किया। कलकत्ता में श्री एन० सी० चटर्जी के निवास स्थान पर श्री श्यामाप्रसाद जी ने वीर सावरकर से भेंट की और कुछ देर की वार्त्ता में ही इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने हिन्दू-महासभा में सक्रिय कार्य करने का व्रत लिया।

हिन्दू-महासभा के कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में उन्होंने देश में राष्ट्रीय भावनाएँ जागृत करने में भारी सफलता प्राप्त की। भारत विभाजन से वर्षों पूर्व उन्होंने एक दिन हिन्दू-महासभा भवन में मुझसे कहा था—"भारत को खण्ड-खण्ड करने की तैयारियाँ की जा रही हैं। यदि हिन्दुओं ने तुरन्त संगठित होकर इस षड्यन्त्र का प्रबल विरोध नहीं किया तो देश खण्डित हो जाएगा।" उन्होंने स्पष्टतः अनेक उच्च-नेताओं के नाम भी बताये जो देश पर शासन करने के लिए इतने उतावले थे कि हर प्रकार का समझौता करने को तत्पर थे।

सन् १६४० में पूर्वी बंगाल में हजारों-लाखों हिन्दू "फिरकापरस्ती" के शिकार हुए तो डा० मुखर्जी उनकी रक्षा के लिए मैदान में आए और उन्होंने ढाका, चटगाँव आदि स्थानों पर पहुंच कर पीड़ित हिन्दुओं में साहस का संचार किया।

डा० मुखर्जी फजलुलहक मंत्रिमण्डल में वित्तमन्त्री रहे अथवा केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में रहे, किन्तु हिन्दुत्व की रक्षा की भावना से उन्होंने कार्य किया। हक मन्त्रिमण्डल में रहते समय जब भागलपुर के हिन्दू-महासभा अधिवेशन पर रोक लगाई गई तो उन्होंने निर्भीकतापूर्वक उस प्रतिबन्ध को तोड़कर अन्य हिन्दू महासभाई नेताओं के साथ अपने को गिरफ्तार कराया।

मैं प्रायः हिन्दू महासभा भवन में देवतास्वरूप भाई परमानन्द एवं वीर सावरकर से भेंट करने के लिए जाया करता था। भाई जी की मुझ पर असीम कृपा थी और मेरी उनके प्रति अटूट श्रद्धा। एक दिन भाई जी ने मुखर्जी से मेरा परिचय देते हुए कहा—"यह भक्त रामशरणदास हैं। इन्होंने गांधी-नेहरू एण्ड कम्पनी के विरुद्ध लेखों द्वारा प्रचार अभियान छेड़ा हुआ है।" सुनते ही मुखर्जी बड़े प्रेम से बोले—"आज ही तो मैं आपका "हिन्दू" में "गांधीजी औरंगज़ेब के अवतार" लेख पढ़ रहा था। वास्तव में गांधी नेहरू की मुस्लिम-परस्ती का भंडाफोड़ करने की नितान्त आवश्यकता है।" मैंने देखा कि डाक्टर साहब गांधी एवं नेहरू की नीति के कटु आलोचक थे।

उसके बाद तो उनसे मेरी अत्यन्त घनिष्ठता हो गई थी। वह जब भी मिलते कहते—"कांग्रेसी नेताओं की मुस्लिमपरस्ती का कड़ा विरोध किया जाना चाहिए।"

"मूसल-मान"

एक बार कुछ मुस्लिम-पत्रों ने भाई परमानन्द जी एवं मुखर्जी के विरुद्ध विषवमन किया। अचानक जैसे ही मैं हिन्दू-सभा भवन पहुँचा कि डाक्टर साहब वहाँ उपस्थित थे। देखते ही बोले—"हम तो आपको स्मरण कर रहे थे।" उन्होंने उर्दू पत्रों के कटिंग दिये तथा बोले—"इनका उत्तर इनकी ही कटु शैली में आपको देना है।" फिर हँसकर बोले—"ये मूसल-मान हैं तथा मूसल से ही मानते हैं। अतः इन्हें उत्तर कटु-से-कटु दिया जाना चाहिए।"

नेहरू एवं गांधी की नीति के, वे जीवन के अन्तिम क्षणों तक कटु आलोचक रहे। उन्होंने अनेक बार स्पष्ट कहा था कि "स्वाधीनता, मातृ-भूमि पर बलिदान होने वाले असंख्य हुतात्माओं, स्वातन्त्र्य वीर सावरकर, नेताजी सुभाष जैसे क्रान्तिवीरों के तप-त्याग के बल पर ली गई है। गांधी-नेहरू के चर्खे तकली से मिली नहीं।" उन्होंने गांधी-नेहरू की नीति को 'कायर नीति' की भी संज्ञा दी। वह आधुनिक नेताओं की तरह नेहरू के चापलूस भी नहीं रहे तथा सदैव उसकी दुर्नीतियों का विरोध ही करते रहे।

भारत में होने वाले सांप्रदायिक दंगों एवं पाकिस्तान के हिन्दुओं को भगाये जाने की समस्या के विकल्प के रूप में उन्होंने स्वयं 'जनसंख्या विनिमय' का भी समर्थन किया था। शेख अब्दुल्ला की राष्ट्रद्रोही गतिविधियों का भी सबसे पहले उन्होंने ही पर्दाफाश किया था।

राष्ट्र-पुरुष डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी

○

एक संस्मरण : रामनिवास भारतीय

फरवरी १६४४ को देहली में डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के सभापतित्व में सार्वदेशिक विश्व आर्य सम्मेलन हुआ था। यह सम्मेलन लाहौर की मुस्लिम-लीग के द्वारा पाकिस्तान की माँग के विरोध-स्वरूप बुलाया गया था। इस सम्मेलन में भारतवर्ष के अतिरिक्त विदेशों से भी हजारों आर्य हिन्दू सम्मिलित हुए थे। इन पंक्तियों का लेखक भी एक प्रतिनिधि के रूप में उक्त सम्मेलन में शरीक हुआ था। सम्मेलन में उच्च कोटि के संन्यासी महात्माओं से लेकर देश के गणमान्य नेता भी थे।

प्रातः स्मरणीय डा० मुखर्जी ने जब अपना भाषण प्रारम्भ किया तो जो पहला शब्द वे बोले वह इस प्रकार था, हिन्दी बोल नहीं मंगता बंगला बोल मंगता, इंगलिश बोल मंगता, (ये शब्द शब्दशः मेरी डायरी में लिखे हुए थे किन्तु डायरी मिली नहीं। फिर भी मेरी याददाश्त के अनुसार डा० साहब उक्त शब्द ही बोले थे) डा० साहब हिन्दी में इतना भी नहीं बोल सकते थे कि, मैं हिन्दी में नहीं बोल सकता, इंग्लिश व बंगला में बोल सकता हूँ। माननीय घनश्याम सिंह जी गुप्त, जो सार्वदेशिक सभा के अध्यक्ष थे, ने कहा कि डा० साहब हिन्दी में नहीं बोल सकते। अंग्रेजी में बोलेंगे। तो पंडाल में से बहुत से लोग चिल्लाये कि बंगला में बोलो। श्रद्धेय पंडित इन्द्र जी ने खड़े होकर लोगों को समझाया कि, यहाँ पर पंडाल में और पंडाल के बाहर करीब करीब २ लाख का जन-समुदाय है। डा० साहब को अंग्रेजी में बोलने देवें। श्री देश पाँडे साहब या दूसरा कोई भी हिन्दी में शब्दशः अनुवाद कर देंगे। लोग मान गये और डा० साहब २-२॥ घन्टे अंग्रेजी में बोले। मैंने जीवन में ऐसा प्रभावशाली भाषण पहले कभी नहीं सुना था। यह बात सन् १६४४ की, फरवरी माह की थी।

सात वर्ष बाद—सन् १६५२ में देश के आम चुनाव के सिलसिले में जनसंघ के अध्यक्ष के रूप में सन् १६५१ के अन्त में डा० मुखर्जी इन्दौर पधारे। इस बार डा० साहब के दो भाषण मैंने सुने, एक मल्हारगंज जिन्सी में

व दूसरा छत्रीबाग में। दोनों भाषण डा० साहब के शुद्ध हिन्दी में हुए। मुझको भाषण सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी हुआ कि जो महा मानव आज से सात वर्ष पूर्व हिन्दी का एक शब्द भी शुद्ध नहीं बोल सकता था वह हजारों आदमियों की विशाल आम सभा में बेधड़क हिन्दी में भाषण दे रहा है। १९६२ में संसद में श्रद्धेय महामहिम राष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन अंग्रेजी में बोले और श्री रामसेवक यादव व दूसरे सज्जन विरोध स्वरूप संसद से बाहर आ गए व समाचार-पत्रों में राष्ट्रपति के भाषण के विरोध में इस प्रकार के बहिर्गमन को अनुचित बतलाया गया तो बरबस मुझे उस राष्ट्र पुरुष की याद आ गई और सोचा कि यह भी थोड़े से प्रयत्न से करोड़ों लोगों की भावना को उसी प्रकार जीत सकते थे जिस प्रकार स्वर्गीय डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने जीता था। ●

भावाँजलि एवं कृतज्ञताज्ञापन

अपनी पूर्वयोजना एवं घोषणा के अनुसार 'शाश्वत वाणी' का यह अंक "डाक्टर मुखर्जी अंक" के रूप में प्रस्तुत करते हुए हम हर्षान्वित हैं और हमें आशा है कि हमारे पाठक भी इससे लाभान्वित होंगे।

समय की आवश्यकता

भारत के जन-जन में यह भ्रान्ति प्रसारित हो गई थी कि वर्तमानयुग नेहरू युग के नाम से प्रख्यात होगा। इस भ्रान्ति के लिये गाँधी के थोथे आश्वासन एवं उसका नेहरू पर विश्वास व्यक्त करने का आग्रह, काँग्रेस की सारी मशीनरी, शासनतन्त्र का अनुचित उपयोग और सर्वाधिक अंशों में भारतीयों का भोलापन उत्तरदायी है। किन्तु प्रसन्नता का विषय है कि इतना प्रबल सम्बल प्राप्त होने पर भी नेहरू के पार्थिव शरीर के साथ ही उसकी ख्याति भी समाधिस्थ हो गई है और भारतवासियों की भ्रान्ति बहुत कुछ तो दूर हो गई है, अवशिष्ट भी शीघ्र ही समाप्त हो जावेगी।

उस तथाकथित युग-पुरुष के प्रतिबिम्ब (इमेज) को पराभूत करने में जिसका परिश्रम प्रतिफलित हुआ है, आज उसकी प्रशंसा का पल सम्मुख समुपस्थित है। कुछ लोगों की यह धारणा थी कि सरदार पटेल ने उस प्रतिबिम्ब को तोड़ने में सहायता की। कुछ ही अंशों में यह बात स्वीकारी जा सकती है। अन्यथा आज तक भी कश्मीर की जो स्थिति हमारे सम्मुख है उसे देखते हुए यही कहना पड़ेगा कि सरदार पटेल ने भी नेहरू से मात ही खाई है। हाँ, इतना अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि यदि वे कुछ और वर्ष तक जीवित रहते तो सम्भवतया स्थिति में परिवर्तन होता। तदपि अनुमान तो अनुमान ही है, उसे प्रामाणिकता प्रदान नहीं की जा सकती।

जनरल कौल, श्री श्रीप्रकाश, दादा गाडगिल, बाबू सम्पूर्णानन्द, पत्रकार मनकेकर ने अपनी-अपनी विभिन्न कृतियों के माध्यम से नेहरू की खामियों पर बहुत कुछ प्रकाश डाला है। किन्तु वह भी नेहरू के मरणोपरान्त ही। उसके जीवनकाल में तो वे भी सब उसके मुख पर मुस्कान देखने के लिये नौटंकी के नचनुओं की भाँति बेताल, बेस्वर नर्तन करने वाले ही सिद्ध हुए हैं। किसी को भी तो न मुँह खोलने का साहस हुआ और न लेखनी उठाने का। बाबू सम्पूर्णानन्द ने इसके समाधान के लिए जो उदाहरण प्रस्तुत किया है वह चुटकुले

की भाँति रोचकता का ग्राभास मात्र करा सकता है किन्तु उसे समाधान समझना समीचीन नहीं। उनका कहना है कि स्टालिन के मरणोपरान्त निकिता ख्रुश्चेव जब रूस में शासनाधिकारी हुग्रा तो बीसवीं पार्टी काँग्रेस में एक दिन स्टालिन को ग्रालोचना ग्रौर भर्त्सना करने लगा। तभी किसी कोने से एक ग्रावाज ग्राई "किन्तु स्टालिनकी जीवितावस्था में ग्रापने इन सब बातों पर प्रकाश क्यों नहीं डाला, तब ग्राप मौन क्यों रहे ?" ख्रुश्चेव ने तुरन्त कहा—"ये प्रश्न करने वाले सज्जन कौन हैं, जरा खड़े होकर ग्रपना मुखड़ा तो दिखायें ?" किन्तु चारों ग्रोर मौन ग्रौर स्तब्धता छा गई। कहीं कोई न तो स्वर सुनाई दिया ग्रौर न ही किसी का सिर उठता दिखाई दिया। गर्वोन्नत ख्रुश्चेव ने तब कहा, "यही मेरा उत्तर है।" ग्रर्थात् सर्वोच्च शासनाधिकारी के सम्मुख उसके विरुद्ध स्वर संधान करना स्वयं को समाप्त करना है। यही स्थिति नेहरू के मरणोपरान्त मर्द बनने वाले इन मर्दुग्रों की है।

ग्राशा की किरण

इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में हमें यदि कहीं कोई ग्राशा की किरण दिखाई देती है तो वह डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के रूप में। डाक्टर साहब ने नेहरू के उस देशघातक प्रतिबिम्ब को पराभूत करने में ग्रदम्य साहस का प्रदर्शन किया। समस्त देशवासी ग्राशान्वित हो उठे। मानो चातक को स्वाति की बूँद उपलब्ध हो गई हो।

ग्राज शासनतन्त्र एवं काँग्रेस संस्था के कठोर परिश्रम तथा नेहरू की बेटी, देवी इन्दिरा, के उचितानुचित सभी प्रकार के प्रयास करने के उपरान्त भी जिस प्रकार राजधानी एवं देश के विभिन्न प्रमुख स्थानों से विदेशी शासकों तथा हीरोज़ के बुत हटते जा रहे हैं, उसी प्रकार भारतीयों के मन से नेहरू का बुत हटता जा रहा है। ग्रठारह वर्ष तक शासनतन्त्र में हिटलर की भाँति छाये रहने का प्रतिफल प्राप्त हो रहा है। यदि डाक्टर साहब ने देशोद्धार का यह बीड़ा न उठाया होता तो बहुत कुछ तो नेहरू के जीवनकाल में ही यह देश दुर्दशा के दुर्दान्त दल-दल में धँस गया होता ग्रौर ग्रवशिष्ट कमी की पूर्ति करने में उसकी पुत्री कोई कसर न छोड़ती।

ग्राज देशवासी कांग्रेस एवं कांग्रेसियों से जिस ग्रंश में भी पराङ्मुख हुए हैं ग्रथवा होते जा रहे हैं उसका सारा श्रेय डाक्टर मुखर्जी के प्रारम्भिक प्रयत्नों को है। इसके लिए देशवासी उनके चिरकृतज्ञ ग्रौर ऋणी रहेंगे। किन्तु नियति को प्रसन्न करने का प्रयत्न ग्रभी भी कदाचित् पूर्ण नहीं हो पाया है। ग्रभी पूर्वजन्मरूपी पापों का प्रतिफल भोगना इस देश के प्राणियों के लिये ग्रव-

शिष्ट ही था। इसलिए तो नियति ने नेहरू रूपी शासनतन्त्र के साधन से डाक्टर साहब को हमसे छीन लिया। असुर एवं आसुरी प्रवृत्ति की एक बार पुनः विजय हुई। किन्तु डाक्टर साहब ने जिस कार्य को करने का बीड़ा उठाया था उसे पूर्ण करने का प्रण आज देशवासी उठाने लगे हैं और हमें आशा है कि स्वर्गीय डाक्टर साहब का स्वप्न शीघ्र ही अवश्य साकार होकर रहेगा। उस स्वर्गीय युग-पुरुष के स्वप्न को साकार करने के लिए कर्मरत कार्यकर्ताओं का उत्साह वर्द्धन करना हम सभी का पुनीत कर्तव्य है और उसी कड़ी में अपनी श्रद्धांजलि स्वरूप यह विशेषांक भी समर्पित है।

कृतज्ञता और आभार प्रदर्शन :

इस विशेषांक के मुख्य लेखकों में 'शाश्वत वाणी' के संरक्षक वैद्य श्री गुरुदत्त जी के विषय में पाठकों को कुछ परिचय देने की हम आवश्यकता नहीं समझते। आठ वर्ष से निरन्तर वे उनकी अमृतवर्षिणी लेखनी का सुधारस पान कराते आ रहे हैं।

श्री बलराज मधोक भी अब किसी के लिये अपरिचित नहीं रहे। राष्ट्रीय ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी वे पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी के निकटतम सहयोगी होने का सौभाग्य उन्हें सुलभ रहा है। हिन्दी तथा अंग्रेजी में उन्होंने डाक्टर साहब के जीवन चरित्र का चित्रण किया है। हिन्दुत्वनिष्ठ नेताओं में उनका स्थान अग्रणी है। सम्प्रति वे संसद के सदस्य हैं। डाक्टर मुखर्जी के गोलोक-गमन के उपरान्त प्रथमबार उप-निर्वाचन में विजयी हो कर जब श्री मधोक लोक सभा में पहुँचे तो उस समय की उनकी उपलब्धियाँ डाक्टर साहब से कम नहीं गिनी जा सकतीं। वे दूसरे व्यक्ति हैं जिन्होंने संसद की भरी सभाओं में नेहरू को अनेक बार ललकारा था। अखिल भारतीय जनसंघ के वे अध्यक्ष रह चुके हैं। विगत आम चुनाव में जनसंघ को सर्वत्र जो आशातीत सफलता मिली है उसका श्रेय उनके सफल एवं सबल नेतृत्व को ही है। हिन्दू समाज को उनसे बहुत आशायें हैं।

डा० भाई महावीर जी, पुण्यश्लोक, देवतास्वरूप स्वर्गीय भाई परमानन्द जी के सुयोग्य सुपुत्र हैं। सम्प्रति वे राजधानी के पी० जी० डी०ए० वी० कालेज के उपाचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के साथ-साथ दिल्ली से ही राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य हैं। दिल्ली प्रदेश जनसंघ के वे वर्तमान में अध्यक्ष हैं। समाज सेवा का भाव ही उन्हें पैतृक धरोहर के रूप में प्राप्त हुआ है। अन्यथा शहीदों के पास पुत्र को प्रदान करने के लिये भौतिक सम्पत्ति के रूप में रहता ही क्या है? पुण्यश्लोक भाई परमानन्द का बलिदान किसी भी प्रच-

लित बलिदानी से किन्हीं अंशों में कम नहीं अपितु सर्वाधिक है।

अपने नितान्त व्यस्त एवं अमूल्य क्षणों में से कुछ समय बचा कर हमारे आग्रह को स्वीकार करते हुए कर्मयोगी के रूप में डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी का जो चित्रण भाई महावीर जी ने किया है उसके लिए शाश्वत वाणी' के पाठक ही नहीं अपितु समस्त हिन्दू समाज उनका आभारी रहेगा। यद्यपि 'शाश्वत वाणी' में यह उनका प्रथम लेख ही प्रकाशित हो रहा है किन्तु हमें विश्वास है कि भविष्य में भी हमारा उत्साह बढ़ाने में वे अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होंगे।

इस अंक के चौथे प्रमुख लेखक हैं श्री टेकचन्द जी शर्मा। शाश्वत वाणी में यह उनकी प्रथम रचना है। किन्तु हमें विश्वास है कि इस प्रथम लेख से ही वे पत्रिका के पाठकों के प्रिय पात्र बन जावेंगे। उनका संक्षिप्त परिचय हमने उनके लेख के प्रारम्भ में दिया है, स्थानाभाव के कारण अधिक कुछ लिखना सम्भव नहीं।

इस प्रकार उपरिवर्णित चारों प्रमुख लेखकों से, जिनकी कि हम पिछले दो अंकों में घोषणा करते आये हैं, जो सहयोग हमें प्राप्त हुआ है उससे हमारे उत्साह में वृद्धि हुई है, इसके लिए हम उनके हृदय से कृतज्ञ एवं आभारी हैं।

अन्य अनेकों पाठकों ने भी अपनी श्रद्धाँजलि स्वरूप अनेक लेख भेजे हैं। किन्तु उनमें से हम केवल भक्त रामशरण दास जी पिलखुआ निवासी, जिनका जीवन ही हिन्दू समाज की सेवा में समर्पित है, तथा डा० सतीश कुमार आहूजा, सहारनपुर निवासी और श्री राम निवास भारतीय, इन्दौर निवासी के संस्मरण यहाँ प्रकाशित कर पा रहे हैं। स्थानाभाव के कारण अधिक कुछ प्रकाशित करना सम्भव नहीं हो सका। इन तीनों महानुभावों के भी हम आभारी हैं। साथ ही उन सबके हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस अंक को सफल बनाने में हमें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष किसी प्रकार का भी सहयोग दिया है।

शुभारम्भ की सूचना

हमारे पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि आगामी अंक से शाश्वत वाणी में वैदिक विद्वान, प्रकाण्ड पण्डित, रिसर्च स्कालर श्री पं० भगवद्दत्त जी की वेदों की व्याख्या से सम्बन्धित (अर्थात् वेदों का अर्थ एवं व्याख्या की विधि बताने वाली) "वेदार्थ प्रदीपिका" नामक लेख माला प्रारम्भ की जा रही है। यह लेखमाला लगभग १०-१२ अंकों में परिपूर्ण होगी। इससे वेदों में इतिहास एवं गल्प ढूंढ़ने की दुष्प्रवृत्ति रुकेगी और वेद मन्त्रों के वास्तविक अर्थों को जानने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलेगा। वेदानुरागी, समस्त हिन्दू समाज पण्डित जी के इस मार्ग दर्शन के लिए उनका चिर ऋणी रहेगा।

आपका पुस्तकालय और हमारा सहयोग

१. हमारी पुस्तकालय योजना के सदस्य बनिये। केवल दो रुपये मनी-आर्डर द्वारा भेजकर आप हमारे सदस्य बन सकते हैं।

२. हमारी नटराज पाकेट बुक्स में से आप अपनी पसन्द की १५ रुपये की चुनी हुई पुस्तकें मंगवाइये और हम केवल १३ रुपये में ये पुस्तकें आपको भेजेंगे। डाक व्यय लगभग दो रुपये हम देंगे। इसके साथ ही—

३. एक लोहे की तार का बना हुआ सुन्दर रैक जिसमें आप अपनी पुस्तकें लगा सकते हैं. बिना मूल्य हम अपनी ओर से आपको भेंट में देंगे।

४. प्रति दो मास बाद जब हमारी नयी पुस्तकें प्रकाशित होंगीं, हम आपको सूचना भेजेंगे। तथा आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें सात रुपये में आपको भेजी जायंगी। यदि नवीन प्रकाशनों में से कोई पुस्तक आप नहीं लेना चाहेंगे तो आप उसके स्थान पर कोई अन्य उसी मूल्य की पुस्तक मंगवा सकेंगे।

५. बीच की अवधि में कभी भी आप आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें केवल सात रुपये में मंगवा सकेंगे।

भारती साहित्य सदन,

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

शाश्वत संस्कृति परिषद् के प्रकाशन

१. धर्म संस्कृति तथा राज्य — श्री गुरुदत्त — ८.००

२. धर्म तथा समाजवाद

सजिल्द पुस्तकालय संस्करण — ६.००

पाकेट (सम्पूर्ण) — ३.००

आगामी प्रकाशन

१५ अगस्त १९६८ तक प्रकाशित होंगे।

१. श्रीमद्भगवद्गीता—एक अध्ययन

अनुपम विवेचनात्मक ग्रन्थ, विषयानुसार अत्यन्त ही सरल विवेचनायुक्त — १२.००

२. भारत—नेहरू गांधी की साया में

(जवाहरलाल नेहरू—एक विवेचनात्मक वृत्त का संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण) — १०.००

प्राप्ति स्थान

भारती साहित्य सदन

बिक्री विभाग

३०/९० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

(मद्रास होटल के नीचे)

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं राष्ट्र भारती प्रेस, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनॉट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

अगस्त, १९६८ वर्ष ८—अंक ८ रजि० क्र० ६६८९/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

कुछ विशेष प्रचारित साहित्य

भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ भाग—१	ले० श्री सावरकर		२.५०
भाग—२	,,		२.५०
१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर	,,		१८.००
हिन्दू पद पादशाही	,,		६.५०
हिन्दुत्व	,,		३.५०
मोपला (उपन्यास)	,,		४.००
गोमान्तक ,,	,,		४.००
मोपला-गोमान्तक संयुक्त पाकेट संस्करण (सम्पूर्ण)	,,		३.००
अमर सेनानी सावरकर : जीवन झांकी	ले० शिवकुमार गोयल		२.५०
भारत और संसार	श्री बलराज मधोक		५.००
भारत की सुरक्षा	,,		४.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	,,		६.००
अन्तिम यात्रा	श्री गुरुदत्त	सजिल्द	२.००
अन्तिम यात्रा	,,	पाकेट संस्करण	१.००
धर्म संस्कृति और राज्य	,,		८.००
धर्म तथा समाजवाद—	,,	सजिल्द संस्करण	६.००
धर्म तथा समाजवाद—	,,	पाकेट संस्करण	३.००
देश की हत्या (उपन्यास)	,,	सजिल्द	६.००
देश की हत्या	,,	पाकेट संस्करण	३.००
जमाना बदल गया	,,	सजिल्द ४ भाग	४०.००
जमाना बदल गया	,,	पाकेट ९ भाग	२०.००
मेरे अन्त समय का आश्रय : श्रीमद्भगवद्गीता	भाई परमानन्द		५.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ता कुमार	सजिल्द	३.००
धरती है बलिदान की	,,	पाकेट संस्करण	१.००
हिमालय पर लाल छाया	,,		१२.००
शक्तिपुत्र शिवाजी	श्री सीताराम गोयल		१.५०

विशेष—पाकेट संस्करण संक्षिप्त नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण हैं। आर्डर भेजते समय स्पष्ट लिखें कौन से संस्करण की पुस्तक भेजी जाये।

भारती साहित्य सदन

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३.३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
पं० भगवद्दत्त
प्रा० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७-एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

साम्प्रदायिकता और भारत सरकार

श्रीनगर की राष्ट्रीय एकता परिषद

गत मास श्रीनगर (कश्मीर) में भारत सरकार ने एक सर्वदलीय राष्ट्रीय एकता परिषद नामक अधिवेशन आमन्त्रित किया था। इस अधिवेशन में साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के उपायों पर विचार-विनिमय (साथ ही परस्पर आक्षेप एवं प्रत्याक्षेप भी) किया गया।

इस अधिवेशन का जो विवरण समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है, उसमें दो बातों का अभाव दिखाई देता है। प्रथम एवं मुख्य अभाव यह है कि साम्प्रदायिकता के लक्षण स्पष्ट नहीं किए गये। अर्थात जिस साम्प्रदायिकता को समाप्त करने का प्रयास किया जावेगा, वह एक अरूप एवं अमूर्त वस्तु है, उसकी रूप-रेखा स्पष्ट नहीं। हवा में लट्ठ मारना इसी को कहते हैं। हमारा विचार था कि कोई बुद्धिमान इस अधिवेशन के आरम्भ में साम्प्रदायिकता की परिभाषा के विषय में प्रश्न प्रस्तुत करेगा। किन्तु ऐसा बुद्धिमान् शायद वहाँ पहुँचा ही नहीं। सरकारी पक्ष ने भी कदा-

चित इसका औचित्य नहीं समझा । और साम्प्रदायिकता का लक्षण स्पष्ट किये बिना ही जब कानून बनेगा और उसमें दण्ड का विधान होगा तो निश्चय ही यदि कोई निरपराध व्यक्ति उस कानून की लाठी की परिधि में आ गया तो वह भी पिट जायेगा ।

दूसरी बात यह है कि इस साम्प्रदायिकता का सिर फोड़ने की आखिर हमारी सरकार को आवश्यकता क्यों आन पड़ी ? इस आवश्यकता को भी स्पष्ट नहीं किया गया है । कहीं-कहीं यह सुनने में आता है कि राष्ट्रीय एकता के लिए साम्प्रदायिकता को कुचलना आवश्यक है । परन्तु वह राष्ट्रीय ऐक्य क्या है ? उसकी रक्षा के लिये तो, यदि हम भूल नहीं कर रहे हैं, एक कानून गत वर्ष भी बनाया गया था । उसका प्रयोग क्यों नहीं किया जाता ? नया कानून बनाने की क्या आवश्यकता है ?

हमारा यह सुनिश्चित मत है कि वर्तमान सरकार मूर्ख और धूर्त जनों के संयोग से गठित एक टोला मात्र है । धूर्त लोग जनता को धोखा देकर सरकार गठन के लिए उनके मत प्राप्त करते हैं और मूर्ख लोग मन्त्रि-मण्डल का गठन कर उन धूर्तों के खाने-पीने का प्रबन्ध करते हैं । इस अधिवेशन में यही दो प्रकार के लोग अर्थात मूर्ख और धूर्त सम्मिलित हुए थे । धूर्तों का वहाँ जाने का उद्देश्य यह था कि कुछ राज्यों में होने वाले आगामी मध्यावधि चुनावों में भोली-भाली जनता को गुमराह कर काँग्रेस के पक्ष में मत प्राप्त किए जाएँ और जो अपना समय, धन और शक्ति का व्यय कर वहाँ जाकर उन धूर्तों के प्रचार कार्य में सहायक हो गये, उन्हें हम मूर्खों की संज्ञा देंगे ।

वास्तविक समस्या क्या है ?

समस्या यह है कि हिन्दू-मुसलमानों में पुन: जोरों से झगड़े हो रहे हैं। ये झगड़े कैसे आरम्भ होते हैं यह कोई नहीं जानता । न ही सरकार की ओर से ही इनके आरम्भ होने का कारण या स्रोत घोषित किया जाता है । कभी किसी झगड़े में न्यायिक जांच करवाई भी जाती है, तो उस जांच की रिपोर्ट को प्रकाशित नहीं कराया जाता । प्रधान मन्त्री अथवा कोई अन्य मन्त्री इस संदर्भ में कुछ वक्तव्य देकर फतवा दे देता है कि अमुक सम्प्रदाय उत्तरदायी है और बाद में ऐसे वक्तव्यों का प्राय: खण्डन हो जाता है ।

बात भी ठीक है । कोई भी मन्त्री, भले ही वह प्रधान मन्त्री ही क्यों न हो, न्यायाधीश का स्थानापन्न नहीं हो सकता । नेहरू सरकार और नेहरू के उत्तराधिकारियों की सरकार के मन्त्रियों के मस्तिष्क में यह बात घुस गई है कि वे शासक हैं, विधेयक हैं, न्यायकर्ता हैं और शिक्षक भी हैं । यह घातक

प्रवृत्ति भारत में चल गई है और उसका परिणाम यह हो रहा है कि देश में कुशासन चलने लगा है। जहाँ शासक, विधेयक और न्यायकर्ता एक होंगे, वहाँ न शासन रहेगा, न कोई श्रेष्ठ कानून (धर्म) रह सकेगा और न ही उस देश में न्याय देखने को मिलेगा।

वास्तविक समस्या यह है कि देश में कुशासन है, कुशिक्षा है, गलत कानून बन रहे हैं और न्याय नाम की कोई वस्तु रही ही नहीं।

इस मूर्ख राज्य की समस्या यह है कि किसी भी विषय में इसका स्पष्ट मत नहीं है, परन्तु सब कुछ करना यह अपना अधिकार मानता है। तनिक विधेयकों की योग्यता देखिये। साम्प्रदायिकता के विषय में एक कानून दण्ड विधान में पहले ही है। यह है दण्ड विधान की धारा १५३-ए। तनिक इस धारा का अध्ययन करिए तो आपको पता चलेगा कि यह धारा साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिए नहीं बनाई गई, वरं इसका उद्देश्य है एक सम्प्रदाय की रक्षा करना और दूसरे का सिर फोड़ना। किस सम्प्रदाय की रक्षा होगी और किसका सिर फूटेगा, यह मन्त्री महोदय की इच्छा पर होगा।

हम इस धारा की व्याख्या करना चाहते हैं। धारा इस प्रकार है :—

जो कोई—

(अ) बोलकर अथवा लिखकर, संकेतों से अथवा प्रदर्शन से अथवा किसी अन्य प्रकार से मज़हबी, वंशीय, भाषाई, जातीय समुदायों के अथवा किसी भी अन्य आधार पर द्वेष का अथवा घृणा का भाव भिन्न-भिन्न मज़हबी, वंशीय, भाषाई, गुटों अथवा जातियों और समुदायों में उत्पन्न करता है अथवा करने का यत्न करता है ;

अथवा

(ब) ऐसा कार्य करता है जो विभिन्न मज़हबी, जातीय, भाषाई, गुटों अथवा जातियों और समुदायों की एकमयता में बाधक है अथवा जिससे समाज में शान्ति भंग होती है अथवा होने की सम्भावना है ;

वह तीन वर्ष की कैद के दण्ड का भागी होगा अथवा उसे जुर्माना होगा, अथवा दोनों हो सकेंगे।

हमारा यह कहना है कि यह अन्धे के हाथ में उस लाठी के समान है जो विरोधियों पर ही चलती है, अपनों पर नहीं चलती।

मान लीजिए, एक व्यक्ति मद्रास में रहता हुआ हिन्दी भाषा की प्रशंसा करता है। वह वहाँ पर समाज की शान्ति भंग करने वाला हो जाएगा।

किसी कारण से, (जो कारण उस हिन्दी प्रशंसक की करनी से उत्पन्न नहीं हुआ) वहाँ के लोग हिन्दी से घृणा करते हैं। अतः मद्रास के लोगों को समझाने के लिए यदि कोई बोलकर अथवा लिखकर यह कहे कि हिन्दी बहुत अच्छी भाषा है तो इस धारा के अनुसार वह अपराधी है और यदि कोई न्यायाधीश उस व्यक्ति को तीन वर्ष का दण्ड दे तो वह विधान सम्मत ही होगा।

अंजील में एक स्थान पर हज़रत ईसा कहते हैं :—

"All that came before are thieves and robbers, (Bible John. 10-8)

"वे सब जो मुझसे पहले अवतरित हुए, चोर और डाकू थे।"

गीता का प्रशंसक यदि कहता है कि भगवान् कृष्ण ईसा से पहले हुए हैं। परन्तु हज़रत ईसा ने उन्हें चोर और डाकू कहा है। ईसा का कथन असत्य है अब इस प्रकार कहने वाला उक्त कानून द्वारा तीन वर्ष के दण्ड का भागी बन जाता है।

अनेकों ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं।

कुछ मुसलमान मिलकर यदि यह प्रार्थना कर दें कि आर्यसमाज मन्दिर में सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्हास का पाठ किया गया है। इसमें कुरान पर समीक्षा की गयी है और उससे मुसलमानों के प्रति द्वेष और घृणा फैलती है। तो आर्य समाज के उपदेशक को तीन वर्ष का दण्ड हो सकता है।

इसके साथ यह भी कहा जा सकता है कि मस्जिद में वाज़ करते हुए हज़रत उमर तथा अन्य अनेकों खलीफ़ाओं के फ़रमानों को दोहराया गया है। इससे यहूदियों और ईसाइयों के प्रति घृणा फैली है तो मुल्ला को भी पकड़ कर तीन वर्ष का दण्ड दिया जा सकता है।

आज काँग्रेस का राज्य है तो हिन्दुओं के पकड़े जाने की सम्भावना है। कल हिन्दुओं के पक्ष वालों का राज्य होगा तो मुसलमान और ईसाइयों को पकड़ कर दण्डित किया जा सकता है। मद्रास में हिन्दी विरोधियों का राज्य है। इस कारण हिन्दी का प्रचारक दण्डित हो सकता है और उत्तर प्रदेश में हिन्दी विरोधियों की पकड़-धकड़ हो सकती है।

साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के उपाय

हवा में लाठी चलाने वालों की श्रीनगर में कॉन्फ्रेन्स ने यह निश्चय किया है कि धारा १५३-ए को और अधिक सुदृढ़ किया जाये। ये बुद्धि के कोल्हू यह समझ बैठे हैं कि कानून को सख्त करने से अपराध कम हो जायेंगे। भला फाँसी का दण्ड-विधान होने के बाद हत्या के अपराध कम हो गये हैं?

ये पहले से अधिक ही हुए हैं।

कानून दूषित है। यह कानून बना था लाहौर में। 'रंगीला रसूल' नामक पुस्तक के प्रकाशित करने वाले के लाहौर हाई कोर्ट से छूट जाने पर यह बना था। रंगीला रसूल में क्या लिखा था, हम नहीं जानते। वह सत्य लिखा था अथवा झूठ लिखा था, यह भी हमें ज्ञात नहीं। इतना अवश्य है कि हाईकोर्ट ने उस व्यक्ति को छोड़ दिया था और छापने वाले की, किसी रसूल के भक्त ने हत्या कर दी थी।

इसपर सरकार ने यह कानून बना दिया कि ऐसा छापने वालों को एक वर्ष का दण्ड दिया जा सकता है। उसने सत्य लिखा है अथवा झूठ, इसके जानने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि कोई किसी को मार डालने के लिये तैयार है, इस कारण हत्या करने की धमकी देने वाला अपराधी नहीं, वरंच आहत अथवा मृत ही अपराधी है।

एक अन्य मुकद्दमा हमें स्मरण है। ईसाई यह प्रचार करते हैं कि कृष्ण और राधा में अनुचित सम्बन्ध था। इस कारण कृष्ण परमात्मा नहीं हो सकता। कांग्रेसी सरकार इस प्रकार प्रचार करने वाले को दण्डित नहीं कर सकती थी। किसी हिन्दू मनचले ने हज़रत ईसा के वाक्यों को छाप दिया। यह अंजील में ही लिखा है कि अंजील लिखने वाले जौन और मैथ्यू अच्छे व्यक्ति नहीं थे। बस फिर क्या था? उस लेखक पर मुकदमा हुआ। उस बेचारे ने बहुत सिर पटका कि उसने अपनी ओर से कुछ नहीं कहा। उसने तो वही कुछ लिखा है जो अंजील में दर्ज़ है, परन्तु कानून सत्य-झूठ के निर्णय के लिये नहीं बना। कुछ ईसाइयों ने कह दिया कि इस लेख को पढ़कर उनके दिल को बहुत दुःख हुआ है और जज महोदय ने उस व्यक्ति को सौ रुपये जुर्माना कर दिया। जज बेचारा भी विवश था। कानून ही ऐसा है।

हमारा यह कहना है कि कानून त्रुटि एवं दोष पूर्ण है। यह साम्प्रदायिकता दूर करने के लिये नहीं बना। साम्प्रदादिकता के वातावरण में जिस किसी को भी सरकार चाहे, उसको पकड़ कर दण्डित करने के लिये इसे बनाया गया है। दण्ड बढ़ाने से नहीं, वरंच कानून का आधार बदलने से लाभ हो सकता है।

क्या किसी सम्प्रदाय में होना अपराध है? क्या गांधी-वादी होना अपराध है? क्या कुरान-वादी होना अथवा वेद-वादी होना अपराध है? क्या हिन्दी अथवा अंग्रेजी के पक्ष में होना अपराध है? यदि नहीं तो किसी सम्प्रदाय को स्वीकार करना भी अपराध नहीं। जो व्यक्ति

किसी एक सम्प्रदाय को स्वीकार करेगा वह अन्य सब सम्प्रदायों को घटिया मानेगा । वह सबके सामने यह घोषणा करेगा ही कि अन्य सब सम्प्रदाय उसके सम्प्रदाय से घटिया हैं । संविधान में विचार स्वतन्त्रता के यही अर्थ हैं। इसको दूसरे सम्प्रदाय वाले, घृणा फैलाने वाली बात कह सकते हैं । परन्तु यह कोई दूषित बात नहीं । सबको अपने सम्प्रदाय की श्रेष्ठता सिद्ध कर दूसरे सम्प्रदायों से तुलना करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये ।

परन्तु साम्प्रदायिकता सम्प्रदाय से पृथक् बात है । साम्प्रदायिकता का अभिप्राय है अपने सम्प्रदाय की वृद्धि के लिए, तथा अपने व्यक्तिगत अथवा समष्टिगत (सम्प्रदाय) लाभ के लिए बल प्रयोग करना ।

एक बार श्री के० एम० मुन्शी के विद्या भवन से किसी अमरीकन पुस्तक का भारतीय संस्करण छपा था । उसमें हज़रत मुहम्मद साहब के विषय में कुछ लिखा था । मुसलमानों को इससे क्रोध आ गया । उन्होंने बलवे किये, कत्ल किये, दुकानें फूँक दीं । मुन्शी जी ने पुस्तक वापिस ले ली ।

हम पूछते हैं कि दण्ड विधान की धारा १५३ ए का दोषी विद्या भवन था अथवा वे लोग जिन्होंने बलवे इत्यादि किये थे ? जिन्होंने बलवे किये वे भी किसी धारा के अनुसार अपराधी तो थे, परन्तु पकड़े नहीं गये ।

एक प्रकाशक ने एक चित्र को, जो किसी प्रकार असुन्दर नहीं था, छाप कर उसके नीचे लिख दिया, "हज़रत मुहम्मद" । बस फिर क्या था ? कलकत्ता में बलवा हो गया । यहाँ भी साम्प्रदायिकता फैलाने के अपराधी बलवा करने वाले थे न कि वह सुन्दर चित्र बनवाने वाला ।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकता तब होती है, जब किसी सम्प्रदाय के लोग अपनी कथनी और व्यवहार से कानून अपने हाथ में लेने लगें । किसी सम्प्रदाय के गुण-दोष वर्णन करना, साम्प्रदायिकता नहीं।

साम्प्रदायिकता के अर्थ हैं कि किसी सम्प्रदाय के विस्तार अथवा प्रचार के लिये बल प्रयोग करना । जब तक विचार प्रसारित किये जाते हैं, तब तक वह सम्प्रदाय का प्रचार मात्र है । हाँ, किसी सम्प्रदाय के पक्ष-विपक्ष में झूठा प्रचार किया जाये, तब वह असत्य भाषण होने से दण्डनीय अपराध है । परन्तु पक्ष-विपक्ष के विषय में सत्य प्रचार यदि इस कारण दण्डनीय होता है कि किसी को उससे दुःख अथवा सुख होता है, तो यह अनर्थ होगा ।

क्या संसद सदस्य इस विषय में विचार करेंगे ? हमें आशा कम है । कारण यह कि संसद में कानून बनाने वाले न्याय-अन्याय का निर्णय करने वाले नहीं वरं 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ करने वाले हैं ।

कांग्रेस साम्प्रदायिकता की जननी—मोरारजी

अपने उद्भवकाल से आज पराभव काल पर्यन्त साम्प्रदायिकता और केवल विशुद्ध साम्प्रदायिकता की प्राणवायु (औक्सीजन) पर जीवित रहने वाली कांग्रेस के नवनिर्वाचित अध्यक्ष निजलिंगप्पा "साम्प्रदायिकता विशेषज्ञ" बनने के लिये प्रयत्नशील हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सुभद्रा के अभद्र निर्देशन में वे कोई शोधप्रबन्ध इस विषय पर तैयार कर रहे हैं ताकि गांधी-नेहरू विश्व विद्यालय से उपाधि ग्रहण कर डाक्टर निजलिंगप्पा कहला सकें। अन्यथा अध्यक्ष निर्वाचित होने के तुरन्त बाद जनसंघ पर साम्प्रदायिकता का प्रत्यारोपण करने की उतावली का कोई कारण नहीं था। उस प्रथम वक्तव्य से ही ऐसा आभास मिलता है कि वे इस प्रतीक्षा में थे कि कब अध्यक्ष निर्वाचित हों और कब साम्प्रदायिकता के लिए स्वर-संधान करें। अभी ७ जुलाई को मद्रास की एक आम सभा में उन्होंने अपनी उस कुत्सित मनोवृत्ति का पुनः परिचय दिया है। उधर दिल्ली के भीषण ताप से मुक्ति पाने के लिये श्रीनगर की सुरम्य-घाटी में निवास के बहाने देवी इन्दिरा ने अपनी सखी-सहेलियों की सहमति से राष्ट्रीय एकता परिषद के नाम से जो मेला लगाया, उसमें उनके ही सहायक तथा (डा०) निजलिंगप्पा से वरिष्ठ एवं श्रेष्ठतम कांग्रेसी भाई मोरारजी ने जो कहा, वह कुछ इस प्रकार है :—

जहां तक मुझे स्मरण है देश में १८६५ से पहले साम्प्रदायिक संघर्ष या साम्प्रदायिक दंगे नहीं हुए। कांग्रेस पार्टी बनने के बाद हिन्दू मुस्लिम दंगे आरम्भ हुए। ऐसा उनके आपसी मतभेद के कारण हुआ, लेकिन इसका लाभ ब्रिटिश सरकार ने उठाया।···अगर हम विभाजन को स्वीकार नहीं करते तो अंग्रेज अपने को बनाये रखते, क्योंकि हम मुसलमानों के लिए अलग मताधिकार स्वीकार कर चुके थे और वे हरिजनों को भी अलग मताधिकार देना चाहते थे।

इसको सब को पढ़ कर तथा कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टीकरण प्रभृति अनेकानेक साम्प्रदायिक नीति-रीतियों को देख-सुन कर निजलिंगप्पा की

क्रियाओं को निर्लज्जता का नग्न नर्तन नहीं तो और क्या कहा जायेगा? ऐसा प्रतीत होता है कि निजलिंगप्पा के लिए प्रेरणा स्रोत गांधी न रह कर अब सुभद्रा बन गई है। दोनों के स्वरों की साम्यता इस सत्य को सिद्ध करती है।

" (सु) भद्रां कर्णेभिः शृणुयाम मनसा-वाचा-कर्मणा च पालयामि" यही कदाचित् उन्होंने अपने जीवन का मूल मन्त्र मान लिया है।

हमारा तो भारतवासियों को चेतावनी के रूप में इतना ही कहना है कि इस देश में यदि कोई समुदाय के रूप में साम्प्रदायिकता को भड़काने वाला मजहब है तो वह मुस्लिम मजहब है और यदि कोई राजनीतिक संस्था साम्प्रदायिकता के इस जघन्य विष का वपन करने वाली है तो वह एक मात्र संस्था कांग्रेस ही है। इस सत्य को हृदयंगम कर भारतवासियों को अपने कर्तव्य का पालन करने में तनिक भी अब विलम्ब नहीं करना चाहिए। अन्यथा इन दोनों की मिली-भगत देश को रसातल में ले जाने में कोई कोर-कसर न तो छोड़ रही है, और न ही भविष्य में छोड़ेगी।

धर्म-निरपेक्ष नहीं, धर्मान्ध प्रशासन :

धर्म निरपेक्ष गणतन्त्र भारत के एक प्रदेश की प्राथमिक पाठशालाओं में पढ़ाई जाने वाली प्रथम कक्षा की पाठ्यपुस्तक (अर्थात् वर्णमाला की पुस्तक) में "ग" अक्षर की पहचान के लिए "गणेश" शब्द तथा चित्र का प्रयोग चलता था। किन्तु वहाँ के कतिपय जी-हजूर अधिकारियों के मनों में धर्म-निरपेक्षता अर्थात् धर्मान्धता की भावना ने एक दिन ऐसा जोर मारा कि वर्णमाला के जिस स्थान पर गणेश प्रतिष्ठित थे, वहाँ पर गधे की प्रतिस्थापना कर दी गई। तब से "ग" गणेश के स्थान पर "ग" से गधा प्रतिदिन प्रातःकाल बालकों को रटाया जाने लगा। स्पष्ट है कि धर्मनिरपेक्षता की कसौटी पर गणेश गधे को चारा डालने वाले सिद्ध हुए। हमारी सरकार ने लुई चौदहवें के उस कथन को सत्य सिद्ध करने का प्रयास किया कि "देश ही गलत होता है, सरकारें गलत नहीं होतीं।" एक सहयोगी पत्रकार का कथन है कि देश गणेश का उपासक है किन्तु सरकार गणेश की अपेक्षा गधे को श्रेयस्कर समझती है।

इसी सन्दर्भ में एक अन्य उद्धत प्रदेश के प्रशासकों का उल्लेख कर दें तो उचित ही होगा। मद्रास में जब से विधान विध्वंसकों का शासन हुआ है वहां के स्कूलों से संस्कृत और हिन्दी को ऐसा उड़ा दिया गया है जैसे गधे के

सिर से सींग। इतना ही नहीं एस० एल० सी० पाठ्यक्रम की एक पुस्तक के पहले पाठ में ही यह पढ़ाया जाता है कि जो बच्चे संस्कृत जैसी दूसरी भाषायें सिखते हैं और तमिल नहीं सीखते, उनकी आयु घटती है और वे हमेशा बीमार रहेंगे।

दोनों समाचार स्वयं में स्पष्ट तथा समीक्षित हैं। यह समय इस प्रकार की शठता के शमन करने का है सोच-विचार में बिताने का नहीं।

रूस अपने ही दर्पण में :

एसोशियेटेड प्रेस के सूत्रों से विदित हुआ है कि ४७ वर्षीय सोवियत साहित्यकार अरकादी बलिनकोव ने अपनी पत्नी नताल्या सहित अपनी मातृ-भूमि पितृभूमि और पुण्यभूमि का परित्याग कर अमरीका में शरण गही है। भारत के एक तिहाई सुर्खों की पितृभूमि तथा भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री नेहरू के स्वप्नों का स्वर्ग और सभी लेफिटिस्टों का हज एवं ताशकन्द भावना की अपने ही खूनी पंजों से निर्मम शिशुहत्या करने वाले रूस की, बलिनकोव ने बड़े ही कठोर शब्दों में निन्दा एवं आलोचना की है।

सोवियत लेखक संघ की सदस्यता से त्यागपत्र देते हुए बलिनकोव ने लिखा था—मैंने झूठे, अत्याचारी, अपराधी और स्वतन्त्रता के गलघोटू तत्वों से युक्त सरकार का, कभी भी हृदय से अपने को प्रजा नहीं समझा।

अपने पत्र में बलिनकोव ने आगे लिखा है :—सोवियत बुद्धिवादी अपनी सरकार के अत्याचारों के शिकार हैं, क्योंकि ऐसे लोगों के लिए प्रतिभा से उत्पन्न सभी वस्तुओं का विनाश अवश्यम्भावी है। क्योंकि प्रतिमा बुराई को सहन नहीं कर सकती है।

बलिनकोव ने सोवियत सरकार के लिए लिखा है कि वह निर्दयी, असहिष्णु, अज्ञानी और हृदयहीन मशीन है। वह ऐसी भयभीत, अत्याचारी सरकार है जिसके लिए एक और नूरेम्बर्ग न्यायालय प्रतीक्षा कर रहा है। वर्तमान सोवियत नेता रूस के इतिहास में अब तक सर्वाधिक जड़बुद्धि, बेकार और मूर्ख हैं। सोवियत प्रशासन संशोधन और उपचारातीत है। कुछ मुट्ठी पर राजनीतिक षड्यन्त्रकारियों ने शासन अपने हाथ में लेकर जनता के भाग्य को अवरुद्ध कर दिया है।

बलिनकोव ने यह पत्र गत २० जून को लिखा था तथा अब इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया गया है। सोवियत विरोधी लेख लिखने के कारण बलिनकोव को १३ वर्ष तक श्रम शिविरों में रहना पड़ा था। अमरीकी सूत्रों ने बताया है बलिनकोव दम्पति को अमरीका में आश्रय प्रदान कर दिया

गया है।

वियतनाम के अन्देशे से दुबले काजी हुसैन :

इधर भारत से डाक्टर जाकिर हुसैन की रूस की शाही यात्रा प्रारम्भ हुई और उधर रूस द्वारा पाकिस्तान को शस्त्रास्त्र प्रदान का समाचार प्रसारित हुआ। रूस में डा० हुसैन का शाही स्वागत हुआ, मैत्री के जाम पिए गए। जिस समय डाक्टर हुसैन मास्को में मैत्री का मद्य गटक रहे थे, ठीक उसी समय भारतवासी रूस का मित्रघातरूपी विष का घूंट विवश गले से नीचे सटक रहे थे। जिस प्रकार मीठे से लिपटी कुनैन मिश्री नहीं बन सकती, उसी प्रकार इस सन्दर्भ में कोसिगन का वक्तव्य भी समझना चाहिए। वियतनाम की लड़ाई तथा पश्चिम एशिया में विदेशी फौज के अड्डों की चिन्ता से डा० हुसैन अपने सम्मान में आयोजित भव्य-भोज का आस्वादन नहीं कर पाये होंगे। इस चिन्ता में कदाचित् उनका स्वाद किर-किरा हो गया होगा। किन्तु भारत के मुकुटमणि कश्मीर के अर्द्धभाग पर पाकिस्तान का बर्बरतापूर्ण अधिकार और अत्याचार का स्मरण उन्हें भूले से भी नहीं हुआ और न ही पाकिस्तान को दिये जाने वाले रूस के शस्त्रास्त्रों का अनौचित्य ही उनके मुख से प्रगट हुआ। अपनी १० दिन की यात्रा में केवल एक बार "भूले से" डाक्टर हुसेन के मुख से निकला कि रूस भारतीयों की भावनाओं को ध्यान में रख कर ही कार्य करेगा। ये शब्द उन्होंने एक अनौपचारिक वार्त्तालाप के अवसर पर कहे थे। यात्रा के अन्त में जो सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित किया गया है, उसमें भी कश्मीर, पाकिस्तान और शस्त्रास्त्र प्रदान का कहीं तनिक भी उल्लेख नहीं है।

कहीं यह सब इसलिये तो नहीं क्योंकि पाकिस्तान मुस्लिम राष्ट्र है, कश्मीर के अर्द्धभाग पर मुस्लिम देश का अधिकार है और मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान को शस्त्रास्त्र प्रदान करने वाला राष्ट्र रूस भी मुस्लिम-बहुल है? इस सन्दर्भ में यह कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा कि डा० हुसैन के राष्ट्रपति बनने के बाद भारत के मुसलमानों ने जो साम्प्रदायिकता का विष बिखेरा है वह परिमाण एवं परिणाम में इतना घातक है कि उसे नजरन्दाज नहीं किया जा सकता। आज देश में मुस्लिम साम्प्रदायिकता अपनी चरमसीमा की ओर अग्रसर हो रही है। क्या डाक्टर हुसैन इस तथ्य से विमुख हो सकते हैं? यदि समय रहते हम लोग न चेते तो इसके भयंकर परिणामों के विष का शमन करना भविष्य में कठिन ही नहीं अपितु असम्भव हो जा जावेगा।

इतिहास में भारतीय परम्परायें

○

श्री गुरुदत्त

हमने इस शृंखला के पहले पाँच लेखों में भारतीय इतिहास की एक परम्परा लिखी है। वह परम्परा है कि इतिहास का आरम्भ जगत् रचना से आरम्भ होता है। सब भारतीय शास्त्र और पुराण इसी प्रकार मानते हैं।

दूसरी परम्परा काल के विषय में है। जगत् की रचना कब आरम्भ हुई ? आज से कितने वर्ष पूर्व जगत् की रचना आरम्भ हुई थी ? इसके साथ ही काल गणना का प्रश्न सम्बद्ध है।

जब भी कहीं नाप-तौल का कार्य करना होता है पहले इकाई निश्चय की जाती है। उस इकाई से आगे की गणना आरम्भ होती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्राकृतिक इकाई बहुत बड़ी हो तो उस बड़ी इकाई के टुकड़े कर लिये जाते हैं।

उदाहरण के रूप में एक औसत मनुष्य का एक पग एक इकाई मान उसे एक फुट मान लिया गया। परन्तु एक फुट बहुत बड़ी इकाई है। इस कारण छोटी-छोटी लम्बाइयां इतनी बड़ी इकाई से नापी नहीं जा सकतीं। इस कारण फुट के छोटे-छोटे भाग निश्चय किये गये। एक फुट के १२ भाग कर एक भाग का नाम इंच रख दिया गया।

कई प्रकार की लम्बाइयों को नापने के लिये यह भी एक बड़ी इकाई थी। अतः एक इंच के भी आठ भाग कर एक भाग का नाम सूत्र रख दिया गया।

इस प्रकार :—

८ सूत्र = १ इंच।
१२ इंच = १ फुट।

अब फुट से बड़ी लम्बाइयों के लिये नाप बनाये गये। तीन फुट के नाप को एक गज का नाम दिया गया। इसके बाद फर्लांग और मील नियत किये गये।

इसी प्रकार काल को नापने के लिए एक इकाई नियत की गई। इसे दिन कहा जाता है। मध्याह्न के समय खुले मैदान में एक कीली गाड़ दी जाये।

ज्यों-ज्यों दिन बढ़ता जायेगा, कीली का साया छोटा और छोटा होता जायेगा। जिस समय साया सबसे छोटा हो और फिर अगले दिन जब पुनः साया सबसे छोटा हो तो इन दो समयों के भीतर के काल को एक दिन कहते हैं। यह पृथ्वी पर रहने वालों के लिए एक प्राकृतिक इकाई है।

परन्तु मनुष्य को काल नापने के लिए छोटी-छोटी इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है और बहुत बड़े बड़े काल भी नापने होते हैं। अतः छोटे-छोटे कालों को नापने के लिए दिन के छोटे भाग किए गए और बड़े कालों को नापने के लिए पक्ष, महीने, वर्ष और शताब्दियाँ बनाईं गईं। इस पर भी इन सब का सम्बन्ध प्राकृतिक इकाई दिन से रखा गया है।

हमने बताया है कि एक कीली के धूप में छोटे-से-छोटे साये के समय से लेकर अगले दिन फिर छोटे-से-छोटे साये के होने के समय तक एक दिन (दिन-रात) होता है।

वर्तमान काल गणना के अनुसार इस (दिन-रात) काल को चौबीस भागों में बाँटा गया है। यह घण्टा कहलाता है। घण्टे के साठ भाग किये गये हैं और ऐसे एक भाग को मिनट कहते हैं। प्रत्येक मिनट को फिर साठ भागों में बाँटा गया है। यह एक सैकेण्ड का काल है।

कई गणनाओं के लिए सैकेण्ड भी एक बड़ी इकाई है। अतः सैकेण्ड का दसवाँ भाग, सौवाँ भाग इत्यादि को काल की गणना के लिए इकाईयाँ बनाया गया है।

३६० दिन का एक वर्ष माना जाता है। सौ वर्ष की एक शताब्दी मानी जाती है। परन्तु जब हम जगत् की रचना के हुए काल की गणना करना चाहेंगे तो वर्ष और शताब्दी भी एक छोटी इकाई सिद्ध होगी।

अतः इस वर्ष को जिसे हमने ऊपर ३६० दिन-रात का बताया है, एक मानव वर्ष कहते हैं। ऐसे वर्ष को देवताओं का एक दिन रात माना है। ३६० ऐसे वर्षों, अर्थात् देव दिन-रातों, को एक देव वर्ष कहा गया है और १२,००० देव वर्षों का एक देव युग माना है।

मनुस्मृति प्रथम अध्याय में इसका इस प्रकार वर्णन आया है :—

> अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके।
> रात्रि स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥६५॥
> पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः।
> कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥६६॥
> दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः।

अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥६७॥

मनु०—१-६५, ६६, ६७।

(देव (परमात्मा) ने मनुष्य के लिए सूर्य द्वारा दिन और रात का निर्माण किया है। रात भूतों के सोने के लिए है और दिन काम करने के लिए। एक मास में पितरों का एक दिन और एक रात होती है। (शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष) दिन और रात पक्ष कहलाते हैं। शुक्ल पक्ष पितरोंके काम करने का काल है और कृष्ण पक्ष सोने का। इसी प्रकार देवों के रात और दिन होते हैं। देवों के दिन-रात को उत्तरायण और दक्षिणायन कहते हैं और यह दोनों मिलकर मानवों के एक वर्ष के बराबर होता है। उत्तरायण देवों का दिन है और दक्षिणयण देवों की रात्रि है।)

इससे भी बड़ी इकाई की कल्पना की गई है—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणाँ तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या संध्याशश्च तथाविधः ॥६९॥
इतरेषु ससंन्ध्येषु ससंन्ध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥७०॥
यदेतत्परिसँख्यातमादावेव चतुर्युगम्।
एतद् द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥७१॥
दैविकानाँ युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावतीं रात्रिमेव च ॥७२॥

मनु०—१—६९, ७०, ७१, ७२।

यहाँ देवों और मनुष्यों के दिन-रात के सम्बन्ध बताये हैं। यह ऊपर (१-६७)में लिखा है। मानव का एक वर्ष देवों का एक दिन-रात है। अतः ऐसे (देवों के) ३६० दिन-रात का एक देव वर्ष होगा। अभिप्राय यह कि मानव ३६० वर्ष का एक देव वर्ष होता है।

चार हजार देव वर्षों का कृत युग और इसका दशांश ४०० देव वर्ष का सन्धि (युग पूर्व) काल और इतना ही संध्याँश (युग का पर काल) होता है। सब मिलाकर ४८०० देव वर्षों का सत् युग का काल है।

इस सत युग के काल से एक-एक सहस्र वर्ष कम कर और संध्या तथा संध्यांश के काल से १००-१०० वर्ष कम करने से क्रम से अन्य युगों (त्रेता, द्वापर और कलि) का परिमाण बनता है।

इस प्रकार चार युगों के परिमाणों को एक देव युग कहते हैं। इसका चतुर्युगी भी नाम है। इस चतुर्युगी अर्थात् देव युग का परिमाण १२,०००

देव वर्ष होता है।

सत् युग = ४,८०० देव वर्ष।

त्रेता = ३,६०० देव वर्ष।

द्वापर = २,४०० देव वर्ष।

कलि युग= १,२०० देव वर्ष।

कुल एक देव युग =१२,००० देव वर्ष।

ऐसे सहस्र देव युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है और इतनी ही लम्बी ब्रह्मा की रात्रि होती है।

ब्रह्मा का अभिप्राय परमात्मा की कर्तृ शक्ति है। इसका अभिप्राय यह निकलता है कि १,००० देव वर्ष (चतुर्युगियों) तक परमात्मा के जगत् की रचना रहती है और एक सहस्र देवयुग तक यह नहीं रहती।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि मानव दिन-रात, (धूप में गाड़ी कीली के छोटे-से-छोटे साये के समय से लेकर अगले दिन वैसे ही समय तक का समय काल) प्राकृतिक इकाई है। उसे मानव दिन (दिन-रात) कहते हैं। इसके अतिरिक्त शेष इकाईयाँ निश्चित करते समय अन्तरिक्ष में हो रहे परिवर्त्तनों से सम्बन्ध बनाने का यत्न किया गया है।

अब इसको संक्षेप में इस प्रकार लिख सकते हैं।

मानव दिन=कीली के छोटे-से-छोटे साये के समय से वैसे ही अगले दिन के समय तक का काल।

३० मानव दिन=१ पितृ दिन-रात।

१२ पितृ दिन-रात=१ देव दिन-रात (उत्तरायण+दक्षिणायण)

=३६० मानव दिन

३६० देव दिन-रात=१ देव वर्ष=३६०×१२×३०=मानव दिन

=१, २९,६०० दिन=३६० मानव वर्ष

सत् युग=४,०००+४००+४००=सत् युग+संधि और संध्यांश काल।

=४८०० देव वर्ष

त्रेता युग =३,०००+३००+३००=३,६०० देव वर्ष

द्वापर =२,०००+२००+२००=२,४०० ,, ,,

कलि युग=१,०००+१००+१००=१,२०० ,, ,,

चतुर्युगी =देव युग=१२,००० देव वर्ष=१२,०००×३६०

=४,३२,०००० मानव वर्ष।

एक सहस्र देव युग = १ ब्रह्म दिन = ४,३२,००,००,००० मानव वर्ष। इतने ही काल की ब्रह्म रात्रि होती है।

यह हुआ काल परिमाण ऊपर की ओर। इसका आरम्भ किया था मानव दिन से।

अब नीचे की ओर अर्थात् दिन के छोटे भागों के नाम और काल के निश्चय करने की आवश्यकता है।

यह हम बता चुके हैं कि मध्य दिन, जब किसी गड़ी कीली का धूप में छोटे से छोटा साया बने, तब से वैसे ही अगले दिन के समय को दिन कहते हैं।

दिन के वर्तमान काल को वैज्ञानिक घण्टों, मिनटों और सैकेण्डों में नापते हैं। भारतीय शास्त्र में दिन का विभाजन इस प्रकार किया है।

> निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला।
> त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः ॥६४॥
>
> मनु०—१। ६४।

आँख झपकने के काल को निमेष कहते हैं = ०. १७̇ सैकेण्ड

१८ निमेष = १ काष्ठा = ३. १८६ = ३. २ सैकेण्ड

३० काष्ठा = १ कला = १. ६ मिनट = ९६ सैकेण्ड

३० कला = १ मुहुर्त = ४८ मिनट

३० मुहूर्त = १ दिन-रात = २४ घण्टे = १,४४० मिनट

निमेष तो एक फुट (पग) की भाँति एक प्राकृतिक इकाई है। सैकेण्ड एक सार्वभौमिक स्वीकार की हुई कृत्रिम इकाई है। दोनों के परिमाण का परस्पर सम्बन्ध बता दिया है। एक निमेष = ०. १७̇ सेकेण्ड। सात अंक के ऊपर बिन्दु का अभिप्राय है सात अनन्त बार लिखा जाना चाहिए। वैसे यह सर्वथा ठीक संकेत नहीं है।

यहाँ इतना और लिख दें तो ठीक होगा कि एक और भी गणना का ढंग है।

१ निमेष = $\frac{४}{९}$ विपल = १. ७̇ सैकेण्ड

१ विपल = $\frac{९}{४}$ निमेष = ३. ९८ सैकेण्ड = ४ सैकेण्ड

६० विपल = १ पल = $\frac{१}{४}$ (२.५) कला = २४ सैकेण्ड

६० पल = १ घड़ी = $\frac{१}{२}$ मुहूर्त = २४ मिनट

६० घड़ी = १ दिन = २४ घण्टे

दिन के टुकड़ों की गणना अब सार्वभौमिक इकाई सैकेण्डों, मिनटों और

घण्टों में नापी जाती है।

लिखने का अभिप्राय यह है कि काल की गणना एक निमेष से लेकर ब्रह्म दिन तक कर दी गई है। इसकी पूर्ण तालिका इस प्रकार बनती है।

१ निमेष=आँख झपकने का काल	=	१. ७' सैकेण्ड
१८ निमेष=१ काष्ठा	=	३. २ ,,
३० काष्ठा=१ कला	=	९६. ० ,,
३० कला =१ मुहूर्त	=	४८. ० मिनट
३० मुहूर्त =१ दिन-रात	=	२४. ० घण्टे
३० दिन =१ मास	=	१ पितरों का दिन-रात
१२ मास =१ वर्ष=देवी दिन-रात		
३६० वर्ष =१ देव वर्ष		
१२,००० देव वर्ष=१ देव युग=१ चतुर्युगी		

सत् युग=४,८०० देव वर्ष
त्रेता युग=३,६०० ,, ,,
द्वापर युग=२,४०० ,, ,,
कलियुग=१,२०० ,, ,,

कुल :— १२,००० ,, ,,

१,००० देव युग=ब्रह्म दिन = ४,३२,००,००,००० मानव वर्ष
१,००० देव युग=ब्रह्म रात्रि = ,, ,, ,, ,, ,,

जहाँ तक गणना का प्रश्न है वहाँ तक यह ठीक ही है। जगत् की लम्बी आयु गिनने को एक नाप निर्माण किया गया है। आगे जो कुछ लिखा गया है वर्तमान वैज्ञानिक उसे संदिग्ध मानते हैं। हम इसी विषय में लिखना चाहते हैं।

पहली बात तो यह कि ४,३२,००,००,००० मानव वर्ष तक जगत् बना रहता है। इसमें बनने का काल भी सम्मिलित है। वह काल कितना है? कितने वर्ष में सब कुछ बन गया और कितने वर्ष तक इसको बिगड़ते लगेंगे और फिर ४,३२,००,००,००० मानव वर्ष तक यह बिगड़ा रहेगा? अर्थात् मूल प्रकृति के रूप में रहेगा। जिसका रूप हम अपने पूर्व अंशों में वर्णन कर आये हैं। बनने और बिगड़ने के काल के विषय में जो परम्परा है वह हम आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ तो यह लिख रहे हैं कि यह परम्परा है, जिसको वर्तमान

युग के वैज्ञानिक नहीं मानते।

इसी प्रकार दूसरी बात जिसको वे नहीं मानते, वह है कि ब्रह्म दिन आरम्भ हुए कितने मानव वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार ब्रह्म दिन जिसे कल्प के नाम से भी स्मरण किया जाता है, वह चौदह मन्वन्तरों में विभक्त किया गया है।

ब्रह्म दिन जैसा कि हमें ऊपर लिख आये हैं ४,३२,००,००,००० मानव वर्ष का है। इसको १,००० देव युग (चतुर्युगियों) में भी विभक्त किया गया है। अतएव १ मन्वन्तर में १०००/१४ देव युग होंगे। एक मन्वन्तर बराबर है ७१.४२८ देव युग = ३०,८५,७१,४२८ मानव वर्ष।

ब्रह्म दिन की अवधि को १४ मन्वन्तरों में विभक्त करने का कारण यह है कि ब्रह्म दिन में इतने-इतने काल के उपरान्त जगत् की रचना में विशेष परिवर्तन होते हैं। जगत् रचना में मन्वन्तर परिवर्तन पर परमात्मा रचना को एक विशेष दिशा देता है।

मीमांसकों का कहना है कि सात मन्वन्तर व्यतीत हो जाने के उपरान्त परिवर्तनों की दिशा ह्रास की ओर हो जायेगी और फिर मन्वन्तर मन्वन्तर के उपरान्त जगत् की रचना ह्रास की ओर चलती जायेगी। अन्त में १४वें मन्वन्तर के अन्त पर पुनः तीन मूल-पदार्थ ही रह जायेंगे। परमात्मा, जीवात्मायें और प्रकृति। प्रकृति शान्त और अचल सोई हुई-सी हो जायेगी। जीवात्मायें जो मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकीं, वे भी सो जाती हैं और परमात्मा सब कुछ देखता, जानता और समझता हुआ ब्रह्माण्ड के किसी अन्य स्थल पर जगत् की रचना कर रहा होता है।

छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में एक ब्रह्मा के उत्पन्न होने की कल्पना की जाती है। इस प्रकार सात ब्रह्मा अपना कार्य कर चुके हैं। प्रथम ब्रह्मा स्वयम्भुव मनु थे। उसके उपरान्त छः ब्रह्मा और हो चुके हैं। इसके नाम इस प्रकार हैं—

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च॥

मनु०—१-६२,

(१) स्वयम्भुव मनु, (२) स्वारोचिष, (३) उत्तम, (४) तामस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) वैवस्वत।

कुछ विद्वानों का यह मत है कि ब्रह्मा और मनु पृथक्-पृथक् शक्तियों के नाम हैं। ब्रह्मा वे हैं जो मन्वन्तर के आरम्भ में जगत् रचना को दिशा देते

हैं। मनु वे हैं जो इस पृथिवी पर प्राणी सृष्टि का निर्माण करते हैं। इस प्रश्न पर विवेचना के लिए अभी पर्याप्त सामग्री नहीं है।

इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इसी बात को महाभारत में अलंकार रूप में वर्णन किया है। ब्रह्मा के मुख से ही यह कहलाया गया है।

महाभारत शान्ति पर्व ३४७—३९,४०,४१,४२,४३ में ब्रह्मा कहते हैं कि आप (परमात्मा) अव्यक्त से व्यक्त को उत्पन्न करने वाले हैं। आप अचिंत्य स्वरूप हैं। आप कल्याण करने के मार्ग पर चल रहे हैं। आप सम्पूर्ण प्राणियों का पालन करने वाले और सब में व्यापक आत्मा रूप हैं। आप अयोनिज अर्थात् किसी योनि से उत्पन्न नहीं होते। आप जगत् के आधार स्वयम्भू हैं। मैं आपकी कृपा से उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा प्रथम जन्म आप से हुआ। वह द्विजों में पूजनीय हुआ। (स्वारोचिष) वह मानस जन्म था। दूसरे जन्म में मैं आपके नेत्र से उत्पन्न हुआ (उत्तम)। तीसरा जन्म आपके वचन से (तामस) से हुआ। चौथा जन्म कानों से (रैवत) हुआ। पाँचवां नासिका से (चाक्षुष) हुआ और छटा जन्म आपके अण्डे (हिरण्यगर्भ) से हुआ। सातवाँ जन्म कमल से हुआ जो वैवस्वत कहलाया।

महाभारत में लिखे उत्पत्ति स्थान और मनुस्मृति में लिखे नामों में समन्वय बनाने की आवश्यकता है। इतना तो स्पष्ट है कि सात मनु हो चुके हैं। मनु मन्वन्तरों के स्वामी माने जाते हैं। अर्थात् मन्वन्तरों में होने वाली क्रियाओं को वे सम्पन्न करते हैं।

अन्तिम मनु वैवस्वत के पुत्र कहलाये। वैवस्वत सूर्य को कहते हैं। सातवें मन्वन्तर के आरम्भ में सूर्य बन चुका था। पृथिवी बन चुकी थी। पृथिवी पर अति वृष्टि होने से पूर्ण पृथिवी जलमग्न थी। अभिप्राय यह है कि भौतिक जल और वायु बन चुकी थी। पृथिवी पर, शतपथ ब्राह्मण में लिखे अनुसार फेन, मिट्टी, शुष्कापम्, ऊष, सिकता, शर्करा, अश्मा, अय: और औषधियाँ बन चुकी थीं।

उस समय कमल रूपी पृथ्वी पर सूर्य किरणों के प्रभाव से मानवों का प्रथम व्यक्ति ब्रह्मा वैवस्वत मनु उत्पन्न हुआ। उससे वर्तमान मन्वन्तर में मानव सृष्टि उत्पन्न हुई।

पृथिवी, सूर्य, जल, वायु पूर्ण पाँच-भौतिक संसार हिरण्यगर्भ में सूक्ष्म रूप में बन कर वैवस्वत मनु के काल से पूर्व ही स्थूल रूप में आ चुका था।

यह भारतीय परम्परा वर्तमान वैज्ञानिक नहीं मानते। उनके न मानने में सबसे बड़ा कारण यह है कि वे प्रत्यक्ष प्रमाण को ही प्रमाण मानते हैं।

अनुमान प्रमाण का अर्थ है युक्ति, जिसका सत्य आधार हो। और आप्त प्रमाण का अर्थ है योगी द्रष्टाओं के कथन।

अर्थात् वर्तमान वैज्ञानिक को पहले अनुमान प्रमाण और आप्त प्रमाण की सत्यता का दर्शन कराया जाये। तब ही वह उक्त सृष्टि की काल गणना को मानेंगे। इसके लिए इस पुस्तक में स्थान नहीं है। यहाँ तो हम केवल काल के विषय में ही युक्ति और प्रमाण देना चाहते हैं। हमने इस लेख में भारतीय ढंग से काल गणना की इकाईयों के परिमाण और नाम बताये हैं। उनका वर्तमान युग की काल गणना में प्रयोग की जाने वाली इकाईयों से सम्बन्ध बताया है।

यह बताया जा चुका है कि जगत् रचना को आरम्भ हुए ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। अत: ६ × ४३,२०,००० × ७१.४२८ = १,८५,२४,८७,-००० मानव वर्ष हुए।

इनके ऊपर वैवस्वत मनु का काल २७ चतुर्युगियाँ	११,६६,४०,०००	मानव वर्ष
२८वीं चतुर्युगी का सत्युग	१७,२८,०००	,, ,,
,, ,, ,, त्रेता युग	१२,९६,०००	,, ,,
,, ,, ,, द्वापर	८,६४,०००	,, ,,
,, ,, ,, कलियुग व्यतीत	५,०६९	,, ,,
ब्रह्म दिन का व्यतीत काल	१,९७,२९,४०,०६९	,, ,,

अगले लेख में हम इस गणना की पुष्टि में प्रमाण और युक्ति प्रस्तुत करेंगे।

पाकिस्तान को रूसी हथियार भारत के लिए अभिशाप या वरदान !

प्रा० बलराज मधोक, संसद सदस्य

राष्ट्रपति अयूब की रूस यात्रा और सोवियत प्रधान मंत्री श्री कोसीगिन की पाकिस्तान यात्रा से रूस और पाकिस्तान के सम्बन्ध में जो नया दौर शुरू हुआ था, उसे पाकिस्तान के सेनापति जनरल याहया खाँ की रूस यात्रा और रूस द्वारा पाकिस्तान को हथियार देने की बात मान लेने से निश्चित दिशा मिल गई है।

सन् १९६५ तक पाकिस्तान अमरीकी गुट का एक अभिन्न अंग माना जाता था। और रूस का रवैया उसके प्रति कोई बहुत अच्छा नहीं था; परन्तु सोवियत रूस के निमंत्रण पर ताशकंद में हुई भारत-पाक वार्ता की सफलता से रूस और पाकिस्तान के सम्बन्धों में कुछ मधुरता आनी शुरू हुई और इसके साथ ही साथ रूस का रवैया भारत के प्रति, विशेष रूप से कश्मीर के मामले में, बदलना शुरू हुआ। परन्तु अभी तक रूस और भारत सरकार के प्रतिनिधियों की ओर से लगातार यह कहा जाता रहा है कि पाकिस्तान और रूस के सम्बन्धों में मधुरता आने से हिन्दुस्तान और रूस के सम्बन्धों में कोई फर्क न पड़ा है और न पड़ेगा। यह केवल मुंह रखने की बात है। यदि पाकिस्तान और रूस के सम्बन्धों में सुधार हुआ तो इसका निश्चित रूप में कुछ न कुछ प्रभाव रूस के भारत के प्रति रवैये पर पड़ेगा।

रूस की नीति में यह बदल अनियमित नहीं है। इसके संकेत गत दो वर्षों से मिल रहे थे। हर देश की विदेश नीति उसके अपने हितों का ध्यान रख कर बनाई जाती है। रूस के हित क्या हैं, इसका फैसला रूस के लोग और सरकार ही कर सकते हैं। परन्तु भारत की जनता और सरकार को भी उन बातों पर विचार करना होगा जो रूस को पाकिस्तान के निकट ला रही हैं और उसके प्रकाश में अपनी नीति पर भी पुनर्विचार करना होगा।

पाकिस्तान और रूस के सम्बन्धों में सुधार लाने के कई कारण

हैं। सबसे पहला कारण दोनों की भौगोलिक स्थिति है। रूस ने हिन्दूकोह पर्वत में सुरंग बना कर काबुल के साथ सीधा, सड़क का सम्बन्ध कायम कर लिया है। रूस की सीमा से काबुल मोटर के द्वारा चार घण्टे में पहुंचा जा सकता है। काबुल से पेशावर भी लगभग चार घण्टे में पहुंचा जा सकता है। इस प्रकार रूस की सेनायें सड़कों के रास्ते आठ घण्टे में पेशावर पहुंच सकती हैं। रूसी विदेश नीति का सदियों से यह लक्ष्य रहा है कि उसे किसी प्रकार हिन्द सागर तक रास्ता मिल जाय। यह रास्ता मिलने की सम्भावना अब सामने आ रही है। अफ़गानिस्तान पूर्ण रूप से रूस के प्रभाव में आ चुका है। पख्तूनिस्तान के सवाल पर काबुल रूस की सहायता से कभी भी पाकिस्तान का काफिया तंग कर सकता है। इसलिए पाकिस्तान के हित मांग करते हैं कि उसके सम्बन्ध रूस से अच्छे रहें और रूस भी चाहता है कि वह पाकिस्तान को पश्चिमी गुट से दूर करके अपने निकट ला सके।

इस भौगोलिक निकटता के कारण दोनों देशों में व्यापार की सम्भावनाएँ भी बहुत बढ़ गई हैं। इस लिए आर्थिक दृष्टि से भी इन दोनों का एक दूसरे के निकट आना उनके राष्ट्रीय हितों में है।

पाकिस्तान आज अपने आप को संसार का सबसे बड़ा इस्लामी देश कहता है। वास्तव में वह है भी। संसार के सभी मुस्लिम देशों से उसकी जनसंख्या भी अधिक है और सैनिक और आर्थिक शक्ति भी। इसलिए पाकिस्तान मुस्लिम संसार का नेता बनने का प्रयत्न करता रहा है। इसमें चाहे अभी तक इसको पूर्ण सफलता नहीं मिली तो भी मुस्लिम देशों की जनता में पाकिस्तान के प्रति एक विशेष अनुराग पैदा हो चुका है। इसका परिचय किसी भी इस्लामी देश में जाने से मिलता है। रूस में अभी तक लगभग तीन करोड़ मुसलमान हैं। ये मुख्यतः उसके अफगानिस्तान और चीन के साथ लगने वाले क्षेत्रों में बसे हुए हैं। कई वर्षों के अलगाव और धर्म-विहीनता की नीति के बावजूद सोवियत रूस अपने मुस्लिम नागरिकों की इस्लामी भावनाओं को दबा नहीं पाया। गत कई वर्षों से ताजिकस्तान और उज़बिकस्तान आदि के मुसलमानों के सम्बन्ध पाकिस्तान तथा अन्य इस्लामी देशों के मुसलमानों के साथ ताजे हो रहे हैं। इनका स्वभाविक रूप में पाकिस्तान की ओर झुकाव भी बढ़ रहा है। इसलिए सोवियत रूस के नेता भी यह महसूस करने लगे हैं कि अपने इन इस्लामी नागरिकों की भावनाओं का आदर करते हुए उन्हें पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधारने चाहिएँ। वैसे भी पश्चिमी एशिया और अफ्रीका की राजनीति में इस्लाम के यहूदी धर्म तथा ईसाइयत के साथ द्वन्द में रूस इस्लाम

का साथ दे रहा है । इसका कारण विशुद्ध राजनीतिक है । स्वयं मजहब में विश्वास न करते हुए भी कम्युनिस्ट रूस के नेता इस बात को भलीभाँति समझते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में मजहब और संस्कृति आज भी महत्वपूर्ण रोल अदा करते हैं और इस्लाम का साथ देने से उन्हें पश्चिम एशिया और रोम सागर तथा हिन्द महासागर में पाँव फैलाने में सहायता मिलेगी । वैसे भी इस्लाम और कम्युनिज्म में बहुत कुछ समानतायें हैं । दोनों ऐसे मजहब हैं जिनमें और सब धर्मों और विचार-धाराओं के प्रति असहिष्णुता है । दोनों अधिनायकवादी भी हैं । इसीलिए किसी भी इस्लामी देश में लोकतंत्र नहीं पनप पाता । इस प्रकार इस्लाम भी रूस और पाकितान के सम्बन्धों को सुधारने में एक कारण बन रहा है ।

रूस और चीन का तनाव भी इस मामले में एक अन्य कारण है । रूस और चीन में तनाव मुख्यतः रूसी और चीनी राष्ट्रवाद का संघर्ष है । रूस और चीन दोनों ने ही अपनी परम्परागत सीमाओं से आगे बढ़ कर मध्य एशिया के बहुत बड़े भाग पर अधिकार कर लिया हुआ है, जिसके कारण मध्य एशिया में बसने वाले मुसलमान ताजिक, उजबक और तुर्क दो हिस्सों में बंट गये हैं । उनमें से आधे चीन के अधिकार में हैं । चीन रूस के अधिकार में किए हुए बड़े भाग पर दावा जमाता रहा है । उसके मान-चित्रों में भारत के उरवशियम क्षेत्र की तरह मध्य एशिया स्थित सोवियत रूस के बहुत बड़े भाग को भी चीनी क्षेत्र बताया गया है । वह सीमा पर चीनियों को अपने देश से लाकर बसा भी रहा है । इसलिए लगता है कि रूस और चीन का यह संघर्ष आने वाले दिनों में और तीव्र होगा । इन हालात में रूस यह नहीं चाहता कि पाकिस्तान में चीन का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ जाय । चीन के मुकाबले में वह पाकिस्तान में भी अपना प्रभाव बड़ाना चाहता है ।

इन भौगोलिक और राजनीतिक कारणों के अतिरिक्त एक और कारण है जो रूस को पाकिस्तान के निकट ला रहा है । वह है रूसी नेताओं की भारत से निराशा । कई वर्षों तक सोवियत रूस के नेताओं का प्रयत्न रहा है वे शान्ति-पूर्ण ढंग से भारत की राजनीति को प्रभावित करके भारत को कम्युनिज्म के परिवार में शामिल करलें । स्व० पं नेहरू के जीवन-काल में जैसे इस बात की आशा भी थी कि पं० नेहरू के माध्यम से वह इस लक्ष्य को प्राप्त कर पायेगा, परन्तु पं० नेहरू के निधन के बाद और विशेष रूप से १९६७ के चुनावों के बाद उसकी यह आशा धूमिल हो चुकी है । भारतीय जनसंघ जैसे राष्ट्रवादी दलों की शक्ति और प्रभाव के बढ़ने और कम्युनिस्ट पार्टी के दो हिस्सों में

बंट जाने से सारे भारत को रूसी प्रभाव में लाना असम्भव नहीं, तो पहले से कठिन जरूर हो गया है। वैसे भी कम्युनिस्ट देशों में कम्युनिज्म राष्ट्रवाद से परास्त होकर अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र खो रहा है और राष्ट्रवादी बनता जा रहा है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिज्म के हितों की अपेक्षा कम्युनिस्ट देशों के राष्ट्रीय हित, उन देशों की नीतियों को अधिक प्रभावित करने लगे हैं। इस लिए वैचारिक मतभेद के बावजूद कम्युनिस्ट रूस और सामन्तवादी पाकिस्तान अधिक निकट आ सकते हैं और आ रहे हैं। पाकिस्तान का ताशकंद के बाद से यह प्रयत्न रहा है कि रूस भारत को हथियार देना बन्द कर दे अन्यथा जिन शर्तों पर वह भारत को हथियार देता है, उन्हीं पर वह पाकिस्तान को भी दे। भारत सरकार का प्रयत्न रहा है कि रूस पाकिस्तान की इस बात को न माने। परन्तु वह प्रयत्न अब विफल हो गये हैं। रूस ने पाकिस्तान को हथियार देने की बात मान कर भारत के प्रति अपने बदलते हुए रुख को स्पष्ट संकेत दे दिया है। कश्मीर के सम्बन्ध में रूस का रवैया कुछ तो बदल ही चुका है अब और बदलने की सम्भावना बढ़ गई है। पाकिस्तान रूस पर इस बात के लिए बल दे सकता है कि वे कश्मीर के मामले में भारत और उसके बीच में पूर्णतः तटस्थ हो जाय। यदि पाकिस्तान इस बात को मनवाने में सफल हो गया तो यह उसकी बहुत बड़ी विजय होगी। फिर रूस भले ही कहता रहे कि कश्मीर के बारे में उसके रवैये में कोई बदल नहीं आया। व्यावहारिक रूप में उसका प्रभाव भारत पर पड़ना शुरू हो जायेगा।

अतः भारत की जनता और नीति निर्धारकों को रूस द्वारा पाकिस्तान को हथियार देने के निर्णय की गम्भीरता को समझना होगा और शुभ की आशा करते हुए हर प्रकार की सम्भावनाओं पर विचार करना होगा। हमें इस बात को याद रखना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में किसी भी देश के न कोई स्थायी मित्र होते हैं और न कोई स्थाई शत्रु। केवल हित ही स्थायी होते हैं। आज रूस और पाकिस्तान के अपने अपने हित उन्हें एक दूसरे के निकट ला रहे हैं। इसलिए उन पर क्रोध करने के बजाय हमें भी अपने हितों की दृष्टि से भारत-पाक और भारत-रूस सम्बन्धों पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है। भारत सरकार को यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि अपने पांव पर खड़े हुए बिना भारत की गत नहीं है। रूस का दुमल्छला बन कर उसकी कृपा पर जीने की नीति भारत और रूस की सम्मानपूर्वक मित्रता का आधार नहीं बन सकती थी। उससे रूस के शासकों के मनों

शेष पृष्ठ २७ पर

अस्तित्व की रक्षा

○

श्री विद्यानन्द 'विदेह'

अपना अस्तित्व जितना व्यक्ति को प्रिय होता है, उतना ही जातियों को। यहूदी जाति ने, जिसकी कुल जन-संख्या कश्मीर की जन-संख्या से भी कम है, अपनी जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिए ही इस्राइल राज्य की स्थापना की है। जाति के अस्तित्व की रक्षा में उसकी संस्कृति, सभ्यता, कला-कृति, इतिहास, परम्परा, आचार, विचार, धर्म आदि अमूल्य निधियों की रक्षा निहित है। यदि इन निधियों की रक्षा का जाति-रक्षा के साथ सहचार न हो, तो फिर जाति की रक्षा सर्वथा निरर्थक हो जाती है।

आर्यावर्त की आर्य जाति, जिसे विगत एक हज़ार वर्षों से हिन्दु जाति कहा जा रहा है, संसार की वह प्राचीनतम जाति है, जिसने विश्व को सार्व-भौम मानवीय देनें तो दी ही हैं। यदि इस जाति का अस्तित्व खतरे में पड़ गया तो, सच जानिए, जो कुछ सत्य, शिव, सुन्दर और शाश्वत है, वह सब ओझल हो जाएगा और मानवता के शाश्वत मूल्य अनादृत ही नहीं, समाप्त हो जायेंगे।

पिछले दिनों मैंने कतिपय आर्य सज्जनों के दो चार ऐसे लेख पढ़े, जिनमें मुस्लिम विद्वानों द्वारा रचित लुग़तों (शब्दकोषों) के हवाले से यह सिद्ध किया गया था कि हिन्दू शब्द का अर्थ चोर, डाकू, गुलाम, काफ़िर, जनफ़रोश इत्यादि है। अतः हिन्दुओं को हिन्दू शब्द का बहिष्कार करके अपने आपको आर्य कहना और कहलाना चाहिए। ऐसे तो कल को कोई मुस्लिम विद्वान अपनी लुगत में आर्य शब्द का भी हिन्दू शब्द का जैसा अर्थ छाप देगा, तो क्या आर्य शब्द का बहिष्कार करने की व्यवस्था दी जायेगी। हिन्दू शब्द के यदि उपर्युक्त अर्थ होते तो विदेशियों से निरन्तर लोहा लेने वाले आर्य वीर कदापि अपने आपको हिन्दू कहा जाना स्वीकार न करते। यह बात भी सरासर गलत है कि हिन्दू नाम मुस्लिम आक्रान्ताओं तथा शासकों की देन है। असली बात यह है कि जब विदेशी आक्रान्ताओं और शासकों ने इस देश में दुष्टाचार और दुराचार किया तो इस देश के के वीरों ने स्वयं अपने आपको हिन्दू कहकर उनका मुकाबला किया। 'हिनस्ति दुष्टान् दुरितानि च यः स

हिन्दु:=जो दुष्टों का हनन और दुराचारों का दलन करता है, वह हिन्दू है। यही हिन्दू शब्द की व्युत्पत्ति और इतिहास है। कोई भी जाति शत्रुओं द्वारा रखे गए गन्दे अर्थ वाले नाम को स्वीकार नहीं कर सकती।

मैं मानता हूँ कि हमारा आदि नाम आर्य है और आर्य शब्द हिन्दू शब्द की अपेक्षा कहीं अधिक प्रेरक तथा व्यापक है। यह भी निश्चय है कि अन्तत: यह देश आर्यावर्त ही कहलायेगा और यह जाति आर्य जाति ही कहलायेगी। पर वस्तुस्थिति यह है कि इस जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिए जिस सुसंगठन की आवश्यकता है, वह आज हिन्दू नाम से ही सिद्ध होगा, अन्यथा नहीं। आर्य जनों से मैं कहूँगा कि वे गौण बातों को पीछे करके मुख्य समस्याओं पर अपने विचारों को केन्द्रित करें। मेरी स्वयं की भी अभी तक यह मान्यता चली आ रही थी कि हिन्दू नाम विदेशियों की देन है। हाल ही में कुछ खोजपूर्ण ऐतिहासिक लेख मेरी दृष्टि में आये और परिणामस्वरूप मेरी उपर्युक्त धारणा बनी। प्रथम प्रश्न अस्तित्व की रक्षा का है। अस्तित्व रहेगा तो नाम बदलने में दिक्कत न होगी। हिन्दू जाति पतझड़ में वृक्षों से झड़े पत्तों की तरह दुर्गति की हवा से इधर-उधर उड़ रही है। बागवानों को इस उपवन में पुन: बहार लाने के लिए अब अविलम्ब सुसज्ज और सुसंगठित हो जाना चाहिए।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि भारत, भारतीयता और जो कुछ भारतीय है, उससे केवलमात्र हिन्दुओं को ही लगाव है, अन्य किसी को नहीं। और यह भी निश्चित है कि इस पृथिवी पर निवास करने वाली समग्र मानव-जातियों में से केवल हिन्दु जाति योगजाति है। शेष जातियाँ तो भोगजातियाँ ही हैं। हिन्दु जाति को अपने स्वरूप में अवस्थित होकर पृथिवी की समग्र मानव-जातियों को योगजीवनपद्धति से युक्त करना है।

('सविता' से साभार)

पृष्ठ २५ का शेष

में भारत का सम्मान घटा है और उसका प्रमाण पाकिस्तान के प्रति उसके बदलते हुए रवैये से मिल गया है। भारत के रूस-भक्त नेताओं के लिए यह एक ऐसी चपत है, जिसके वे पात्र थे। यदि अब भी उन्हें समझ आ जाय और वे भारत की विदेश नीति को भारतीय हितों के आधार पर ढालने के लिये तैयार हो जायें, तो रूस का यह बदलता रुख भारत के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है।

भारतीय मुसलमान का अंतरंग

○

श्री हमीद दलवाई

(भारत में रहने वाले मुसलमानों ने पाकिस्तान की माँग का समर्थन क्यों किया ?

क्या साम्प्रदायिक प्रश्नों पर हमारे राष्ट्रीय नेतृत्व की नीति सही थी ?

क्या आजादी के बाद मुस्लिम साम्प्रदायिक मनोवृत्ति में कहीं कोई परिवर्तन आया ?

महाराष्ट्र के युवा पत्रकार श्री हमीद दलवाई का यह लेख अल्पसंख्यक के मानस का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। —सम्पादक

भारत के समूचे जीवन में व्याप्त आज की अराजकतावादी स्थिति की एक अभिव्यक्ति हाल के साम्प्रदायिक दंगों में हुई है। अब समय आ गया है जब हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों पर सिर्फ सतही दृष्टि से विचार करने के बजाय गहराई से उनका विश्लेषण किया जाये।

यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में सभी जातियों के लोगों ने भाग लिया था। अल्पसंख्यक जातियों में अनेक ऐसी जातियाँ हैं जो कदाचित् स्वातन्त्र्य आन्दोलन से अलिप्त रही हों। हाँ, उन्होंने स्वतन्त्रता की उस लड़ाई के विरोध करने का पाप शायद नहीं किया। मुसलमानों ने स्वतन्त्रता मिलने का अर्थ राजसत्ता हिन्दुओं के हाथ में आना माना तथा उस लड़ाई की व्याख्या भी हिन्दुओं की लड़ाई के रूप में की।

इसका कारण स्पष्ट था। हम इस देश में अल्पसंख्या में हैं, यह ज्ञान भारत के मुसलमानों को हो गया था। यहाँ यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि संसार के उन सभी देशों के मुसलमानों को, जहाँ वे अल्पसंख्या में हैं, अपने अल्पसंख्यक होने का ज्ञान है। ऐसे देशों की संख्या बहुत नहीं है। इथियोपिया, सोवियत रूस, युगोस्लाविया आदि कुछ देशों में वे अल्पसंख्यक हैं। इनमें सोवियत रूस की परिस्थिति बहुत कुछ अखण्ड भारत की परिस्थिति के ही समान है। भारत में लगभग पाँच-छः बहुसंख्य मुस्लिम राज्य थे। सोवियत रूस में भी पाँच मुस्लिम राज्य हैं। परन्तु इन दोनों राष्ट्रों की इस्लामीकरण

की प्रक्रियाएँ बिलकुल भिन्न रही हैं, यह महत्वपूर्ण बात है। भारत में मुस्लिम आक्रमण तथा सत्ता की प्रक्रिया से इस्लामीकरण हुआ। दीर्घकालीन मुस्लिम सत्ता के कारण यहाँ मुस्लिम समाज को सभी सहूलियतें और संरक्षण मिला। सत्ता का यह छत्र जब तक उनके सिर पर रहा, तब तक इस जाति को अपने अल्पसंख्यक होने का ज्ञान नहीं हुआ। यदि यहाँ अंग्रेज न आते और मुगल राज्य बना रहता, तो यह ज्ञान उन्हें होता ही नहीं। परन्तु जनतन्त्रीय राज्य-व्यवस्था की माँग बहुसंख्यक समाज द्वारा किये जाने पर मुसलमानों द्वारा उसका विरोध किया ही जाना था। संक्षेप में, समान अवसर तथा नागरिकता की चौखट में अल्पसंख्यक के रूप में रहने से मुसलमानों का मानसिक विरोध था और वह आज भी कायम है। पाकिस्तान की माँग तथा निर्माण अल्पसंख्यकों के रूप में रहने की तैयारी न होने के कारण ही तो हुई। फिर भी उसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमान यहाँ और भी अधिक अल्पसंख्यक हो गये। (अखण्ड भारत में मुसलमान २४.७ प्रतिशत थे, आज भारत में वे १२ प्रतिशत हैं।)

सोवियत रूस के मुस्लिम बहुसंख्यक प्रदेश को ज़ार की सरकार ने जीत लिया। वहाँ इस्लामीकरण की प्रक्रिया अभी होकर ही चुकी थी। नयी राज्य व्यवस्था (अर्थात् विदेशी राज्य-व्यवस्था) का मुसलमानों ने प्राणपण से विरोध किया था, पर जारशाही ने इस विरोध को निष्ठुरता से दबा दिया। रूस में क्रान्ति हो गई। तब तक मुसलमान नयी परिस्थिति में हिलमिल जाने की मनःस्थिति में आ गये थे। क्रान्ति के कारण उन्हें कुछ भी खोने की जरूरत नहीं पड़ी। कदाचित् साम्यवाद के निरीश्वरवादी तत्वज्ञान से उनका विरोध रहा हो, परन्तु जिस प्रकार सभी साम्यवाद-विरोधियों को पीस दिया गया, वैसे ही मुसलमान साम्यवाद-विरोधियों को भी पीस दिया गया। फूट पैदा करने वाली शक्तियों को दबा दिया गया और आधुनिकीकरण की एक प्रचंड प्रक्रिया उस देश में भी शुरू कर दी गयी।

उसी के साथ-साथ इस प्रदेश में रूसियों की बस्तियां बसाना शुरू कर दिया गया। बस्तियाँ बसाते हुए लोकसंख्या के स्वरूप में धीरे-धीरे परिवर्तन किया जाने लगा। यह परिवर्तन अब तक हो रहा है। संक्षेप में, जनतन्त्र तथा समान नागरिकत्व की चौखट में घिर कर रहने का विरोध अल्पसंख्यक मुसलमान अवश्य करते, परन्तु उन्हें ऐसा अवसर ही नहीं दिया गया। (इस संदर्भ में कश्मीर में भारत का नागरिक स्थायी नहीं हो सकता, इसकी बरबस याद हो आती है।)

इथियोपिया में यह मानसिक संघर्ष अब आरम्भ हो गया है। इथियोपिया के मुस्लिम अल्पसंख्यकों के प्रश्न को भारत के अल्पसंख्यकों की पद्धति से सुलझाया जाये, इस माँग का प्रतिपादन अन्तरराष्ट्रीय इस्लामिक पत्र-पत्रिकाएं करने लगीं हैं। सोमालिया और इथियोपिया के बीच का सीमा संघर्ष इथियोपिया के मुसलमानों की इस मानसिक अवस्था का प्रतीक है। अल्पसंख्यक के रूप में वे इथियोपिया में रहने को तैयार नहीं। उन्हें इथियोपिया का विभाजन चाहिए। बहुसंख्यक सोमालिया में वे रहने को तैयार हैं।

युगोस्लाविया का इतिहास कुछ भिन्न है। मुस्लिम शासन वहाँ कभी भी दीर्घ काल तक स्थिर नहीं हुआ। ईसाई तथा मुस्लिम सत्ताधीशों की सतत रस्साकशी इस प्रदेश में होती रही। यह प्रदेश कभी ईसाई और कभी मुसलमान सत्ताधारियों के हाथ में आता-जाता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ के मुसलमान नागरिकों की निष्ठा निश्चित नहीं हो पाई। दूसरी बात यह कि वहां आसपास किसी भी धर्माधिष्ठित बहुसंख्य मुस्लिम प्रदेश का अस्तित्व नहीं है। इस भौगोलिक वस्तुस्थिति का भी युगोस्लाविया की मुस्लिम मनोवृत्ति पर प्रभाव पड़ा। इसी कारण युगोस्लाविया के मुसलमानों में अपने अल्पसंख्यक होने की भावना अधिक दिखाई नहीं देती। वहाँ यह भावना नहीं है, मैं इसका भी प्रतिपादन नहीं करना चाहता। पर भारतीय मुसलमानों की आन्तरिक मनोदशा समझने के लिए इसकी ऐतिहासिक और भौगोलिक वस्तुस्थिति पर विचार करना आवश्यक है।

भारत में रहने वाले मुसलमानों ने पाकिस्तान की माँग को बल क्यों दिया? पाकिस्तान उनकी इस्लामी राष्ट्र सम्बन्धी आकाँक्षा का प्रतीक बन गया था, इसीलिए? इस्लाम एक राष्ट्र है, यह भावना भारतीय मुसलमानों के मनों में गहरी समा गई थी। खिलाफत आन्दोलन के रूप में उसकी एक लहर आई, पाकिस्तान के निर्माण के रूप में उनकी यह आकांक्षा पूरी हुई।

पर यह तो भावनात्मक अथवा मानसिक पार्श्वभूमि हुई। व्यावहारिक दृष्टि से यहाँ रहने वाले मुसलमानों ने पाकिस्तान बनने के बाद के परिणामों को ध्यान में क्यों नहीं रखा? सुशिक्षित मुसलमानों ने भी उसका विचार क्यों नहीं किया? मेरे विचार में मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्रवादी सिद्धान्त में अल्पसंख्यक नीति को पकड़े रहने का जो सिद्धान्त था, उसका सुशिक्षित मुसलमानों के मन पर गहरा दबाव था, यह एक कारण था। सुशिक्षित मुसलमान एक दृष्टि से कुछ-न-कुछ बंधक रखने की मध्ययुगीन कल्पना में जकड़ा पड़ा था। सही अर्थों में, उसके आधुनिक संस्कार हुए ही नहीं थे। (आज भी नहीं

हुए हैं।) दूसरा कारण यह था कि यहाँ के मुसलमानों को लगता ही नहीं था कि भारत संगठित हो सकेगा। सुशिक्षित मुसलमानों को भी नहीं लगता था। हैदराबाद स्वतन्त्र हो जायेगा, विभिन्न रियासतें स्वतन्त्रता की माँग करेंगी, और फिर ऐसी परिस्थिति में कमजोर भारत, अर्थात् असंगठित हिन्दू, पाकिस्तान से होड़ नहीं कर पायेगा, ऐसी सुशिक्षित मुसलमानों की धारणा थी।

और फिर इस कमजोर भारत को नोच-नोच कर तोड़ लेना पाकिस्तान के लिए सरल काम होगा। पाकिस्तान का विस्तार होता रहेगा। कम-से-कम आधा भारत तो पाकिस्तान के ताबे में आ ही जायेगा। ऐसे सुख-स्वप्न उत्तर के सुशिक्षित मुसलमान देखा करते थे।

हिन्दू दंगों का प्रतिकार नहीं करेंगे, उन्हें ऐसा भी विश्वास था। हिंदू प्रतिकार कमजोर ठहरेगा यह भी उनका अन्दाज था। हिन्दुओं के कमजोर होने का चित्र उनके मन पर, मुस्लिम शासन के दीर्घकालीन इतिहास ने उतार दिया था। हिन्दू अधःपतन का समय समाप्त हो गया है, यह सुशिक्षित मुसलमान कभी भी नहीं समझ पाया।

भारत के सुशिक्षित मुसलमान ने पाकिस्तान बनने के परिणाम पर कभी भी ध्यान नहीं दिया, इसके ये कुछ महत्वपूर्ण, कठोर, पर सत्य कारण हैं। सुशिक्षित मुस्लिम समाज पर विचार करने का कारण यह है कि किसी भी अशिक्षित समाज को गलत आन्दोलन करने का दोष देने में कोई तुक नहीं। किसी भी समाज का नेतृत्व सुशिक्षित वर्ग ही करता है। आन्दोलनों के परिणाम का विचार भी उन्हें ही करना पड़ता है। परिणामों की जिम्मेदारी भी उन्हीं पर रहती है।

परन्तु मुस्लिम नेतृत्व का यह तर्क गलत ठहरा। दंगों का उत्तर हिन्दुओं ने दंगों से दिया। नोआखाली की कीमत मुसलमानों को बिहार में चुकानी पड़ी। पाकिस्तान बनने के बाद पश्चिम पाकिस्तान में हुए दंगों की तीव्र प्रतिक्रिया पूर्व पंजाब और दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में हुई और इस क्षेत्र के सभी मुसलमानों को देश छोड़कर जाना पड़ा। कश्मीर से पाकिस्तानी घुसपैठियों और सेना को पीछे हटाने में भारत यशस्वी हुआ। पाकिस्तान के नक्शे में कश्मीर का समावेश नहीं हो पाया, (आज भी नहीं हो पा रहा है।) हैदराबाद में सेना भेज कर वहाँ के मुसलमानों द्वारा उसे भारत में मिलाने के विरोध को समाप्त कर दिया गया। जूनागढ़ को पाकिस्तान में जाने से बचा लिया गया और वल्लभ भाई ने एक ही झटके में सभी रियासतों को

भारत में शामिल कर लिया। भारत संगठित हो गया। यह सब बड़े ही झपाटे में हुआ। यहाँ के मुस्लिम समाज को ऐसी आशा नहीं थी। उन्हें भारत की इस एकता की प्रक्रिया से जबर्दस्त धक्का लगा।

इस धक्के के प्रभाव से मुक्त होने में मुसलमान समाज को कुछ समय लगा। मुस्लिम समाज की उस समय की और आज की मनःस्थिति का दर्शन करने के लिए अलीगढ़ विश्वविद्यालय का उदाहरण दिया जा सकता है। विभाजन की माँग को समर्थन देकर हमने अपना भविष्य यहाँ के बहुजन समाज के हाथों में सौंप दिया है, यहाँ का हताश मुस्लिम समाज तब ऐसा ही मानता था। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के तत्कालीन वाइस-चांसलर और मुस्लिम लीग के उत्तर प्रदेश के एक नेता नवाब मुहम्मद इस्माइल खाँ ने सन् १९४७ में नेहरू जी को कहलाया था कि अलीगढ़ विश्वविद्यालय के विषय में जो कुछ भी करना हो वह सरकार कर सकती है—उसे बंद करना हो तो खुशी से कर दे, पर १९६४ में वहाँ के विद्यार्थियों द्वारा किए गए दंगों के कारण विश्वविद्यालय की कार्य-व्यवस्था में सुधार करने की नीयत से सरकार द्वारा लिए गए निर्णय के विरुद्ध वहाँ के मुस्लिम समाज ने गजब ही ढा दिया और यहाँ तक स्पष्ट कह दिया कि सरकार को ऐसा कोई अधिकार नहीं है। यह अन्तर क्यों आया?

सच कहा जाये तो मुस्लिम सांप्रदायिकतावादी प्रवृत्ति में कोई भी अन्तर नहीं आया है। ये दोनों घटनाएँ इसी की सूचक हैं। परिस्थिति के दबाव में आकर उनकी यह प्रवृत्ति कुछ समय के लिए दब गई थी। धीरे-धीरे पुनः संगठित हो जाने के बाद वह पुनः पहले के से जोश में अपना काम करने लगी है।

यहाँ की मुस्लिम सांप्रदायिकतावादी सामर्थ्य का उतार-चढ़ाव पाकिस्तान की शासन-व्यवस्था की स्थिरता के उतार-चढ़ाव पर आधारित रहा है। यह बात चतुर राजकीय प्रेक्षकों के ध्यान में आये बगैर नहीं रहेगी। पाकिस्तान की राजकीय अस्थिरता के दिनों में यहाँ के मुसलमानों की सांप्रदायिक गतिविधियाँ ढीली पड़ गई थीं। अयूब खाँ ने पाकिस्तान में राजनीतिक स्थिरता स्थापित की। आर्थिक प्रगति की ओर ध्यान दिया। सैनिक सामर्थ्य बढ़ानी शुरू की। पाकिस्तान अब भारत से मुकाबला करने के लिए तैयार हो गया है। यह देखकर यहाँ के मुस्लिम राजनीतिक नेताओं ने मुसलमानों को संगठित करने की जोरदार तैयारियाँ शुरू कर दीं। पर युद्ध में पाकिस्तान को अपयश मिलने के कारण यहाँ की मुस्लिम सांप्रदायिक मनोवृति का तेज

भंग हुआ। और फिर यहाँ के नेतृत्व ने अपना मोहरा बदला। भारत की बदलती राजकीय परिस्थिति का उन्होंने अनुचित लाभ उठाने का निश्चय किया। मुश बरात की स्थापना तथा मुस्लिम मतों के आधार पर हिंदुओं से सौदेबाजी करने का मुशव्वरात का प्रयत्न उनकी इसी नई नीति का एक अंग था। मुस्लिम मतों और जनसंख्या के आधार पर हम यहाँ की राजनीति को कैसा भी मोड़ देने को बाध्य कर सकते हैं, यह मुस्लिम नेताओं को विश्वास हो गया। पर उत्तर भारत में सत्ता बदल जाने पर उर्दू को मान्यता नहीं मिल पायी। सौदेबाजी के परिणामस्वरूप रांची में दंगे हुए। इस कारण आज मुस्लिम नेतृत्व चकरा-सा गया है। परन्तु अपनी गलती क्या है, इस पर विचार करने की मन:स्थिति उनकी अभी तक नहीं है।

पाकिस्तान को समर्थन देने का ही यह परिणाम है, इसे प्रामाणिकता से मान्य करनेवाला शायद ही कोई मुसलमान मिले। हमारा कदम सही था, पकिस्तानी मुसलमानों को आत्म-निर्णय का अधिकार था, अखंड भारत में मुसलमानों की इससे भी अधिक दुर्दशा होती, हिन्दुओं के अत्याचारों से बेचारे मुसलमान छूट गये। पाकिस्तान को समर्थन देकर हमने अपने हक गुमाये नहीं हैं। हिन्दुओं से मुकाबला करके हम उन्हें प्राप्त कर लेंगे; ऐसा मैंने उत्तर भारत के अपने दौरे के दौरान दस में से नौ मुसलमानों को कहते हुए सुना है। इस पर से भारतीय मुसलमानों की मन:स्थिति की कल्पना की जा सकती है।

इससे यह स्पष्ट है कि भविष्य में यहाँ की इस्लामी राजनीति का निर्धारण देश की आँतरिक तथा बाह्य परिस्थितियों के आधार पर होनेवाला है। एक ओर तो यहाँ के मुस्लिम संप्रदायवादी नेता पाकिस्तानी और अन्य मुस्लिम देशों के बीच होनेवाले धर्म पर आधारित समझौतों की सशक्त सामर्थ्य का भारत पर प्रभाव डलवाने का प्रयत्न करेंगे और दूसरी ओर भारत की आन्तरिक अस्थिरता का लाभ उठाने का प्रयत्न भी करते रहेंगे। मुस्लिम जनसंख्या को बढ़ाते रहने का भी एक आयोजित प्रयत्न चल रहा है, यह बात भी निराधार नहीं है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक ने मुझ से बातें करते हुए बताया कि "जिस प्रकार क्यूबेक में फ्राँसीसियों की जनसंख्या बढ़ायी गयी, उसी प्रकार भारत में भी मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ा कर क्यूबेक में फ्राँसीसियों के समान यहां मुसलमानों के लिए एक स्वतन्त्र भूमि की रचना करना सम्पन्न हो सकेगा।" उनके ये उद्गार मुस्लिम मनोवृत्ति का यथार्थ दर्शन कराते हैं। (इन प्राध्यापक महोदय का आशय था कि क्यूबेक में फ्राँसीसी कैथो-

लिक धर्मावलम्बी हैं । अंग्रेज केनेडियन प्रॉटेस्टेंट होने के कारण कुटुम्ब नियोजन में विश्वास करते हैं । इसलिए कैथोलिक धर्मावलम्बी फ्रांसीसियों ने कुटुम्ब नियोजन न करके पिछले ७५ वर्षों में अपनी संख्या खूब बढ़ा ली ।) उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हमारे सामने कुछ सवाल उठ खड़े हो सकते हैं । पहले तो हमें पाकिस्तान के विषय में दृढ़ नीति स्वीकार करनी होगी । दृढ़ नीति का अर्थ यह नहीं कि पाकिस्तान के साथ सहयोग न किया जाये । जहाँ-जहाँ सहयोग देना आवश्यक लगे, वहाँ सहयोग अवश्य किया जाये । पर साथ ही कश्मीर के साथ अन्य सभी सीमाओं पर भी पाकिस्तान को मजबूती से रोकने के लिए दीर्घकालीन कार्यक्रम बनाना पड़ेगा । भारत-पाक संघर्ष निकट भविष्य में समाप्त हो जायेगा, ऐसी आशा लगा कर कोई भी कदम उठाना गलत सिद्ध होगा । लगभग ५०-७५ वर्षों तक हमें इस युद्ध का सामना करना पड़ेगा, यह गाँठ बाँध कर ही हमें बढ़ना होगा।

इस ओर हमारे राष्ट्रीय नेतृत्व ने कुछ भयंकर भूलें की हैं । उन्हें दोहराने से अब हमें बचना चाहिए । गाँधीजी की नीति थी कि पाकिस्तान तथा यहाँ के मुसलमानों से मृदु व्यवहार किया जाये, यह उनकी भूल थी । नेहरू जी की भूल थी कि वे चाहते थे पाकिस्तान से तो हमारा व्यवहार यथार्थवादी रहे, पर यहाँ के मुसलमानों से मृदु रहे । वल्लभ भाई की नीति थी कि पाकिस्तान तथा यहाँ के मुसलमानों से मजबूती से डट कर व्यवहार किया जाये । उनकी गलती इतनी ही रही कि पाकिस्तान तथा यहाँ के संप्रदायवादी मुसलमानों से कठोरता से व्यवहार करते समय वे उदार मतवाले मुसलमानों से मृदु व्यवहार करके उन्हें उचित स्थान देने की नीति नहीं आजमा सके ।

हमारे देश के कम्युनिस्टों और समाजवादियों ने भी उलट-पलट कर गाँधी जी और नेहरू जी की नीतियों को ही चलाया है और हिन्दू संप्रदायवादियों ने वल्लभ भाई की नीतियों को ही अपना आदर्श माना है । अब समय आ गया है कि इन दोनों नीतियों को त्याग कर हमारे देश के धर्म-निरपेक्ष कहानेवाले पक्ष यथार्थवादी नीति अविलम्ब अपनायें । इस सम्बन्ध में जनसंघ के एक गुट का उदाहरण देना अनुचित न होगा । कश्मीर में पँडित की लड़की के अन्तरधर्मीय विवाह के कारण हुए आन्दोलन के समय जनसंघ के तत्कालीन अध्यक्ष श्री बलराज मधोक तथा संसद सदस्य अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा किये गये निवेदनों में जो अन्तर दिखायी दिया, वह महत्वपूर्ण है । मधोक को यह विवाह होना ही नापसन्द था, पर वाजपेयी का आक्षेप था कि लड़की नाबालिग है । वाजपेयी ने स्पष्ट कहा है कि बालिग हो जाने पर लड़की को किसी से भी

विवाह करने का अधिकार है। वाजपेयी के एक और सन्तुलित विचार का उदाहरण देना अनुचित न होगा। पिछले भारत-पाक युद्ध के समय एक समाचार आया कि राजस्थान की बाड़मेर सीमा पर राजस्थान आर्म्स कॉंस्टीव्यूलरी के सैनिकों ने सीमा पर कुछ मुसलमानों पर अत्याचार किया और स्त्रियों पर बलात्कार किया। इस सम्बन्ध में समाजवादी नेता श्री मधु लिमये ने लोकसभा में एक प्रश्न पूछने का निश्चय किया तथा उस पर अन्य विरोधी दल के नेताओं से हस्ताक्षर माँगे। श्री वाजपेयी जनसंघ के नेता हैं। उन्होंने इस प्रश्न पर हस्ताक्षर कर दिये और यह मत व्यक्त किया कि किसी भी नागरिक पर अत्याचार होना मैं गलत मानता हूँ।

मुझे लगता है कि यही भूमिका अर्थात् अन्याय विरुद्ध आवाज उठाना, पर साथ ही साथ मुस्लिम सम्प्रदाय का सतत विरोध करना, मुस्लिम राजनीति को उचित मार्ग दर्शन करने में सफल होगी। इससे मुसलमानों में एक नये योग्य नेतृत्व का उदय होगा। जिन मुसलमान नेताओं पर आधुनिक संस्कार हुए हैं, वे जिस क्षण अल्पसंख्य और बहुसंख्य विचारों से मुक्त होंगे, उसी क्षण यहाँ की मुस्लिम मनोवृत्ति में हमें परिवर्तन होता नजर आने लगेगा।

(धर्मयुग से साभार)

पृष्ठ ४२ का शेष

का सम्मिश्रण है। अन्तिम अध्याय में भविष्य की ओर संकेत किया गया है और पुस्तक का पटाक्षेप पं० जवाहरलाल नेहरू के एक वक्तव्य से किया गया है। यह बात अति स्पष्ट है कि पं० नेहरू भारत की भौतिक उन्नति के जन्मदाता थे। अपने भाषण में वे आत्मा की बात करते हैं जो कि उनके भौतिक-आचरण के सर्वथा विपरीत बात थी।

भारतीय धर्म एवं संस्कृति के अन्तर्गत लेखक ने इस्लाम और ईसाइयत को भी माना है जो कि अभारतीय संस्कृतियाँ हैं। यदि ये संस्कृतियाँ भारत की ही हैं तो विदेशी संस्कृति किसे कहा जावेगा ? यह लेखक ने स्पष्ट नहीं किया।

किसी महापुरुष ने कहा है कि पुस्तकें एकान्त में मनुष्य की सबसे बड़ी साथी होती हैं। अतएव संक्षेप में समालोच्य पुस्तक पठनीय है और कुछ अँशों में मननीय भी है। पुस्तक निश्चय ही पठनीय है, क्योंकि सभी पुस्तकें पठनीय ही होती हैं और इसीलिये लिखी भी जाती हैं। इति।

—राजेन्द्र सिंह

साहित्य-समीक्षा

भारतीय धर्म एवं संस्कृति—लेखक डा० बुद्ध प्रकाश, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय; प्रकाशक—मीनाक्षी प्रकाशन, बेगमब्रिज, मेरठ; मूल्य—६ रुपये पृष्ठ संख्या—२८१ ।

भारतीय धर्म एवं संस्कृति में आस्था रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह एक प्रसन्नता की बात होनी चाहिए कि अब इतिहासकार भी धर्म और संस्कृति की चर्चा करने लग गये हैं। वर्तमान भौतिक उन्नति के अशान्त एवं दूषित वातावरण से ऊबकर मनुष्य जब धर्म की ओर पत्र बढ़ाने का प्रयत्न करता है तो वह इसी बात को सिद्ध करता है कि अन्तिम विजय धर्म की होती है। इतिहासकारों ने धर्म एवं संस्कृति पर अपनी लेखनी चलाकर वास्तव में एक सराहनीय कार्य किया है। इसी दिशा में एक नवीनतम प्रयास प्रसिद्ध इतिहासकार डा० बुद्ध प्रकाश ने "भारतीय धर्म एवं संस्कृति" नामक पुस्तक में किया है। पुस्तक में भारतीय धर्म एवं संस्कृति के अनेक पहलुओं पर विद्वान् लेखक ने यथासम्भव प्रकाश डाला है। इसके लिये लेखक बधाई के पात्र हैं।

भारतीय संस्कृति का प्रादुर्भाव लेखक सर्वप्रथम सिन्धु-घाटी से मानता है। भारतीय संस्कृति के आरम्भ को सिन्धु-घाटी से मान कर लेखक ने पाश्चात्य-परम्परा को पूर्ण रूपेण सुरक्षित रखने का प्रयास किया है। अपनी पुस्तक के प्रथम-अध्याय के प्रथम वाक्य में लेखक ने लिखा है—

"पुरातत्त्व के दृष्टि से भारतीय धर्म और संस्कृति का विकसित रूप सबसे पहले सिन्धु-सरस्वती के क्षेत्र में मिलता है।"

इस विषय में लेखक की अपनी दृष्टि क्या है? यह लेखक ने स्पष्ट नहीं किया। पुरातत्त्व-विभाग की पहुँच कहाँ तक है? संस्कृति क्या है? धर्म क्या है? क्या पुरातत्त्व-विभाग धर्म के स्वरूप को बता सकता है? इन शास्त्रीय प्रश्नों के झगड़े में न पड़कर लेखक भारतीय धर्म एवं संस्कृति पर अपनी लेखनी द्वारा शब्दों की रचना अविरल रूप से करता ही जाता है। शब्दों का ताना-बाना इस सुलझे एवं सुविचारित रूपसे बुना गया है कि पाठक को धर्म एवं संस्कृति को जानने के लिए परिश्रम करना ही नहीं पड़ता।

यह कहा जाता है कि सभ्यता और संस्कृति में अन्तर होता है। परन्तु लेखक इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं मानता। कदाचित् इसीलिये मोहन-

जोदाड़ो तथा हड़प्पा की सभ्यता को लेखक संस्कृति का नाम देता है।

संस्कृति क्या है ? इसको जानने के लिये सभ्यता का जानना आवश्यक है। एक मनुष्य घोड़ा-गाड़ी रखता है अथवा मोटरकार, वह पैंट पहनता है अथवा पाजामा, महल में रहता है अथवा झोंपड़ी में—ये सभी रहन-सहन और रख-रखवा के साधन सभ्यता के अन्तर्गत आते हैं। दूसरी ओर वही मनुष्य झूठ बोलता है अथवा सत्य, ज्ञानी है अथवा अज्ञानी—ये बातें संस्कृति के नाम से पुकारी जाती हैं। यदि इसी बात को दूसरे शब्दों में कहा जाय तो शरीर से सम्बन्धित बातें सभ्यता तथा मनुष्य के मन, बुद्धि और आत्मा से सम्बन्धित बातें संस्कृति कहलाती हैं। पुरातत्त्व-विभाग सभ्यता के विषय में तो बतला सकता है, परन्तु संस्कृति के विषय में वह मौन है। इस लिये कहा जा सकता है कि किसी राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृत के इतिहास में पुरातत्त्व का प्रयोग करना भ्रामक है। उदाहरण के रूप में बड़े घरानों में घरों को सजाने के लिये छोटे-छोटे "मॉडलों" का प्रयोग किया जाता है। कई घरानों में चप्पल एवं जूते तथा झोंपड़ी आदि के छोटे-छोटे मॉडल मेज पर रक्खे होते हैं। मान लीजिए कि पृथिवी पर भूकम्प आता है और वर्तमान सभ्यता काल के गर्त में अस्तित्त्वहीन हो जाती है। दस सहस्र वर्षों के पश्चात् का पुरातत्व विभाग खण्डहरों की खुदाई करवाता है और उसे २-२½ इंच लम्बी चप्पलें और ८-९ इंच ऊँची झोंपड़ी मिल जाती है। सो क्या पुरातत्त्व-विभाग इसका यह अर्थ नहीं लगायेगा कि आज से १०,००० वर्ष पूर्व का मानव इतना छोटा था कि वह ८ इंच की झोंपड़ी में रहता था और इसके प्रमाण में जूते (२-२½ इंच लम्बे) भी प्राप्त हुए हैं ?

पुरातत्त्व विभाग द्वारा निकाला गया उक्त परिणाम कितना हास्यस्पद होगा, इसका अनुमान सरलता से लगाया सकता है। पुस्तक के प्रथम अध्याय के अन्त में पृष्ठ ७ पर लेखक लिखता है कि—

"एक मृद्भाण्ड पर बकरा, गाय या बैल और कुत्ता अँकित है जिससे शायद पंचौदन बकरे की बलि की तरफ इशारा हो। सामान्य जनता (सिन्धु-सरस्वती की जनता) को जादू टोने-टोटकों में भी विश्वास था और बहुत सी मुद्राएँ शायद गण्डे-ताबीज का काम देने के लिये बनायी गई हों।"

लेखक के उपर्युक्त वाक्यों में 'शायद' शब्द का खुलकर प्रयोग किया गया है जिससे पुरातत्त्व-विभाग की असमर्थता स्पष्ट रूप से झलकती है। अतएव सभ्यता एवं संस्कृति में अन्तर माननेवाला कोई भी विचारवान व्यक्ति लेखक की उक्त मान्यता से असहमत हुए बिना नहीं रह सकता। ऐसे व्यक्ति

तर्क भी करने लग जाया करते हैं। इस दृष्टि को देखते हुए लेखक ने समस्या का हल एक ही वाक्य में कर दिया है। लेखक स्पष्ट कर देता है कि—

"जब तक सिन्धु-सरस्वती काल की लिपि नहीं पढ़ी जाती उस वक्त तक उसके धर्म और संस्कृति के बारे में कुछ विश्वास से नहीं कहा जा सकता।"

दूसरे अध्याय में लेखक ने वैदिक धर्म एवं संस्कृति पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। यह माना जाता है कि वैदिक धर्म एवं संस्कृति का विषय जितना अधिक गहन है, उतना ही अधिक शुष्क भी है। इसलिये इस शुष्क विषय में हास्यरस की गंगा को प्रवाहित कर लेखक पाठक की विषय से नीर-सता को दूर करने का प्रयत्न करता है। कुछ उदाहरण, देखिये—

"वेद सत्य है, सत्य काल से परे है, अतः वेद शाश्वत है।"

—पृष्ठ ८

यह एक सामान्य वाक्य है जिसको वेद के श्रद्धालु प्रायः बोला करते हैं। इस वाक्य को बार-बार सुनते-सुनते आज के विद्वानों के कान पक गये हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि उसमें कुछ रोचकता आनी चाहिये। रोच-कता लाते हुए लेखक वेदों के विषय में एक विपरीत मत देता है—

"इस प्रकार वेद के शाश्वत होने हर भी इसका बाहरी परिधान ऐतिहासिक है और यह भारतीय सांस्कृतिक विकास की विशेष अवस्था का सूचक है।"

—पृष्ठ ८

भारतीय मत के पक्ष में रहनेवाले विज्ञ पाठकों के लिए यह बड़े सन्तोष की बात है कि लेखक के मत में आर्य बाहर से नहीं आये थे। इस सिद्ध बात को सिद्ध करने के लिये लेखक वेदों के प्रमाण देता है। इस सन्दर्भ में वह लिखता है—

"यदि वेद के अपने साक्ष्य को लिया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि आर्य ऋषि आरम्भ से ही सप्तसिन्धु-प्रदेश में रहते और इसे देव-निर्मित देश समझते थे।

—पृष्ठ ८

इस प्रकार लेखक वेदों से सरस्वती नदी का भौगोलिक वर्णन निका-लता है जो कि लेखक की प्रथम मान्यता (वेद सत्य है, सत्यकाल से परे है, अतः वेद शाश्वत है) के विरुद्ध जा पड़ता है। नदी का धात्वर्थ है चलने वाली, बहने वाली और वेग वाली। वेदों में सरस्वती शब्द वाणी और किरण के रूप में आया है। वाणी और किरण दोनों ही चलने वाली, वेग वाली और बहने वाली होती हैं। इसलिये उनको भी नदी कहा जाता है। केवल सरस्व-त्यादि शब्द देख कर वेदों से ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक वर्णन निकालना

भ्रामक है। (सरस्वती शब्द पर शाश्वतवाणी के मई १९६८ के अंक में विचार हो चुका है) अतएव यह पूर्णतः सिद्ध है कि वेदों में ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक वर्णन नहीं है। वेद को अपौरुषेय मानने वालों की श्रद्धा न्यून न हो जाय, इसका ध्यान लेखक ने पूर्ण-रूपेण रखा है। इसी दृष्टिकोण को सम्मुख रखते हुए, वह लिखता है—

'अतः वेद भारतीय धर्म एवं संस्कृतिक का शाश्वत और अक्षय कोष है।'

—पृष्ठ ८

इसी पृष्ठ पर लेखक लिखता है—'वेद का भाषाबद्ध रूप सिन्धु सरस्वती के प्रदेश में विकसित हुआ।' इसका प्रमाण देना लेखक ने अनावश्यक समझा है। इसीलिये सिन्धु-सरस्वती प्रदेश की स्थिति पर भी विचार नहीं किया गया है। लेखक ने 'सप्तसिन्धु' नामक प्रदेश का भी उल्लेख किया है और उसकी स्थिति पर विचार करना पूर्णतः अनावश्यक समझा है। और विचार करना आवश्यक भी नहीं था क्योंकि भारतीय इतिहास में इस नाम का कोई प्रदेश था ही नहीं।

पाश्चात्य पद्धति के आधुनिक भारतीय इतिहासकार पंजाब को सप्त-सिन्ध प्रदेश बताते हैं। पंजाब प्रान्त में प्राचीनकाल में सात मुख्य नदियाँ कहीं भी नहीं बहती थीं, इस कारण उसका नाम सप्तसिन्धु प्रदेश नहीं हो सकता था। पंजाब को पंच नदी वाला अर्थात् पंचनद अवश्य कहा जाता था। सप्त-सिन्धु शब्द वेदों में अनेक स्थलों पर आया है परन्तु वहाँ यह शब्द शरीरस्थ सात इन्द्रियों तथा द्युलोक स्थित सात किरणों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतएव यह बात पूर्णतः स्पष्ट है कि भारतीय इतिहास में सप्तसिन्धु नाम का कोई प्रदेश नही था। आधुनिक इतिहासकारों ने कल्पना की उड़ान भरी है जिसका व्यापक रूप लेखक ने दर्शाया है। कदाचित् यह सभी कुछ शुष्क विषय को रोचक एवं सरल बनाने के लिए किया गया प्रतीत होता है।

लेखक द्वारा उत्पन्न की रोचकता उस समय और भी अधिक बढ़ जाती है, जब समालोच्य पुस्तक के निम्न स्थलों को पढ़ते हैं—

'अथर्ववेद भी ऋग्वेद से लगभग आधा है, इसके पहले दस कांडों में मन्त्र हैं और बाद के दस में गद्य-भाग भी है। यद्यपि इसमें टोने-टोटकों की बहुतायत है, इसका करीब पाँचवाँ भाग ऋग्वेद से लिया गया है और इसका पन्द्रहवाँ कांड उच्चतम दार्शनिक विचारों से भरा हुआ है।' —पृष्ठ ६

वेद-मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि होते थे। ऋषियों ने वेद-मन्त्रों की व्याख्या की थी। उस व्याख्या को कई भागों में बाँट दिया गया था। इनको वेदों की

शाखा कहते थे। ये वेद-शाखाएँ वेद-मन्त्रों की व्याख्या मात्र ही थीं जो कि पुस्तक रूप में थीं। परन्तु लेखक का विचारित मत है कि—

'वेदों का पठन-पाठन मौखिक था। विद्वानों के सम्प्रदाय, जिन्हें चरण कहते थे, अपने-अपने ढंग से इसका परायण करते थे। इससे विभिन्न पाठ-परम्पराएँ चल पड़ी थीं। इन्हें शाखा कहते हैं।' —पृष्ठ ९

इसी प्रकार ब्राह्मण-ग्रन्थ भी वेद-मन्त्रों का अर्थ बताने के लिए रचे गये थे। परन्तु लेखक लिखता है—

'वेद के धार्मिक उपचार का वर्णन करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई।' —पृष्ठ ९

लेखक का विश्वास है कि अति प्राचीनकाल में वेद लिपिबद्ध नहीं हुए थे, यद्यपि महाभारत में मनुष्य-सृष्टि के प्रथम पुरुष ब्रह्मा द्वारा वेद लिखने का उल्लेख आया है। अपने विश्वास पर दृढ़ रहता हुआ लेखक आश्चर्य करता है कि 'यह विश्व का एक महान् आश्चर्य है कि यह इतना विशाल साहित्य मौखिक सँक्रमण द्वारा अत्यन्त शुद्ध रूप से सुरक्षित रहा।' अनेक विश्वासों के अतिरिक्त लेखक का यह भी विश्वास है कि—

'इनके अलावा शरद् या वसन्त में पशुधन की वृद्धि के लिए भूलगव यज्ञ किया जाता था, जिसमें रुद्र को बैल की बली दी जाती थी।'

—पृष्ठ १५

'तीसरे दिन अग्नि और सोम को बकरे की बलि दी जाती है।'

—पृष्ठ १५

''कुछ यज्ञों में, जैसे निरूढ़ पशुबन्ध और पर्यग्निकरण में पशु बलि दी जाती है। किन्तु इसे सामान्यत: अच्छा नहीं समझा जाता। इसलिए पशुवध के समय लोगों के मुँह फेरने और इसके अपराध के लिए देवताओं से क्षमा माँगने के मन्त्रों को पढ़ने का विधान है।'

'सपिण्डीकरण श्राद्ध द्वारा मृत को पितरों में शामिल किया गया है।'

—पृष्ठ १६

पुस्तक के उपर्युक्त स्थलों को पढ़कर पाठक यह सरलता से समझ सकता है कि लेखक को वेदों का यथार्थ ज्ञान नहीं है। परन्तु यह पाठक की महान् भूल होगी क्योंकि दूसरी ओर लेखक लिखता है—

'वैदिक धर्म अन्धविश्वास से रहित और बुद्धिवाद पर आधारित है।'

—पृष्ठ १८

इससे सिद्ध होता है कि लेखक को वेदों का यथार्थ ज्ञान है। तो फिर

लेखक द्वारा लिखी परस्पर विरोधी बातों का क्या अर्थ लिया जाय ? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यह सब कुछ रोचकता बढ़ाने के लिए ही किया गया है । मोक्ष प्राप्ति के लिए वेदों में कहा है कि—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णः तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय १।।

—यजुर्वेद ३१/१८

अर्थात्—उस आदित्य स्वरूप ज्योतिष्मान परमात्मा को मैं जानता हूँ । उसी के सहकार से मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होता है, इसके सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

मोक्ष-स्थान कहाँ है, इस विषय में लिखा है—

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यांउ वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।
यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दों परि स्रव ।।
यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्राभूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।
यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।
यत्र कामा निष्कामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्तः कामस्तत्रा : माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।

—ऋग्वेद ६। ११३। ६-११

उपर्युक्त मन्त्रों में मोक्ष स्थान की स्थिति बतलायी गई है और मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गयी हैं । वह स्थान छुकोल से ऊपर माना गया है ।

परन्तु लेखक का विचार सर्वथा विपरीत है । लेखक का कथन है कि—

'यह महत्त्व की बात है कि वेद में नरक की चर्चा नहीं है, न मोक्ष आदि का बखेड़ा है ।' वेद में संसार-त्याग और संन्यास की चर्चा तक नहीं है ।'

—पृष्ठ १७

वेदों में पशु-बलि की बात मानकर लेखक ने श्री जगजीवन राम जी के दिये वेद-विषयक वक्तव्य को भी मात कर दिया है । इससे लेखक की विशेष

सूझ बूझ का परिचय मिलता है और पूर्णतः सिद्ध हो जाता है कि इस दूसरे अध्याय में लेखक ने विषय को 'रोचक' बनाने का सफल प्रयास किया है। परिणामस्वरूप स्थान-स्थान पर परस्पर विरोधी बातों का बाहूल्य पाया जाता है।

पुस्तक के तीसरे अध्याय में लेखक ने उपनिषदों और प्राचीन काव्यों के धर्म का दर्शन कराया है। महाभारत की रचना के विषय में लेखक महोदय लिखते हैं कि 'यह (महाभारत) एक हाथ की और एक समय की रचना नहीं है।' —पृष्ठ २६

इसी प्रकार गीता के विषय में उनका मत है—

'महाभारत रूपी समुद्र का मथा हुआ अमृत भगवद्गीता में सुरक्षित है। परम्परा के अनुसार कृष्ण ने कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अर्जुन का मोह दूर करने के लिए इसका प्रवचन किया, किन्तु वर्तमान रूप में यह किसी चतुर विचारक की रचना है, जिसका लक्ष्य सब मतों, दृष्टियों, सिद्धान्तों और पद्धतियों का समन्वय कर सम्पूर्ण सत्य का दर्शन करना था।' —पृष्ठ ३१

यहाँ लेखक ने प्रमाण देना अनावश्यक समझा है। इस प्रकार तीसरा अध्याय भी समाप्त हो जाता है। इसके पश्चात चौथे, पाँचवें तथा छटे अध्याय में क्रमशः बौद्ध, जैन और पौराणिक मतों का परिचय दिया गया है। सातवें अध्याय में दर्शन शास्त्रों का उल्लेख है। आठवाँ अध्याय राजपूती काल का है। नवें अध्याय से ग्यारहवें अध्याय तक इस्लाम मत का चित्र खींचा गया है। बारहवाँ अध्याय सिखों और मराठों के आन्दोलन का रक्खा गया है। गुरु गोविन्द सिंह के त्याग और तपस्या की सराहना करते हुए लेखक लिखता है—

"यह मानना कि उन्होंने (गुरु गोविन्द सिंह ने) अनादि काल से चलती हुई भारतीय परम्परा से भिन्न कोई सम्प्रदाय स्थापित किया, सर्वथा अनुचित है।" —पृष्ठ १६१

अतः पंजाबी सूबा माँगने वालों को गुरु गोविन्द सिंह के त्याग और तपस्या, जो उन्होंने हिन्दू-धर्म (वैदिक धर्म) की रक्षा के हेतु की थी, से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

तेरहवें अध्याय में ईसाइयों का भारत से हुए सम्पर्क के विषय में लिखा गया है। चौथे अध्याय से तेरहवें अध्याय तक लेखक ने सभी मत-मतान्तरों का निष्पक्ष रूप से उल्लेख किया है। चौदहवें अध्याय में १९ वीं शताब्दी का वर्णन आया है और पन्द्रहवें में २० वीं सदी के प्रधान विचारों

शेष पृष्ठ ६५ पर
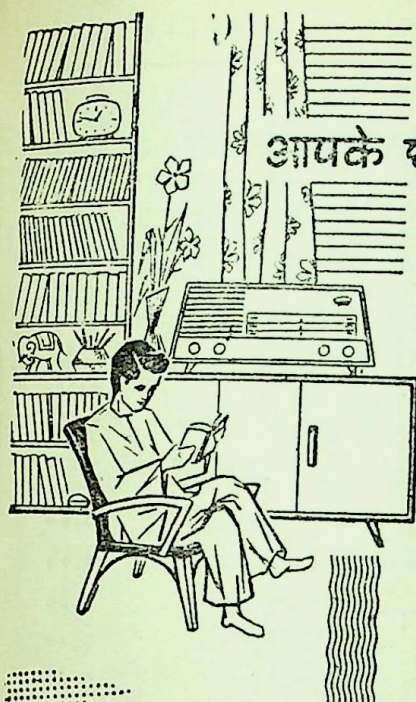
आपका पुस्तकालय और हमारा सहयोग

१. हमारी पुस्तकालय योजना के सदस्य बनिये । केवल दो रुपये मनी-आर्डर द्वारा भेजकर आप हमारे सदस्य बन सकते हैं ।

२. हमारी नटराज पाकेट बुक्स में से (सूची कवर पृष्ठ ४ पर) आप अपनी पसन्द की १५ रुपये की चुनी हुई पुस्तकें मंगवाइये और हम केवल १३ रुपये में ये पुस्तकें आपको भेजेंगे । डाक व्यय लगभग दो रुपये हम देंगे । इसके साथ ही—

३. एक लोहे की तार का बना हुआ सुन्दर रैक जिसमें आप अपनी पुस्तकें लगा सकते हैं, बिना मूल्य हम अपनी ओर से आपको भेंट में देंगे ।

४. प्रति दो मास बाद जब हमारी नयी पुस्तकें प्रकाशित होंगीं, हम आपको सूचना भेजेंगे । तथा आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें सात रुपये में आपको भेजी जायंगी । यदि नवीन प्रकाशनों में से कोई पुस्तक आप नहीं लेना चाहेंगे तो आप उसके स्थान पर कोई अन्य उसी मूल्य की पुस्तक मंगवा सकेंगे ।

५. बीच की अवधि में कभी भी आप आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें केवल सात रुपये में मंगवा सकेंगे ।

भारती साहित्य सदन,

३०/६० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

नटराज पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
नकटी नानी	श्री माणिकचन्द्र	२.००
नलिनी	,,	२.००
अधूरा स्वप्न	श्री संजय	२.००
छोटे-बड़े मनुष्य	,,	२.००
साम्यवाद से संघर्ष	च्यांग काई शेक	२.००
बदलती करवटें	श्री मनमोहन सहगल	१.००
टूटा टी सैट	भगवती प्रसाद वाजपेयी	२.००
दो मार्ग	प्रकाशभारती	२.००
मोपला-गोमान्तक	श्री सावरकर	३.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ताकुमार	१.८०
शक्तिपुत्र शिवाजी	,,	१.५०
सत्यकाम सोक्रातेज (प्लैटो के संवाद)	,,	१.५०

पाकेट माला में श्री गुरुदत्त की रचनाएँ

पुस्तक	मूल्य
अन्तिम यात्रा	१.००
एक और अनेक	३.००
कामना	२.००
खेल और खिलौने	२.००
गुण्ठन	३.००
गृह संसद	२.००
चंचरीक	१.००
छलना	२.००
जमाना बदल गया—१	२.००
,, ,, ,, —२	२.००
,, ,, ,, —३	२.००
,, ,, ,, —४	२.००
,, ,, ,, —५	२.००
,, ,, ,, —६	२.००
,, ,, ,, —७	२.००
,, ,, ,, —८	३.००
,, ,, ,, —९	३.००
जीवन ज्वार	३.००
देश की हत्या	३.००
दो भद्र पुरुष	२.००
द्रष्टा	२.००
धरती और धन	३.००
धर्म और समाजवाद	३.००
नयी दृष्टि	३.००
नये विचार नई बातें	२.००
निष्णात	२.००
निर्मल	२.००
पाणिग्रहण	३.००
प्रेरणा	३.००
बहती रेता	३.००
बीती बात	१.००
भाग्य का सम्बल	२.००
मानव	३.००
मायाजाल	३.००
यह सब झूठ है	२.००
लालसा	३.००
लोक परलोक	२.००
विडम्बना	३.००
विद्यादान	२.००
संस्खलन	२.००
सम्भवामि युगे युगे—१	२.००
,, ,, —२	२.००
साहित्यकार	२.००

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं राष्ट्र भारती प्रेस, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनॉट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

सितम्बर १९६८ वर्ष ८—अंक ९ रजि० क्र० ६६८९/६०

5-9-68

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।

ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
पं० भगवद्दत्त
प्रा० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७-एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

स्वतंत्रता के इक्कीस वर्ष

प्रति वर्ष १५ अगस्त को देश में हर्षोल्लास मनाया जाता है। यह तिथि, सं० २००४ वि० तदनुसार सन् १९४७ ई० से भारत में हर्ष का विषय बनी हुई है। परन्तु जिन्होंने सन् १९४७ की इस तिथि का स्वयं-भुव हर्ष दिल्ली में देखा है और तदनन्तर लाल किले पर होने वाले इस तिथि के समारोहों को वर्षानुवर्ष जाकर देखने और सुनने का प्रयास किया है, वे हमारे इस कथन की साक्षी भरेंगे कि समय व्यतीत होने के साथ-साथ इस अवसर पर होने वाला हर्षोल्लास गम्भीरता, निराशा और भय में विलीन होता जा रहा है।

तब से लेकर देश का बहुत विस्तार हुआ है। इसकी जन-संख्या में भी आशातीत वृद्धि हुई है। राजधानी में भव्य भवन बहु संख्या में दृष्टिगोचर होते हैं, साथ ही देश भर में झोपड़ियों, खोखों और निवासविहीनों की संख्या में भी अपार वृद्धि हुई है। नगरों के सिनेमा घरों की संख्या और उनमें जाने वाले दर्शकों की संख्या जाननी सुगम नहीं रही। परन्तु इसके साथ ही नगरों में होने वाली

चोरियों, डकैतियों, हत्याओं, अपहरणों और बलात्कारों की संख्या में भी कम वृद्धि नहीं हुई। धनी-मानी लोगों के लिये होटलों में भोजन-व्यवस्था पर प्रति व्यक्ति, प्रति समय चालीस-पचास रुपये का व्यय एक साधारण बात समझी जाने लगी है और ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं हो रही, जिनको घी, दूध, हरी शाक-भाजी के दर्शन किए वर्षों व्यतीत हो गये हैं। यह सत्य है कि विवाहोत्सवों पर व्यय होने वाली धन-राशि बहुत बढ़ गयी है, परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि इन उत्सवों में होने वाले आनन्दोल्लास का अनुभव वह नहीं रहा, जो आज से चालीस-पचास वर्ष पूर्व वर-वधू, सास-श्वसुर, भाई-बन्धुओं अथवा मोहल्ले-टोले के रहने वालों में होता था।

धन-वैभव और निर्धनता, महल-अटारियों और झुग्गी-झोपड़ियों तथा होटलों के डिन्नर खाने वालों और सूखी चबाने वालों में इक्कीस वर्ष पहले के अनुपात और वर्त्तमान अनुपात में अन्तर आया है और अनुपात का यह अंतर ही १५ अगस्त के समारोहों को देखने वालों के उल्लास के दु:खों में विलीन कर निराशा, आशंका और भय के लक्षणों में परिवर्तित कर देता है।

स्वराज्यारम्भ के समय, पंजाब से लुटे-पिटे, उजड़ हुए तथा सम्बन्धियों को आततताइयों के छुरों का शिकार होता देखकर, रेल गाड़ियों में पशुओं की भाँति लदे हुए भारत में अज्ञात भविष्य की ओर आते हुए लोग भी जोश में महात्मा गाँधी की जय-जयकार करते देखे जाते थे। १५ अगस्त सन् १९४७ को, दिल्ली में अपार जन-समूह का, संसद भवन के सामने महात्मा गाँधी, पण्डित नेहरू और लार्ड माउण्ट बेटन की जय-जयकार के गगन भेदी घोषों को देखने वाले, जब आज जवाहर लाल नेहरू तथा गाँधी का नाम लेते हुए लज्जा अनुभव करते हैं, तो पन्द्रह अगस्त के समारोह की आभा मलिन होने का कारण समझ में आने लगता है।

क्या हुआ इन इक्कीस वर्षों में और वह सब क्यों हुआ है? इस समय जन-जन के मन में आतंक और भविष्य की आशंका किस कारण उत्पन्न हो गई है? यह विचार करने का विषय बन गया है।

वर्तमान स्थिति तो यह है कि भारत के पश्चिमोत्तर और पूर्वी सीमा पर एक दैत्य के रूप में पाकिस्तान विराजमान है। यह ठीक है कि ढाई वर्ष पूर्व हमने इस दैत्य के मुख पर एक घूँसा लगाया था और उस घूँसे से दैत्य के कुछ दाँत हिल गये थे, परन्तु अपने घूँसे वाले हाथ को भी कम चोट नहीं आई थी। हमारी शौर्यवान सेना, विशेष रूप से सेना के अधिकारी वर्ग ने वह बलिदान दिया था कि जिससे हमारी सरकार की अयोग्यता छुप गयी थी।

कौन नहीं जानता था कि हमारे शस्त्रास्त्र पाकिस्तानी शस्त्रास्त्रों से घटिया थे, कम थे और पुराने थे। इस पर भी हमारे सैनिकों का उत्साह अदम्य था। परन्तु समय बीतने पर आज पुनः वही दैत्य पहले से अधिक समृद्ध, बलवान्, शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर हमारी सीमाओं पर दिन-रात इसी बात की घात लगाए बैठा है कि किस प्रकार भारत का कौन सा अंग नोच कर खा जाये ?

हमारी उत्तरी सीमा पर पाकिस्तान से भी भयंकर दैत्य चीन आ खड़ा हुआ है। उसने भी अपने तीखे दाँत सन् १९६२ में दिखाये थे और जो कुछ तब हुआ था, उसका स्मरण करते हुए लज्जा अनुभव होती है। सेना के जानकार, लेखक एवं प्रसिद्ध पत्रकार डो० आर० मनकेकर ने यह रहस्योद्घाटन किया है कि उस समय साठ हजार ऐसे भारतीय सैनिक थे, जिनके पास शस्त्र के नाम पर बन्दूकें भी नहीं थीं। स्वचालित शस्त्रास्त्रों को हमारे सुरक्षा मंत्री तथा प्रधान मन्त्री व्यर्थ के अस्त्र मानते थे। चीन से नित्य अपमानित, आतंकित और पीड़ित होने को तत्कालीन प्रधान मन्त्री संसद और मन्त्री-मण्डल से छिपाकर रखने का भरसक यत्न करते रहे थे।

इस दैत्य की स्थिति यह है कि अपने घर के झगड़ों में व्यस्त होते हुए भी समस्त भूमंडल में इसको भय और घृणा से देखा जाता है। यह भी हमारी उत्तरी सीमा पर अपने तेज खूनी नाखूनों को, हम पर झपटने के लिये बढ़ाए बैठा है।

भूमण्डल में कोई ऐसा देश अथवा राष्ट्र नहीं, जिस पर हम विश्वास से भरोसा कर सकें। अब स्थिति यह है कि यदि चीन अथवा पाकिस्तान हमारा अनिष्ट करने का विचार करें तो हम किसी भी देश से रत्ती भर की भी सहायता की आशा नहीं कर सकते। हमारा कोई मित्र नहीं है। कारण यह है कि हमारे देश का सत्ताधिकारी दल अथवा विपक्षी दल कोई भी और किसी भी देश से सामरिक समझौता करने के लिये तैयार नहीं है। हम किसी के मित्र, सहायक अथवा सहयोगी नहीं, अतः हमारा भी कोई मित्र, सहायक अथवा सहयोगी नहीं। हम कुछ एक देशों से मौखिक सहानुभूति रखते हैं और वे भी हमारे साथ उसी प्रकार की मौखिक सहानुभूति प्रकट कर देते हैं। विशेषता यह है कि हमारी मौखिक सहानुभूति कम्युनिस्ट और मुस्लिम राष्ट्रों से है। और ये दोनों ही विचार पद्धतियां भारत में आतंकित-उपद्रव मचाने के लिए लंगर-लंगोटे कस रही हैं और कम्युनिस्ट तथा मुस्लिम राष्ट्र हमारे देश में इन उपद्रवियों को प्रोत्साहन देते हैं।

जिन राष्ट्रों से हमारी विचार पद्धति मिलती है, उनका हम विरोध करते हैं। कम से कम उनसे हमारा उतना सहयोग नहीं, जितना कि अपने ही शत्रुओं से है। जापान, इण्डोनीशिया, कम्बोडिया, फारमोसा इत्यादि देशों के प्रति हमारी तिरस्कार की भावना रहती है और अरब, सीरिया, अलजीरिया इत्यादि देशों के प्रति हमारी सहानुभूति है।

देश-विभाजन से उत्पन्न समस्या आज २२ वर्ष बाद भी विकराल मुख फैलाये विद्यमान है। देश-विभाजन का बीजारोपण हुआ था सन् १९०६ में। इसकी सिंचाई हुई थी, सन् १९१६ एवं १९२० से २४ में। विभाजन रूपी पेड़ के काँटे निकलने लगे थे सन् १९३७ में और ये चुभने लगे थे सन् १९४० से। सन् १९४७ में इन काँटों का चुभना असह्य हुआ तो हमने विभाजन स्वीकार कर लिया। परन्तु उन काँटों को जला कर राख करना तो दूर, उनको हमने रूई में लपेट कर अपनी छाती से लगाये रखा है। उन काँटों का पालन-पोषण भी हमने यत्न से किया और अब वे काँटे पुनः वैसे ही चुभने लगे हैं, जैसे सन् १९४० में चुभने लगे थे।

इस बार एक भय की स्थिति यह हो गई है कि उन काँटों को अपने राज्य के संरक्षण के साथ-साथ विदेशों से भी पोषक सामग्री मिल रही है। पाकिस्तान और चीन उन तत्त्वों को, जो हमने अपने संरक्षण में ले रखे हैं, धन-जन से सहायता दे रहे हैं।

देश-विभाजन के स्वाभाविक परिणामों को हमने स्वीकार नहीं किया। पाकिस्तान मुसलमानों का देश बना था तो भारत को हिन्दुओं का देश बनना चाहिए था। अन्यथा देश-विभाजन स्वीकार नहीं करना चाहिए था। उस स्थिति में युद्ध होता। यदि युद्ध से भय लगता था तो विभाजन के स्वाभाविक परिणामों को स्वीकार कर यहाँ हिन्दू राज्य स्थापित करना चाहिए था। ऐसा नहीं किया गया, परिणाम यह हुआ है कि विभाजन रूपी वृक्ष के काँटे पुनः बढ़ते गए और तीखे भी हो गए हैं।

कश्मीर, तिब्बत, नागा देश, लद्दाख, नेफा हमारे देश की उत्तरी सीमा के द्वार हैं। ये सभी द्वार शत्रुओं के हाथ में हैं। यह ऐसे ही हैं जैसे कि किसी के सिर पर फाँसी का फंदा लटक रहा हो। इनमें से कोई भी समस्या सन् १९४७ से पूर्व विद्यमान नहीं थी।

कश्मीर में शेख अब्दुल्ला ने प्रथम बार सन् १९३१ में और फिर सन् १९४६ में विद्रोह किया था, परन्तु अंग्रेज शासकों ने राजा की सहायता से वह विद्रोह शान्त कर दिया था। किन्तु सन् १९४७ में जो विद्रोह हुआ, वह अभी तक

शान्त नहीं हुआ ।

चीन के तिब्बत पर पहले भी दाँत थे, परन्तु चीन का साहस नहीं होता था कि उस ओर दृष्टि कर सके । अंग्रेज सिंह की भभक के सामने वह दुबक कर बैठा रहता था ।

स्वराज्य सरकार बनते ही कश्मीर पर आक्रमण हुआ और एक तिहाई से भी अधिक भाग पाकिस्तान के अधिकार में चला गया । कश्मीर का सबसे उपयोगी भाग गिलगित भारत के हाथ से निकल गया । इसी प्रकार स्वराज्य सरकार बनी सन् १९४७ में और १९५० में चीन ने बलात् तिब्बत पर अपना अधिकार कर लिया ।

जैसे पाकिस्तान स्वीकार कर हमने भारत के लिए सदा का संकट संजो लिया है, वैसे ही चीन के तिब्बत पर अधिकार को स्वीकार कर, हमने भारत की स्वतन्त्रता सदा के लिए गिरवी रख दी है । इसके लिए किसी ने सरकार को सतर्क और सचेत न किया हो, ऐसी बात नहीं । चीन के भय को भी जानकार लोग वैसे ही प्रकट कर रहे थे जैसे कि पाकिस्तान के विषय में प्रकट किया जा रहा था ।

श्री के० एम० मुंशी ने अपनी पुस्तक 'Pilgrimage to Freedom' में सरदार पटेल द्वारा जवाहर लाल को लिखा गया एक पत्र प्रकाशित किया है । उस पत्र में पटेल ने उस भय की ओर संकेत किया है जो चीन के भारत की सीमा पर आ जाने से, भारत के कम्युनिस्ट उत्पन्न कर सकते हैं । परन्तु सरदार जैसे विख्यात और सिद्ध राजनीतिज्ञ की बात नेहरू ने नहीं सुनी ।

नागालैंड की समस्या यद्यपि ईसाइयों की पैदा की हुई है, परन्तु है यह चीन की ही समस्या । चीन वाले नागाओं के लिए वही सब कुछ कर रहे हैं, जो वे भारत के कम्युनिस्टों के लिए करने को उद्यत रहते हैं ।

भाषा की समस्या दिनानुदिन अधिकाधिक विकट होती जा रही है । सरकार के मस्तिष्क में क्या है, यह कहना कठिन है । परन्तु पिछले इक्कीस वर्ष में जो कुछ सरकार करती रही है, वह देश को भाषावार भागों में बाँटने का प्रयास ही है । स्वराज्य मिलते ही भाषा का प्रश्न सम्मुख आया । यह लगभग निश्चय ही था कि देश की राज्य भाषा, शिक्षा का माध्यम और सम्पर्क भाषा हिन्दी होगी, परन्तु इसमें इतनी विषमता उत्पन्न की गई है कि देश में चौदह भाषायें स्वीकार हो गई हैं । सब-की-सब अपने-अपने क्षेत्र में राज्य-भाषा बन रही हैं । केन्द्र के साथ राज्य अपनी क्षेत्रीय भाषा में पत्र-व्यवहार करेंगे, अथवा अंग्रेज़ी या हिन्दी में करेंगे विश्वविद्यालय क्षेत्रीय भाषाओं

में शिक्षा देंगे। प्रत्येक हिन्दी भाषी राज्य में अंग्रेजी माध्यम के विश्व विद्यालय भी होंगे। कुछ एक दक्षिणी राज्यों में भी एक-आध हिन्दी-माध्यम का विश्वविद्यालय होगा।

इस विषय में भी विद्वानों ने सरकार को सचेत किया था कि भाषा के आधार पर राज्य नहीं बनने चाहिएँ। परन्तु सरकार मानी नहीं और भाषावार राज्य बना दिये हैं। यह फूट का बीज है। एक राज्य इस विषय में पहले ही बाग़ी हो चुका है।

देश की आर्थिक उन्नति भी हुई है, परन्तु किस कीमत पर और उस उन्नति की दिशा क्या है ?

इस समय भारत पर विदेशों का पचास अरब रुपये से ऊपर ऋण हो चुका है। इसका वार्षिक ब्याज तीन अरब के लगभग बनता है और लेनदार अब उधार दिया हुआ रुपया वापिस माँग रहे हैं। देश के भीतर भी सरकार ऋणी है। औद्योगिक उन्नति की दिशा ऐसी है कि हमारा बनाया हुआ सामान देश के अन्दर खप नहीं सकता। इसका कारण यह है कि जन-साधारण उसको खरीद नहीं सकता। विदेशों में भी हम बेच नहीं सकते। कारण यह कि हमसे बढ़िया माल बनाने वाले देश हमसे सस्ते दाम पर वैसा माल बनाकर दे रहे हैं।

समाजवादी सरकार और समाज सदा बड़े-बड़े उद्योगधन्धे खोलती है। बड़े-बड़े उद्योगधन्धों में नौकरी करने वालों की संख्या अधिक हो जाती है। सहयोगी (co-operative) संस्थायें भी एक सीमा से बड़े उद्योग नहीं चला सकतीं। परिणाम यह हो जाता है कि पूर्ण देश में अधिकांश लोग नौकरी करने वाले हो जाते हैं। नौकरी करने वाले इस विचार से शूद्र हो जाते हैं कि वे अपने कर्मों के स्वयं उत्तरदायी नहीं रहते। जिस देश में ऐसे शूद्रों की संख्या बढ़ जाये, उस देश में :—

यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम् ।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीड़ितम् ॥
(मनु०—८।२२)

अर्थात्—जिस राष्ट्र में शूद्र तथा नास्तिक अधिक हो जायें और जहाँ द्विज कम हो जायें, वह राष्ट्र दुर्भिक्ष एवं व्याधियों से पीड़ित होकर नाश को प्राप्त होता है।

अतः औद्योगीकरण का ठीक ढंग यह है कि अपने ही देश की आवश्यकताओं के लिए उद्योग चलाये जायें। छोटे-छोटे उद्योग हों जो सहयोगी संस्थाओं द्वारा अथवा एक-एक मालिक द्वारा चलाये जा सकते हों। इस प्रकार बेकारी

कम होगी। देश की आवश्यकता सर्वोपरि हो जायेगी, अंतर्राष्ट्रीय मण्डी की दया पर देश निर्भर नहीं रहेगा और जीवन सस्ता, सुलभ और आनन्दमय हो जायेगा।

परन्तु समाजवाद का भूत इतना प्रबल हो गया है कि उसके सम्मुख देश और जनता का हित गौण हो गया है।

वास्तव में देश में समस्यायें इतनी अधिक उत्पन्न हो गई हैं कि उनकी गणना नहीं कराई जा सकती। इन सब समस्याओं के उत्पादक कारण हैं जवाहर लाल और कांग्रेस। देश की कोई भी समस्या लें और उसका कारण ढूंढने लगें तो उसकी जड़ में जवाहर लाल नेहरू और कांग्रेस, ये दो ही दिखाई देंगे।

यों तो देश में पिछले इक्कीस वर्ष तक कांग्रेस का ही शासन रहा है, परन्तु दुर्भाग्य से कांग्रेसी न केवल मूर्ख ही रहे हैं, वरंच स्वार्थी और भीरू भी रहे हैं। जब तक जवाहर लाल जीवित रहा, तब तक किसी कांग्रेसी को साहस नहीं होता था कि वह उसकी बात को अस्वीकार कर सके। जन-साधारण की तो बात ही क्या थी! भारत के मन्त्रि-मण्डल का एक चित्र श्री गाडगिल ने अपनी पुस्तक 'Government from Inside' में इस प्रकार चित्रित किया है :—

India's foreign policy tended to be identified with Nehru's personal predilections and prejudices. The cabinet rarely got an opportunity to discuss it and when it did so, Nehru was intolerant of difference in opinion.

(भारत की विदेश नीति श्री नेहरू की निजी अभिरुचि और पूर्व-ग्रहों के अनुकूल रहती थी। मन्त्रि-मण्डल को उस पर विचार का अवसर ही नहीं मिलता था। और जब कभी वह अवसर आया और विचार आरम्भ हुआ, तो नेहरू मतभेद को सहन नहीं कर सकता था।)

एक और स्थान पर श्री गाडगिल लिखते हैं—

My five years experience in the cabinet is that no one would say a word against Nehru. While Vallabhbhai was alive, he (Nehru) used to consult him. After that he consulted the Moulana occasionally. But the Moulana rarely contradicted him. Gopalswami said only what Nehru wanted him to say, others used to keep their own counsel.

(मेरा मन्त्रि-मंडल का पाँच वर्ष का अनुभव यह है कि नेहरू के विपरीत कोई एक शब्द भी नहीं कहता था। जब वल्लभभाई जीवित थे तो वह (नेहरू) उनसे राय कर लिया करता था। उसके बाद वह मौलाना से राय किया करता था, परन्तु मौलाना ने शायद ही कभी उसके मत के विपरीत कहा हो। गोपालस्वामी तो वही कुछ कहते थे, जो नेहरू कहते थे। शेष सब मौन रहते थे।)

जो नेहरूशाही १७ वर्ष तक देश में चलती रही, आज ये कांग्रेसी भीरू उनका उल्लख करते हैं। परन्तु क्या ये नेहरू से कम उत्तरदायी हैं ? यदि इनमें कुछ भी देश-हित का विचार होता, तो ये नेहरू के मरने के उपरान्त तो नीतियों में परिवर्तन करते ?

हमारा तो यह निश्चित मत है कि काँग्रेस का निर्माण ही विशुद्ध एवं अराष्ट्रीय भावना पर हुआ था। जब तक कांग्रेस की मूलभूत धारणाओं को नहीं बदला जाता, तब तक देश संकट से बाहर नहीं निकल सकता।

राष्ट्र क्या है ? राष्ट्र के लक्षण क्या हैं ? कांग्रेस ने कभी यह जानने का यत्न नहीं किया। यही कांग्रेस की आधार-भूत भूल है। राष्ट्र का लक्षण और उन लक्षणों वाले लोगों का संगठन एवं शक्ति ही देश को वर्तमान संकट से पार कराने में समर्थ हो सकती है।

इतिहास में भारतीय परम्परायें

श्री गुरुदत्त

गणना में प्रमाण

भारतीय काल-गणना का एक चित्र पिछले अंक में प्रस्तुत किया था। इतने लम्बे वर्षों के काल की गणना पढ़कर आधुनिक विद्वान चका-चौंध रह जाते हैं। वे इस गणना पर दो आपत्तियाँ करते हैं। एक तो यह कि हिरण्यगर्भ के आरम्भ से पंचाँग किसने लिखा था? उस समय किसी मनुष्य का अस्तित्व हो ही नहीं सकता था। अतः ये गणनाएँ सब काल्पनिक हैं। इसमें सच्चाई का प्रमाण नहीं है। दूसरी आपत्ति यह की जाती है कि इतने वर्ष तक मनुष्य और पृथ्वी टिकी कैसे रह सकी है? ये दोनों आप-त्तियाँ अल्प बुद्धि वालों के द्वारा ही की जा सकती हैं।

हिरण्यगर्भ तथा सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी इत्यादि का बनना एक अन्तरिक्ष की घटना है और यदि इसके विषय में कोई गणना हो सकती है, तो उसके प्रमाण अन्तरिक्ष में ही ढूंढने पड़ेंगे। भारतीय ज्योतिषियों ने अन्तरिक्ष का गम्भीर निरीक्षण कर ही उक्त गणना की प्रतीत है।

यह निरीक्षण कैसे किया था? किस-किस हिरण्यगर्भ का किस प्रकार अध्ययन करके ये परिणाम निकाले होंगे? यह आज बताना कठिन है। हाँ, यह तो प्रमाणित किया जा सकता है कि यह गणना, प्राचीन काल में भारत वर्ष में स्वीकृत और प्रचलित हो चुकी थी। यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि अन्य प्राचीन जातियों के विद्वानों ने इन गणनाओं को, अधिकाँश रूप में, स्वीकार किया था।

प्राचीन काल में एक सूर्य-सिद्धान्त नाम का ग्रन्थ था। यह ज्योतिष का महान् ग्रन्थ माना जाता था। सतयुग के अन्त काल में यह लिखा गया था, और अब अप्राप्य है। इसी प्राचीन सूर्य-सिद्धान्त के आधार पर वर्त्तमान सूर्य-सिद्धान्त लिखा गया प्रतीत होता है। दोनों सूर्य-सिद्धान्त उक्त युग-गणना का समर्थन करते हैं। नवीन सूर्य-सिद्धान्त, जो "लाट कृत" कहा जाता है, में प्राचीन सूर्य-सिद्धान्त की ही गणना लिखी है।

यह तो सर्व विख्यात है कि वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। इनमें भी

युग-गणना उसी तरह है, जैसे वर्त्तमान ज्योतिष-शास्त्र में है।

अथर्व वेद में इस प्रकार वर्णन आया है :—

कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य।
एकं यदंगमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ।।

अथर्व०—१०-७-९,

अर्थात्—भूत भविष्यमय काल रूपी घर, एक सहस्र खम्भों पर खड़ा है। इसमें अलंकार के रूप में, एक कल्प में होने वाली एक सहस्र चतुर्युगियों का वर्णन किया गया है।

फिर अथर्व वेद ८-२-२१में यह भी लिखा है—"शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।"

अर्थात्—सौ आयुत वर्षों के आगे दो, तीन और चार की संख्या लिखने से कल्प काल आयेगा।

आयुत दस हजार का होता है। इसलिए सौ आयुत हुए १०,००,०००। दस लाख में सात अंक हैं। इसके सात शून्यों के पहले दो, तीन, चार के अंक लिखने से ४,३२,००,००,००० वर्ष होते हैं और यह एक कल्प अर्थात् ब्रह्म दिन की गणना है।

यजुर्वेद में चारों युगों के नाम आये हैं।

कृतायादिनवदर्ष त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनम् आस्कन्दाय सभास्थाणुम्।

यह युग-गणना प्राचीन भारत वर्ष में प्रचलित थी। इसका एक प्रमाण यह भी है कि हिन्दुओं में प्रत्येक शुभ काम के समय संकल्प पढ़ाया जाता है और उसके शब्द इस प्रकार हैं, "द्वितीयपरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशति कलौ युगे ५०६९ गताब्दे"। अर्थात् यह वैवस्वत मनु का अठाईसवाँ कलि है जिसके ५०६९ वर्ष बीत चुके हैं।

युगों की गणना नक्षत्रों की गतियों से की गयी है। सूर्य सिद्धान्त में यह लिखा है—

अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः।
विना तु पादमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यता मिताः।

(सूर्य० १-५७)

सतयुग के अन्त में पाद मन्दोच्च को छोड़ कर सब ग्रहों का मध्य स्थान मेष में था।

इसी प्रकार कलियुग के विषय में लिखा है कि इसके आरम्भ में

सूर्यादि सातों ग्रह एक राशि ही में थे।

महाभारत में भी यह लिखा मिलता है—

ततो दिनकरैर्दीप्तैः सप्तभिर्मनुजाधिप ।
पीयते सलिलं सर्वं समुद्रेषु सरित्सु च ।। ६७ ।।

(वन--१८८ ।६७)

युग की समाप्ति पर सातों सूर्य एक राशि में आ जाते हैं और तब ऊष्मा इतनी बढ़ जाती है कि पृथ्वी का सब जल सूख जाता है।

इन नक्षत्रों के एकत्रित होने की गणना से एक युरोपियन विद्वान् ने कलियुगारम्भ के काल की गणना की है।

युरोपियन ज्योतिषी बेली (Bailly) ने गणित से यह देखना चाहा कि कब सातों ग्रह एक युति में आये थे? उसकी गणना का वृत्तान्त Theogony of the Hindus by Count Bjonstjerna के पृष्ठ ३२ पर लिखा है—

According to the astronomical calculation of the Hindus, the present period of the world, Kaliyuga, commenced 3,102 years before the birth of Christ on the 20th February at 2. hours, 27 minutes and 30 seconds, the time being thus calculated to minutes and seconds. They say that a conjunction of planets then took place, and their table show this conjunction. It was natural to say that a conjunction of the planets then took place. The calculation of the Brahmins is so exactly confirmed by our own astronomical tables that nothing but actual observation could have given so corrospondent a result.

इसका अर्थ है—हिन्दुओं के ज्योतिष शास्त्र की गणना के अनुसार कलियुग का आरम्भ ईसा के जन्म से ३१०२ वर्ष पहले हुआ था। यह २० फ़रवरी की रात को दो बज कर २७ मिनट और ३० सैकेण्ड पर हुआ था। वे (हिन्दू) कहते हैं कि उस समय नक्षत्रों का एक स्थान पर संग्रह हो जाता है। ब्राह्मणों की गिनती इतनी ठीक है कि हमारे ज्योतिषियों की गणना के अनुसार ठीक बैठती है। इसका अर्थ यह है कि उन्होंने भी नक्षत्रों की गति को देख कर ही गणना की है। अन्यथा इतनी ठीक न होती।

सूर्य-सिद्धान्त में एक अन्य स्थान पर लिखा है—

"त्रिशत् कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक्परिलम्बते।" (सू०--३-९)

अर्थात्—एक महायुग (देवयुग) में भचक्र (राशि चक्र) पूर्व और पश्चिम दिशा में ३०० बार आता जाता है। तीन सौ बार जाना और तीन सौ बार आना अर्थात् विषुवत रेखा को यह ६०० बार काटता है। इससे भी युग-गणना की जा सकती है।

यहां इन प्रमाणों को देने का अर्थ यह है कि युग-गणना नक्षत्रों की गतियों से की जाती है। प्रत्येक युग के उपरान्त सात नक्षत्र एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। तब युग परिवर्तन होता है।

इस पूर्ण वृत्तान्त का अभिप्राय: यह है कि सृष्टि रचना में मनुष्य वैवस्वत मनु में उत्पन्न हुए। वैसे पृथिवी दूसरे मन्वन्तर में बननी आरम्भ हुई। उस समय अभी हिरण्यगर्भ फटा नहीं था। हिरण्यगर्भ फटा था कल्प के सौवें भाग के व्यतीत हो जाने पर। अर्थात् पृथिवी का बनना उसी समय आरम्भ हो गया था। दूसरे मन्वन्तर में पृथिवी देवताओं से पृथक् हुई। उस समय पृथिवी का अर्थ ठोस पदार्थ से था। इन ठोस पदार्थों में अन्य नक्षत्र भी लिए जाने चाहिएँ। तीसरे मन्वन्तर में पृथिवी से चन्द्र पृथक् हो गया। चौथे मन्वन्तर में जल से पृथिवी ढक गई। पाँचवें मन्वन्तर में पृथिवी जल से निकलनी आरम्भ हुई और वनस्पतियाँ उगीं। छटे में पशु और सातवें मन्वन्तर में मनुष्यों का जन्म हुआ।

इस प्रकार अपनी पृथिवी पर मनुष्य की सृष्टि हुए उतने ही काल हुए हैं, जितने वैवस्वत मन्वन्तर को व्यतीत हो चुके हैं। यह काल १२,०५,३३,०६६ वर्ष है।

वर्तमान युग के विद्वान और वैज्ञानिक इतना लम्बा काल इसको नहीं देते, परन्तु ऐसा न देने में उनके पास प्रमाण नहीं हैं। इसके विपरीत प्राचीन जातियों में प्रचलित सम्वतों का अध्ययन किया जाये तो यह विश्वास होता है कि भारतीयों की गणना में बहुत कुछ सत्य है।

भारतीय परम्पराओं के अनुसार हमने मनुष्य को पृथिवी पर अवतीर्ण हुए १२ करोड़ वर्ष से ऊपर हो चुके बताता है।

चीन में एक प्राचीन सम्वत् माना जाता है। उसकी वर्ष संख्या ६,६०,०२,४२६ है। यह भारतीय वर्ष गणना से कुछ कम है।

खताई लोगों का सम्वत् ८,८८,४०,३०१ वर्ष है। यह चीन से कुछ कम है।

काल्डियन के प्राचीन निवासी सृष्टि उत्पत्ति को २१५ मीरियड वर्ष मानते हैं। एक मीरियड १,००,००० वर्ष का होता है। इससे उक्त अवधि २,१५,००,००० वर्ष होती है।

सिसरो ने कहा है कि उसके देश के विद्वानों के पास लिखित प्रमाण है कि मानव सृष्टि ४,८०,००० वर्ष से है।

फिनिशिया के लोग मानते हैं कि वे उस देश में ३०,००० वर्ष से रहते हैं। ये सब अंक इस बात का प्रमाण हैं कि मानव सृष्टि बहुत पुरानी है और इस विषय में भारतीय परम्परा को सत्य मानने में कोई बाधा नहीं।

अभी तक प्राचीन जातियों में प्रचलित सम्वत् इस प्रकार बताये जा सकते हैं।

यूरोप में ईसा का सम्वत् जो आज प्रचलित है	१९६८ वर्ष
मूसा के धर्म प्रचार आरम्भ का सम्वत्	३५३५ ,,
कलि सम्वत्	५०६९ ,,
इबरानियम् सम्वत्	५९७१ ,,
मिश्र वालों का वहाँ राज्य स्थापित करने का सम्वत्	२८६२१ ,,
फिनिशिया में जाकर बसने का सम्वत्	३०००० ,,
ईरान के प्रथम राजा का सम्वत्	१८९९४७ वर्ष
काल्डियन सम्वत् ज्योतिषियों की गणना से	४७०००० ,,
काल्डियन का पृथ्वी उत्पति काल	२१५००००० ,,
खताई सम्वत्	८८८४०३४० ,,
चीन के प्रथम राजा का सम्वत्	९६००२४९८ ,,
भारतीय परम्परा वैवस्वत मनु सम्वत्	१२०५३३०६९ ,,
,, ,, संकल्प सम्वत्	१९७२९४००६९ ,,

इससे एक बात तो स्पष्ट होती है कि भारतीय परम्परा सृष्टि की उत्पत्ति और पृथ्वी के बनने तथा उस पर मानव सृष्टि का काल अन्य सब प्राचीन जातियों से अधिक बताती है।

वर्तमान वैज्ञानिक ढंग से अन्वेषण करने वाले कुछ विद्वान भी भारतीय परम्परा का समर्थन करते प्रतीत होते हैं।

बाबू उमेश चन्द्र विद्यारत्न अपनी पुस्तक "मानवेर आदि जन्म भूमि' के पृष्ठ २८ पर लिखते हैं कि सामवेद की आयु एक लाख वर्ष से कम नहीं।

अविनाश बाबू अपनी पुस्तक "Rigvedic India" Pp.-५५६-५५७ पर लिखते हैं कि ऋग्वेद के प्राचीन सूक्त उस समय लिखे गये, जिस समय राजस्थान समुद्र के नीचे था। वह "टर्शरी" युग था। उसका अनुमान आज से तीन चार लाख वर्ष पूर्व किया जा सकता था। भू-गर्भ सम्बन्धी साक्षियों

से यह सिद्ध होता है कि संसार और भारत भूमि में 'टर्शरी' युग समय मायोसीन और प्लायोसीन विभाग में मनुष्य उन्नत अवस्था में था।

यही लेखक अपनी पुस्तक के पृष्ठ २३० पर लिखता है कि पूर्व की ऋग्वैदिक सभ्यता का काल इतनी दूर तक चला जाता है कि वह भूत काल के अन्धकार में विलीन होता प्रतीत होता है। उसे कम-से-कम लाखों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इसमें सन्देह करने को कोई स्थान नहीं।

पुनः आप पृष्ठ ५५८ पर लिखते हैं—

This goes to confirm the popular belief that the Vedas are eternal and not ascribable to any human agency (Apaurusheya) and that they emanated from Brahma, the Creator himself.

(इससे यह सिद्ध होता है कि वेद अनादि हैं और वे किसी मानव प्रयास का फल नहीं। वे अपौरुषेय हैं अर्थात् परमात्मा द्वारा दिये गये हैं।)

इस लेख में हमने यह बताया है कि भारतीय परम्परा में ज्योतिष शास्त्र का और अन्य भारतीय ग्रन्थों का प्रमाण है। संसार की अन्य प्राचीन जातियों की साक्षी भी हैं और वर्तमान युग के वैज्ञानिक भी भारतीय परम्परा को ही ठीक मानते हैं। जो भी विद्वान पक्षपात रहित होकर बुद्धि का प्रयोग करेगा, वह भारतीय परम्परा को गलत नहीं कह सकता।

जो बात वर्तमान युग के शिक्षित वर्ग को परेशान करती है वह यह है कि कल्पारम्भ का काल और फिर पृथ्वी के बनने तथा उस पर मनुष्य सृष्टि होने के काल की गणना किस प्रकार की होगी? इस विषय में हमने बताया है कि नक्षत्रों की गति से ही यह पता किया गया है :

सूर्य-सिद्धान्त में यह लिखा है—

युगे सूर्यज्ञशुक्राणाँ खचतुष्कर दार्णवः।
कुजार्किगुरुशीघ्राणा भगणाँः पूर्वयाविनाम्॥

(सू०-सि०--१-१)

अर्थात् एक चतुर्युगी में सूर्य, बुद्ध, शुक्र, मंगल, शनि और बृहस्पति ४,३२,००० भगण करते हैं। यह चतुर्युगी की गणना है।

सीमा सुरक्षा विधेयक के संदर्भ में

भारत की जलती सीमाएँ और उनकी सुरक्षा के तकाजे

○

श्री बलराज मधोक, संसद सदस्य

(२? अगस्त को संसद् में दिए गए भाषण के आधार पर)

देश में सीमा सुरक्षा दल का निर्माण और उसको विधिवत् रूप देने के लिए संसद् में विधेयक का प्रस्तुत होना स्वागत योग्य है। इस दल के निर्माण का श्रेय हमारे भूतपूर्व गृहमन्त्री श्री नन्दा को है और इसलिए वह भी बधाई के पात्र हैं। उससे पहले हमारी सीमा सुरक्षा के लिए पुलिस फोर्स थी, जिनका खर्चा तो केन्द्र देता था, परन्तु जिनका प्रबन्ध प्रान्तीय सरकारों के पास था। इसलिए उनमें कोई एकरूपता नहीं थी, न तो ट्रेनिंग के बारे में और न साज-सज्जा के बारे में। इसलिए कई कठिनाइयाँ पैदा होती थीं। चूंकि सुरक्षा की जिम्मेदारी केन्द्र की है, इसलिए केन्द्र ने इस कार्य को सीधे अपने हाथ में लेकर सारे देश के लिए एक सिक्युरिटी फोर्स बनाई है। यह एक अच्छी बात है।

परन्तु हमें यह मान कर चलना होगा कि केवल इस सिक्युरिटी फोर्स से ही हमारी सीमाओं की सुरक्षा नहीं होगी। वैसे तो हमारे देश की सुरक्षा सेनाएँ हैं, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय कानून के मुताबिक शान्ति-काल में वे सीमा पर नहीं रहती हैं। और उस समय यह काम दूसरी पुलिस को करना पड़ता है। शान्तिकाल में इस प्रकार का दल फर्स्ट लाइन आफ डिफ़ेंस होगा और युद्धकाल में यह सैकंड लाइन आफ डिफेंस होगा। परन्तु किसी भी देश की सुरक्षा की जिम्मेदारी केवल बार्डर सिक्युरिटी फोर्स पर नहीं छोड़ी जा सकती है। देश की सीमा सुरक्षा के सम्बन्ध में कई बातों पर विचार करना होता है।

पहले यह कि सीमा के पार जो देश हैं, हमारी ओर उनका रुख क्या है और उनकी साज-सज्जा और फौजी तैयारियाँ कैसी हैं। दूसरे, हमारी सीमाओं की भौगोलिक स्थिति और टैरेन कैसा है। तीसरे, सीमा पर रहने वाले दोनों ओर के लोगों का काम्पलेक्शन और कैरेक्टर कैसा है। चौथे, वहाँ

पर यातायात, कम्युनिकेशंस और संचार का क्या प्रबन्ध है। पाँचवें, सीमा की सुरक्षा करने वाली पुलिस और सेना की साज-सज्जा, ट्रेनिंग और संख्या की क्या स्थिति है। इन पाँच बातों के आधार पर ही हम अपनी सीमा की सुरक्षा का विचार कर सकते हैं।

जो सीमा सुरक्षा दल बनाया गया है, इस बिल में केवल उसी का विचार किया गया है। बाकी चार बातों का विचार इसमें नहीं है, और हो भी नहीं सकता था। परन्तु जब हम अपने देश की सीमा-सुरक्षा का विचार करते हैं, तो हमें इन पाँचों बातों पर विचार करना होगा और इनको इकट्ठा लेना होगा, इनमें तालमेल बिठाना होगा। हमारी सीमा की रक्षा के लिए केवल सीमा सुरक्षा दल ही पर्याप्त नहीं है।

हमारी स्थल सीमा लगभग पाँच हजार मील है। उसमें से थोड़ा-सा हिस्सा नेपाल के साथ लगता है, जो हमारा मित्र देश है। थोड़ा-सा हिस्सा बर्मा के साथ भी लगता है, वह भी हमारा मित्र देश है। परन्तु हमारी सीमा का बहुत बड़ा हिस्सा पाकिस्तान के साथ लगता है, जो हमारा जन्मजात शत्रु है, या कम्युनिस्ट चीन के साथ लगता है जो एशिया में हमारा प्राकृतिक प्रति-द्वन्द्वी (नेचुरल राइवल) है। इसलिए सीमा सुरक्षा का विचार करते हुए हमें विशेष रूप से पाकिस्तान का विचार करना होगा, क्योंकि पाकिस्तान ने पिछले बीस सालों में बार-बार हमारी सीमाओं में घुसपैंठ की है, हम पर आक्रमण किये हैं।

जब हम पाकिस्तान का विचार करते हैं, तो हम देखते हैं कि जहाँ तक टैरेन का ताल्लुक है, भौगोलिक स्थिति का ताल्लुक है, वह जैसी यहाँ है, वैसी ही पाकिस्तान में भी है। यहाँ पर कई बार कहा जाता है कि हम नागा समस्या या कोई दूसरी समस्या इसलिए हल नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वहाँ का टैरेन बड़ा कठिन है, वहाँ की भौगोलिक स्थिति खराब है। मैं समझता हूँ कि इस प्रकार के बहाने और सफाई देना ठीक नहीं है। आखिर बर्मा और मलेशिया में भी उसी प्रकार के जगल, खाइयाँ और पहाड़ियाँ हैं। राजस्थान के बारे में कहा जाता है कि वहाँ पर रेगिस्तान है। अगर हमारे लिए रेगिस्तान है, तो पाकिस्तान के लिए भी तो रेगिस्तान है। टैरेन के सम्बन्ध में पाकिस्तान और भारत दोनों की स्थिति समान है।

जहाँ तक सीमा पर बसे हुए लोगों का सम्बन्ध है, पाकिस्तान की ओर जो लोग सीमा पर बसे हुए हैं, पाकिस्तान उन पर पूरा विश्वास कर सकता है, क्योंकि वे फैनेटिकली ऐन्टी-इण्डिया हैं, भारत के कट्टर विरोधी हैं। वहाँ

पर जो हिन्दू या अन्य लोग थे, जिनसे यह सम्भावना हो सकती थी कि वे हमारा साथ दे सकते हैं, पाकिस्तान ने उनको अपनी सीमाओं से बीसियों मील दूर कर दिया है। इसलिए पाकिस्तान को यह बड़ा लाभ है। परन्तु हम अपनी सीमाओं पर ऐसा नहीं कर पाये हैं।

हमने कई योजनाएँ बनाईं। नन्दाजी ने एक योजना बनायी कि असम की सीमा पर हम एक मील की पट्टी खाली करायें। वह बड़ी अच्छी योजना थी और देश की सुरक्षा के हित में थी। मगर अभी तक हमने उसके ऊपर अमल नहीं किया। राजस्थान के लिए एक योजना बनाई गई थी कि राजस्थान नहर से जो इलाका लाभान्वित होगा, वहाँ पर सीमा के साथ पाँच मील चौड़ी पट्टी राजस्थान सरकार सुरक्षा मन्त्रालय को दे देगी और वहाँ पर अवकाश प्राप्त सैनिक बसाए जायेंगे। लेकिन मुझे पता लगा है कि राजस्थान सरकार उस वचन से पीछे हट रही है। और क्यों हट रही है? इसलिए कि वहाँ पर जो लोग बसे हुए हैं, उनके वोट लेने हैं। मैं गृहमन्त्री से कहूँगा कि अब जो नई परिस्थिति पैदा हुई है—पाकिस्तान पहले से ही हमारा शत्रु है, उसको हथियार चीन से भी मिल रहे हैं, अमेरिका से उसने पहले ही ले रखे हैं, और अब रूस से भी मिलने वाले हैं, इस कारण उसकी बेलिकॉसिटी, उसका आक्रान्ता रुख आगे से बहुत बढ़ गया है। इसलिए अब हम सुरक्षा के बारे में किसी प्रकार का खतरा या चाँस नहीं ले सकते।

इसमें सेकुलरिज्म का अड़ंगा लगाना गलत है। प्रथम तो हम सेकुलर का अर्थ नहीं समझते—मैं चाहूंगा कि हमारे बन्धु कोई एन्साइक्लोपीडिया निकालें, कोई डिक्शनरी लायें और उसमें पढ़ें कि सेकुलरिज्म का अर्थ क्या है। हमारा राज्य सेकुलर राज्य नहीं है। हमारा राज्य कम्युनल राज्य, कम्युनल स्टेट है। कम्युनल स्टेट, वर्किंग इन फेवर ऑफ ए पर्टीकुलर कम्युनिटी। ऐसा साम्प्रदायिक राज्य जो एक विशेष सम्प्रदाय के पक्ष में काम करता है। यह एक सेकुलर स्टेट नहीं है। वरना संसार के अन्दर किसी भी सेक्युलर देश में सिविल कानून अलग-अलग हों, इसका एक भी नमूना बताया जाय। हम सेकुलर नहीं हैं। अपने आपको यह धोखा देना हम बन्द करें। मैं चाहता हूँ कि भारत सेकुलर हो। भारतीय राज्य, हिन्दू राज्य सदा सेकुलर रहा है। हमारे इतिहास के अन्दर केवल एक अपवाद है अशोक का, जो इस सेकुलरिज्म के आइडियल से, धर्मनिरपेक्षवाद के आदर्श से, गिरा और उसने स्टेट का रुपया और प्रभाव बौद्ध के प्रचार के लिए खर्च किया। यह एक बहुत बड़ा कारण बना अशोक के मौर्य साम्राज्य के पतन का। छत्रपति शिवाजी सेकुलर थे, महाराज रण-

जीत सिंह सेकुलर थे। केवल अशोक एक अपवाद था, मगर यह एक अजीब विडम्बना है कि सेकलरिज्म का दम भरने वाली इस सरकार का माडल अशोक है, शिवाजी नहीं हैं और हमारे देश के अन्दर सिविल कानून अलग-अलग हैं। मैं समझता हूँ कि कोई हिन्दू नान-सेकुलर नहीं हो सकता। अगर संसार के अन्दर कोई सेकुलरिज्म की गारण्टी है तो वह हिन्दू संस्कृति है, वह हमारी परम्परा है। उस परम्परा पर चलता हुआ भारत सेकुलर रह सकता है। पर अगर कहीं सेकुलरिज्म या कोई इज्म या कोई वाद हमारी सुरक्षा के साथ टकराव खाता है तो सुरक्षा को प्राथमिकता देनी होगी।

If there is clash between secularism and security or constitutionalism and security or demoracy and security secularism, constitutionalism and demoracy must go to wall and security must come first.

अर्थात्—यदि सुरक्षा और सेकुलरिज्म अथवा संवैधानिकता और सेकुरिज्म या लोकतन्त्र और सेकुलरिज्म में टकराव पैदा होता हो तो सुरक्षा के लिए सेकुलरिज्म संवैधानिकता और लोकतंत्र को कुर्बान किया जा सकता है। सुरक्षा को हर हालत में प्राथमिकता देनी होगी।

इस मामले में कोई दो मत नहीं हो सकते। इसलिए सीमा का विचार करते हुए हमें इस बात का विचार करना होगा। अगर वहाँ पर कहीं संदिग्ध लोग बसते हैं तो हमें बड़ी कड़ाई से उनको वहाँ से हटाना होगा। इसके लिए कोई हमें कुछ कहे, उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि यह बातें कहने के कारण कुछ लोग मुझे कम्युनल कहेंगे। परन्तु मुझे कोई क्या कहता है, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। मैं राष्ट्रवादी हूँ। मैं जो बोलता हूँ, देश के हित में बोलता हूँ। इसलिए मेरे बारे में कोई क्या बोलता है, इसकी मुझे चिन्ता नहीं।

आज देश की एकता के लिए बड़ा संकट है। हमारी आर्थिक समस्या कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं है। आज हम गरीब हैं, कल अमीर हो जायेंगे, आज अनाज कम है, कल अधिक हो जायेगा, परन्तु अगर देश की एकता चली गई, सुरक्षा खत्म हो गई तो फिर हम कहाँ के रहेंगे? इसलिए जहाँ देश की एकता का सवाल आता है, देश की सुरक्षा का सवाल आता है, हम सब एक होकर सोचें, यथार्थवादी होकर सोचें और इस मामले में हमारा आदर्श सरदार पटेल होने चाहिएं। जो पटेल ने किया वह हम करें। मैं चाहूँगा कि हमारे गृहमंत्री चाह्वान साहब भी सरदार पटेल के मार्ग पर चलें।

इस प्रकार हमें पहिले इस बात का विचार करना होगा कि हमारी सीमाओं के ऊपर जो संदिग्ध लोग बसे हुए हैं, उनको हटाया जाय। दूसरी बात जिसके ऊपर हमें विचार करना होगा, वह यह है कि हमारा वहां पर जो याता-यात का प्रबन्ध है वह अच्छा हो। पाकिस्तान ने अपनी सीमा के साथ सड़कों का जाल बिछा रखा है, नई सड़कें बनाई हैं, रेलें बनाई हैं और टेली-कम्यूनि-केशन सिस्टम उसका बहुत अच्छा है। उसके पास जो ट्रक हैं उनके टायर्स ऐसे हैं कि जो रेगिस्तान में अच्छी तरह चल सकते हैं। उसके मुकाबिले में हमारे यहाँ यातायात का सिस्टम इतना अच्छा नहीं। मैं सीमा पर होकर आया हूँ। वहाँ पर बॉर्डर सेक्युरिटी फोर्स के जवानों से भी मिला, अफसरों से भी मिला। उनकी समस्याओं पर मैंने विचार किया। उनकी एक बड़ी शिकायत यह है कि उनके पास यातायात के साधन इतने अच्छे नहीं, उनकी मोबिलिटी इतनी नहीं जितनी पाकिस्तान वालों की है। इसलिए इस मामले को भी हम देखें और अपने ट्रांसपोर्टेशन को ठीक करें और आपने कम्यूनिकेशन सिस्टम को भी ठीक करें।

इसके साथ ही साथ एक दूसरी ध्यान देने योग्य बात है सुरक्षा दल की सँख्या, ट्रेनिंग तथा इक्विपमेंट। मैं समझता हूँ कि सँख्या के मामले में हमारी बोर्डर सेक्युरिटी फोर्स पर्याप्त नहीं है। मुझे जगह-जगह बताया गया कि संख्या बढ़ाने की जरूरत है। और जहाँ तक इक्विपमेंट और साज-सज्जा का ताल्लुक है, कल तक तो पाकिस्तान के सीमा सुरक्षा दल जिसे उसने बार्डर "रेंजर" नाम दिया हुआ है, का इक्विपमेंट हमसे बहुत बेहतर था। अब हमने कहीं कहीं सुधार और इम्प्रूवमेंट्स किए हैं और अपने दल को उसी प्रकार के शस्त्र दे रहे हैं। लेकिन अभी भी हम पूरे नहीं पहुँचे। ट्राँसपोर्टेशन के मामले में भी पाकिस्तान हमसे बेहतर हालत में है। इन सब बातों पर हमें विचार करना होगा। बार्डर सेक्युरिटी फोर्स को हमेंउस स्तर पर लाना होगा, जिस स्तर पर सेना है।

वास्तव में इस बार्डर सेक्युरिटी फोर्स को हमें पुलिस के साथ मिलाना नहीं चाहिए। जैसा कि गृह मन्त्री ने स्वयं भी कहा है, हम सजा के मामलों में इनको आर्म्ड फोर्सेज के साथ रखना चाहते हैं। बाकी बातों में भी इनको उन्हीं के साथ रखना होगा। इनकी ट्रेनिंग, इनकी साज-सज्जा उसी प्रकार की होनी चाहिए, जिस प्रकार सेना की है। यह भी आवश्यक है कि बॉर्डर के इलाके में इन लोगों के रहने के लिए छावनियां बनाई जायें। आज वह टेन्टों में रह रहे हैं। यह ठीक है कि कुछ जगहों पर टेन्टों में रहना होगा। किन्तु

उनके लिए कुछ छावनियाँ भी हमें बनानी होंगी जहाँ वे रह सकें। उसी प्रकार इनकी ट्रेनिंग के लिए कोई अकादमी बनाइए। उचित तो यह होगा कि आप इसके लिए अधिकतर सेना के आदमी लें। हमारे बहुत से एमर्जेंसी कमीशन के लोग जो अभी रिलीज हुए हैं, उनमें से कुछ को हमने इसमें लिया है। अभी और ले सकते हैं। इसी प्रकार हमारे देश के अन्दर अवकाश प्राप्त सैनिक हैं, उनमें से भी कुछ को ले सकते हैं।

इस फोर्स की उपयोगिता तब बढ़ेगी, जब इसमें विभिन्न सीमा क्षेत्रों के स्थानीय लोग अधिक लिए जाएँ। जम्मू के इलाके के अन्दर डोगरे बहुत मिल जायेंगे। राजस्थान के अन्दर बहुत से राजपूत हैं। और दूसरे इलाकों में बहुत से क्षेत्रीय लोग हैं, जिनको वहाँ के टैरेन का पता है, जिनको वहाँ के भूगोल का पता है, जो वहाँ के लोगों से बेहतर तालमेल कर सकते हैं। इस प्रकार के स्थानीय लोग अधिक लिए जाएँ, तब यह फोर्स अधिक प्रभावी हो पायगी।

मुझे बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है कि अभी जब मैं कच्छ गया तो वहाँ छड़ बेट के इलाके में इस दल की दो कम्पनियाँ थीं। मैं उनसे मिला और मैंने उनसे पूछा कि क्या गुजरात का भी कोई जवान उनमें है ? तो उन्होंने बताया कि पंजाब के हैं, हरयाना के हैं, मध्य-प्रदेश के हैं, लेकिन गुजरात का उनमें कोई नहीं। मैंने गुजरात के मुख्य मन्त्री श्री हितेन्द्र भाई से भी कहा है कि यह बात ठीक नहीं है। आपको गुजरात के जवान इसमें लेने चाहिएँ। अब के गुजरात और राजस्थान की सीमा पर खतरा अधिक है, वहाँ के स्थानीय जवान इस दल में आने चाहिएँ। स्थानीय जवान होगा तो उसको यह भी लगेगा कि मैं अपने घर की रक्षा कर रहा हूँ। हमारे सभी लोग देशभक्त हैं, सब देश के लिए लड़ते हैं, लेकिन स्वाभाविक रूप से जिसका जहाँ घर है उसको उसका दर्द अधिक होता है और वैसे भी हमारी सेना सारे देश का प्रतिनिधित्व कर सके, इसलिए भी स्थानीय लोगों को अधिक भर्ती करना आवश्यक है।

इन सब बातों का विचार अधिक महत्वपूर्ण इसलिए भी हो गया है कि आज कई प्रकार की नई समस्यायें पैदा हो गई हैं। अभी ७ जुलाई को हाँगकाँग स्टैंडर्ड में एक लेख छपा था। राबर्ड डिक्सन क्रैन ने जो हडसन इंस्टीट्यूट न्यूयार्क के प्रोफेसर हैं. वह लेख लिखा था। वे नॉर्थ बर्मा और नागालैंड क्षेत्रों में कई महीने लगा कर आए हैं, वहाँ के नेताओं से मिले हैं और उसके बाद वह लेख लिखा है जिसमें वह लिखते हैं कि यहाँ एक नया युद्ध चलने वाला है। इसके पीछे जो लोग हैं, उन्हें चीन का समर्थन प्राप्त है। उसमें उन्होंने अपनी अमरीकी सरकार को यह सुझाव दिया है कि वह नागा

विद्रोहियों का विरोध न करे ताकि वे पूर्ण रूपेण चीन के हाथों में न चले जायें। अमरीकी सरकार उनको बढ़ावा दे। यह नेशनल मूवमेंट है, नागा नेशनल मूवमेंट, शान नेशनल मूवमेंट। कहने का मतलब यह है कि इस क्षेत्र में इस प्रकार की भारत विरोधी शक्तियाँ काम कर रही हैं। चीन ने वियतनाम में जो अनुभव किया है 'वार बाई प्राक्सी' का, बेनामी युद्ध का, उसी प्रकार का बेनामी युद्ध वह हमारे यहाँ भी पूर्वी क्षेत्र में करना चाहता है।

कश्मीर के अन्दर स्थिति और भी भयंकर है। अभी पिछले दिनों पाकिस्तान ऑबजर्वर ढाका ने एक एडीटोरियल लिखा था जिसमें कहा गया था कि शेख अब्दुल्ला अब अहिंसा का मोह छोड़ रहे हैं। अब वह हिंसा के साथ नाता जोड़ने के लिए तैयार हैं। यह पाकिस्तान ऑबजर्वर जो कश्मीर के मामले में आज तक लिखता नहीं था, उसने यह लिखा है, इसलिए यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। शेख अब्दुल्ला के अपने जो वक्तव्य हैं, सीमा पर जो युद्ध की तैयारियां हो रही हैं, गुरिल्ला युद्ध की जो ट्रेनिंग हो रही है, इन सब बातों को देखते हुए अभी तो टूरिस्ट सीजन है, लेकिन मुझे आशंका है कि शरत काल में कश्मीर में और पूर्वी क्षेत्र की सीमा पर गड़बड़ शुरू होगी। इसलिए पहले से सतर्क होने की जरूरत है। वहाँ पर हमारी जो सैनिक टुकड़ियाँ हैं, उनको सतर्क करना जरूरी है। राजनीतिक दृष्टि से भी हमें सतर्क होने की जरूरत है।

अगर हम यह सब नहीं करेंगे और फिर उस समय अगर हम यह कहेंगे कि हम हैरान हुए हैं, (वी आर सरप्राइजड) हमें अचम्भा हुआ है, तो इतिहास हमें माफ नहीं करेगा। इसलिए मैं यह यह कहूँगा कि यह बिल अच्छा है। लेकिन इसमें कुछ सुधार करने की आवश्यकता है। इसके बारे में कुछ सुझाव मैं देना चाहता हूं। मेरा पहला सुझाव यह है कि इस फोर्स को सिविल पुलिस से मिक्स न किया जाय। हमारी सिविल पुलिस बहुत कुछ कारणों से भ्रष्ट हो जाती है, ना अहल हो जाती है, जनता की सहानुभूति खो देती है। क्योंकि उनको इस प्रकार के काम करने पड़ते हैं जिनमें लोग उनको रिश्वतें देते हैं और करप्ट कर देते हैं। हमें इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि हमारी यह फोर्स सेना के साथ रहे और करप्ट न हो जाये। इसके बारे में जनता की भावना अच्छी रहे। करप्ट होने के जो कारण हैं, वे इनको न मिलें। इसलिए सिविल पुलिस के जो काम हैं, उनमें इनको मिक्स न किया जाय। जहाँ पर इनका दायरा है, वहाँ पर सिविल पुलिस को मत लाइये। वर्ना आपसी प्रतिद्वन्द्विता पैदा होगी। हमारे देश के अन्दर एक तो

साधारण पुलिस है, आर्म्ड पुलिस है, सेन्ट्रल रिजर्व पुलिस है और अब यह बार्डर सिक्युरिटी फोर्स बनी है। बार्डर का जो पांच-दस-पन्द्रह मील का इलाका है, वह पूर्णरूपेण इनको दिया जाय, उसमें इनको सिविल पुलिस से न मिलाया जाय।

इस बिल में कहा गया है कि जब कभी आवश्यता हो, आप एक आर्डर के द्वारा इनको और क्षेत्र में ले जा सकते हैं। इनके जो अधिकारी हैं, उनको सिविल पुलिस से अदला-बदली कर सकते हैं। अब तक जो अनुभव है, वह यह है कि कई बार हम बार्डर सिक्युरेटी फोर्स को बार्डर से बहुत अन्दर इन्टीरियर में ले जाते हैं। जैसे राजस्थान में फायरिंग हुआ, वहाँ ले आये, कहीं गड़बड़ होती है, वहाँ ले जाते हैं। यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि यह दल केवल सीमा से पाँच दस पन्द्रह मील के क्षेत्र में रहेगा, उसके बाहर इसको न जाने दिया जाय।

आपने कहा है कि इस के आफिसर्ज सिविल पुलिस के आफिसर्स से मिल सकते हैं, ऐसा न किया जाय। इनके आफिसर्स को आर्म्ड फोर्सेज के आफिसर्स से इन्टरचेंज किया जाय, लेकिन इनके आफिसर्स को सिविल पुलिस के आफिसर्स से इण्टरचेंज न होने दिया जाय।

इस बिल में मृत्युदण्ड का प्रौविज़न रखा गया है। आर्म्ड फार्सेज में ऐसे दण्ड का विधान होगा, लेकिन मैं चाहता हूँ कि इसमें अपील का प्रावधान होना चाहिए। किसी एक व्यक्ति पर इस दंड की पुष्टि का भार डालना ठीक नहीं होगा। मैं मानता हूँ कि आर्म्ड फोर्सेज के अन्दर हम ट्रेड यूनियन राइट्स नहीं दे सकते, देना भी नहीं चाहिए, लेकिन इस दल के जवानों की भी कुछ ग्रीवेन्सेज़ हो सकती हैं, कठिनाइयाँ हो सकती हैं, शिकायतें हो सकती हैं, उनको व्यक्त करने का, उनके बारे में अपनी बात कहने का, इन्हें कोई रास्ता मिलना चाहिए। बहुत बार शिकायतें इकट्ठी होती रहती हैं, स्टीम-लेटिंग नहीं हो पाती है, तो उस चीज़ में उबाल आ जाता है। इसके लिए कोई प्रबन्ध करना होगा।

एक सुझाव यह दिया गया है कि इस बिल को एक प्रवर समिति के सामने पेश किया जाय। मैं समझता हूँ कि सुझाव अच्छा है, क्योंकि यह बिल काफी महत्व का बिल है। लेकिन मैं यह भी चाहूँगा कि इस बिल को पास करने में देर न लगे। इसके लिए मेरा सुझाव यह है कि कुछ ऐक्सपर्ट्स लोगों की, थोड़े लोगों की एक सिलेक्ट कमेटी बनाई जाय जो ओवर-टाइम बैठ कर पाँच-दस दिनों के अन्दर इस बिल पर ज्यादा डिटेल में विचार कर ले। उनकी रिपोर्ट जल्दी आ जाय, ताकि इसी सैशन में इस बिल को पास किया जा सके।

अस्तित्व की रक्षा

○

श्री विद्यानन्द विदेह

स्वामी विद्यानन्द जी 'विदेह' से भारत वासी भलीभांति परिचित हैं। हमारा अभिप्राय विदेह जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों से ही है। श्री विदेह मात्र वेद व्याख्याता ही नहीं, वरन् सिद्ध योगी एवं लोक-व्यवहार-विद् भी हैं। योग साधना की उनकी अपनी अनुभूत पद्धति से अनेक साधक लाभ उठाते रहते हैं। उनके लेखों और प्रवचनों में जीवन के प्रति राग, नैतिक और अध्यात्मिक मूल्यों में आस्था तथा गृहस्थाश्रम के प्रति साधना परक दृष्टिकोण स्पष्ट उभरा है।

अनेक अवसरों पर अनेक पाठकों ने हमें व्यक्तिशः अथवा पत्र लिखकर स्वामी जी द्वारा प्रस्तुत लेखमाला में प्रतिपाद्य विषय पर जिज्ञासा व्यक्त की थी। हमारा सौभाग्य है कि यह अवसरोचित कार्य स्वामी जी की प्रबुद्ध लेखनी द्वारा निष्पन्न हो रहा है। निश्चित ही इससे पाठक लाभान्वित हो, अस्तित्व की रक्षा के लिए सन्नद्ध होंगे।

—सम्पादक

अपने राष्ट्रपति-काल में श्रीराधाकृष्णन ने एक बार कहा था, 'Here, in India, unfortunately, change of religion means change of race and nationality.—यहाँ, भारत में दुर्भाग्य से धर्म के परिवर्तन का अर्थ है जातीयता तथा राष्ट्रीयता का परिवर्तन। उनके उस कथन में एक वास्तविकता निहित थी। तभी से मेरे मस्तिष्क में एक गहन समस्या घूमती चली आ रही है। जैसा कि एक बार श्री छागला ने, जब वह केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री थे, कहा था, "भारत के सभी मुसलमान हिन्दुओं में से धर्मपरिवर्तित हैं और उनकी नसों में हिन्दुओं का ही रक्त बह रहा है।" श्री छागला की यह उक्ति ईसाइयों के बारे भी अक्षरशः चरितार्थ होती है। भारतीय ईसाइयों की नसों में भी हिन्दुओं का रक्त है। यह कैसा दुर्विपाक है कि रक्त से हिन्दु होते हुए भी मुसलमान और ईसाई हर प्रकार से अहिन्दु हैं। हिसाब

से तो हिन्दुस्तान में निवास करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति 'हिन्दू' ही कहलाना चाहिए, उसका धार्मिक विश्वास कुछ भी क्यों न हो।

अजमेर में एलेक्ज़ेण्डर नाम के एक ईसाई सज्जन हैं। कुछ वर्ष हुए, इस सन्दर्भ में उन्होंने मुझसे कहा था, 'I am Christian by faith and Hindu by race.'—मैं धार्मिक विश्वास से ईसाई हूँ और जातीयता से हिन्दू। मुझे लगा कि उनके उस कथन में समस्या का एक कारगर हल निहित था। यदि हिन्दुस्तान के मुसलमानों और ईसाइयों ने यह स्वीकार किया होता कि धार्मिक विश्वास से मुस्लिम या ईसाई होते हुए भी, वे जातीयता से हिन्दू हैं, तो भारत में अनेक जातियाँ न होकर एक जाति होती, और परिणामस्वरूप भारत अराष्ट्र न हो एक राष्ट्र होता। समान जातीयता राष्ट्र की परिभाषा का मूलसूत्र है। जातीयता एक होने पर ही राष्ट्र बनता है और जाति व राष्ट्र का इतिहास तथा उसकी सभ्यता, संस्कृति, भाषा, वेष, परम्परा, आस्था, मान्यता, आचार-विचार—सब कुछ समान रहता है। श्री एलेक्ज़ेण्डर की उपर्युक्त भावना का मैंने सारे देश में प्रचुर प्रचार किया है, किन्तु उभय वर्गों ने उसे न सहारा है, न अपनाया है।

भारत की सरकारें तथा भारतीय राजनीतिक नेता दिन-रात राष्ट्रीय एकता का अरण्यरोदन करते रहते हैं। उन्हें यह क्यों नहीं सूझ रहा है कि भारत में अभी राष्ट्र है ही कहाँ? जिस देश में यह स्थिति है कि पाठ्य पुस्तकों में कहीं राम, कृष्ण या दयानन्द का ज़िक्र हो तो हिन्दु-रक्त मुस्लिम या ईसाई छात्र उन पुस्तकों का अवलोकन तो दूर, उन्हें छूना तक नहीं चाहते, उस देश में राष्ट्रीय एकता मूर्खों का सुखस्वप्न नहीं है तो और क्या है? हिन्दू छात्रों में तो वह उदारता है कि वे किसी भी धर्म के सन्तों तथा वीरों का चरित और चरित्र बिना किसी आपत्ति के पढ़ते और सुनते हैं; और मैं इसकी सराहना करता हूं। मैं स्वयं अपने वेदोपदेशों में मोहम्मद और ईसा की उक्तियाँ सुनाता हूँ, परन्तु क्या मजाल कि कोई मौलवी या पादरी अपने उपदेशों में हिन्दू महापुरुषों में से किसी का भूलकर भी नामोल्लेख करे।

अब तो स्थिति की कोमलता इस सीमा तक पहुंच चुकी है कि भारत के मुसलमानों ने मुस्लिम जातीयता के नाम पर जहाँ भारत का अंग-भंग करके पाकिस्तान का निर्माण किया, वहाँ सिखों ने सिख जातीयता के नाम सिखस्थान (पँजाबी सूबा) बनाया, वहाँ द्रविड़स्थान, क्रिश्चियनस्थान, अछूतस्थान, बौद्धस्थान, मुस्लिमस्थान, जाटस्थान, आदिवासिस्थान के गगनभेदी नारे भी

शेष पृष्ठ ३१ पर

स्वतन्त्रता के बाद स्वाधीन भारत में मुस्लिम बुद्धिजीवियों की भूमिका क्या रही है ?

○

एस. फीरोज अशरफ

(इन दिनों साम्प्रदायिक तनावों के संदर्भ में बुद्धिजीवियों के दायित्व का सवाल उठ रहा है । युवा हिंदी पत्रकार श्री एस. फीरोज अशरफ इस अवसर पर एक महत्वपूर्ण सवाल उठा रहे हैं, ताकि समस्या पर दोनों पक्षों को ध्यान में रख कर संतुलित ढंग से विचार हो सके । विगत अंक में प्रकाशित "भारतीय मुसलमान का अन्तरंग" शीर्षक श्री दलवई का लेख पर्याप्त चर्चा का विषय रहा है तथा उसकी प्रतिक्रिया भी पाठकों में अनुकूल ही हुई है । इसी प्रसंग में यह दूसरा लेख प्रस्तुत है । —सम्पादक)

किसी भी देश, समाज या जाति में बुद्धिजीवियों की महत्ता से इंकार नहीं किया जा सकता । विशेषकर यदा-कदा सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक संकट के समय इनसे अगुआई की आशा की जाती है । मानव समाज इस बात का साक्षी है कि बुद्धिजीवियों ने सदा आड़े समय में जनता की रहनुमाई की है । ग़लत या सही उन्हें एक रास्ता दिखाने की चेष्टा की है । उनकी राय को मान्यता देना न देना, एक दूसरी बात है । वह तो बहुत कुछ अन्य परिस्थितियों पर निर्भर करता है ।

इसी संदर्भ में जब हम स्वतन्त्रता के बाद भारत में मुस्लिम बुद्धिजीवियों पर एक नज़र दौड़ाते हैं, तो हमें केवल निराशा और सूनेपन का ही एहसास होता है । विभाजन के बाद साधारण मुसलमानों की एक बड़ी संख्या भारत में ही रही । तथाकथित बुद्धिजीवियों का एक बड़ा भाग अवश्य पाकिस्तान चला गया । फिर भी भारत में प्रगतिशील व उदार विचार के काफी मुस्लिम बुद्धिजीवी थे (और अब भी हैं) । उस समय मुसलमानों के अन्दर लीडरशिप की कमी थी । उस समय से लेकर यदि आज तक वह वर्ग चेष्टा करता, तो भारतीय मुसलमानों में एक नयी राष्ट्रीय चेतना जगा सकता था । किन्तु ये बुद्धिजीवी तो शुरू से अब तक स्वयं 'दो नावों' पर सवार रहे । इस

लेख के द्वारा हम उन पर आरोप लगाना नहीं चाहते, किन्तु सच्चाई को भी छुपाया नहीं जा सकता है। कहना न होगा, यह दो नावों वाली बात क्या है। इसका परिचय तो हमें जोश मलीहाबादी जैसे क्रान्तिकारी कवि से लेकर नियाज फतेहपुरी जैसे उदार विद्वानों तक ने दिया है। इनके अतिरिक्त भी बहुत सारे अन्य प्रगतिशील (?) व उदार (?) मुस्लिम बुद्धिजीवियों के ऐसे ही आचरण ने आज मुसलमानों से लेकर अन्य भारतीयों को भी उलझन में डाल दिया है। इनके इस रवैये से इनका तो कुछ नहीं बिगड़ता है, पर वह भारत के साधारण मुस्लिम नागरिक को अन्य भारतीयों की नज़रों में अवश्य गिरा देता है।

मज़े की बात तो यह है कि पाकिस्तान जाकर भी ये हजरत खुश नहीं हैं। १६ नवम्बर, १६६७ के टाइम्स ऑफ इंडिया (बंबई) में प्रकाशित एक इंटरव्यू में जोश मलीहाबादी ने भारत छोड़ कर पाकिस्तान में बसने पर जो 'सोग' प्रकट किया है, वह ढका-छुपा नहीं है। जोश को भारत छोड़ने के बाद ही इस विशाल देश की महत्ता का पता चला। उन्होंने उस इंटरव्यू में इस बात का साफ-साफ इकरार किया है कि पाकिस्तान जाकर वे खुश नहीं हैं। उनका सामाजिक जीवन बिल्कुल सिमट कर रह गया है। भारत के लोग, सड़कें, हवाएँ और गलियाँ उन्हें बराबर याद आती हैं। सभी जानते हैं कि जोश साहब को पंडितजी बहुत ज्यादा मानते थे। मगर जोश साहब शायद इतने से ही खुश नहीं थे। और ऊँचा चढ़ने की लिप्सा में ही उन्होंने पाकिस्तान की हिज-रत की। यह अलग बात है कि उनकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। पाकिस्तानी हुकूमत और जनता ने भी उन्हें, बकौल उन्हीं के, वह एजाज नहीं दिया, जिसके वे मुस्तहक थे। आगे उनका यह बयान कि भारत में उनके बच्चों का भविष्य खतरे में था, काफी अफसोसनाक है। जब जोश जैसे व्यक्ति ऐसा सोचते हैं, तो उन पर आस्था रखने वाले आम लोगों का क्या होगा? क्या उनका यह बयान साधारण भारतीय मुस्लिमों को गुमराह करने के लिए काफी नहीं है? मज़े की बात तो यह है कि जोश साहब को भारत में रह कर यह सब नज़र नहीं आया, किन्तु उन्हीं के शब्दों में पाकि-स्तान जाने पर इस्कंदर मिर्जा तथा ए. नकवी ने उनके सामने भारतीय मुसल-मानों के भविष्य का रोना रोया। इस प्रकार उनके पाँव भारत से डगमगाये। हमें दुःख इसका नहीं है कि जोश साहब पाकिस्तान चले गये, बल्कि रोना इस बात का है कि खुदा व मजहब पर यकीन न रखने वाला एक इंकलाबी शायर अपने अंतिम दिनों में अपने पिछले सारे कारनामों पर पानी फेर गया।

इसी प्रकार पिछले दिनों भारत से पाकिस्तान हिजरत करने वाले मेरे बचपन के एक मित्र ने मुझे अपने पत्र में लिखा, "क्या तुम समझते हो कि मैं यहाँ बहुत खुश हूँ ! अल्लाह के फजल से मैं असिस्टेंट इंजीनियर हो गया हूँ। फिर भी तुम क्या समझते हो कि मेरी जिंदगी पुरसुकून हो गई है ? मैं यहाँ हर वक्त तड़पता रहता हूँ, तुम लोगों की याद से। बीते हुए दिनों को याद करता हूँ और रोता हूँ। उन गलियों को याद करता हूँ, जहाँ हमने सालहासाल एक साथ गुजारे, और फिर तड़पता हूँ…" मुझे अपने दोस्त की मानसिक दशा पर दुःख है। मादरे-वतन के प्रति उसके मानसिक लगाव को एक क्या, हजार पाकिस्तान भी नहीं मिटा सकते हैं। भले ही वह बड़े-से-बड़ा पदवाला हो जाये, किन्तु भारत की यादें उसे सदा कचोटती रहेंगी। वह सारी जिन्दगी स्वयं को एक अजनबी महसूस करता रहेगा। हमने यहाँ केवल दो ही उदाहरण दिये हैं, वास्तव में भारत से पाकिस्तान जाने वाला हर एक व्यक्ति बाद में पछताता हुआ नजर आता है।

○

इस प्रकार बुद्धिजीवियों के पाकिस्तान चले जाने का साधारण भारतीय मुसलमानों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। देखते-ही-देखते हर वर्ष मुस्लिम संप्रदाय के बहुत सारे कवि, डॉक्टर, इंजीनियर इत्यादि पाकिस्तान चले जाते हैं। उनका पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा सभी कुछ भारत में होता है, मगर दक्ष हो जाने पर उनका यहाँ दम घुटने लगता है। सारा भारत उन्हें खतरनाक नजर आने लगता है। हमें तो उनकी शिकायतों से भी इंकार नहीं है। यह एक दूसरी बात है। और फिर क्या यहाँ समस्याओं का समाधान नहीं होता है ? उसके लिए बहुत सारे दरवाजे खुले हुए हैं। भारतीय संविधान के द्वारा हर व्यक्ति को अपनी माँग इत्यादि का पूरा हक हासिल है। आपको अपनी आवाज उठाने का पूरा अधिकार है। जब दूसरे इन सब अधिकारों का उपयोग करते हैं, तो फिर आप क्यों चुप हैं ? किन्तु अपने निजी स्वार्थ के लिए हमेशा पाकिस्तान का रास्ता अपनाना कोई भली बात नहीं है !

एक साधारण भारतीय मुसलमान, बुद्धिजीवियों द्वारा चुपके से पाकिस्तान चले जाने से उत्पन्न कठिन परिस्थिति का सामना नहीं कर पाता। इसी कारण यदि एक साधारण भारतीय मुस्लिम को अन्य भारतीय शक की निगाह से देखते हैं, तो इसमें अचरज की क्या बात ? यहाँ हमें आरोपों की सत्यता पर बहस नहीं करनी है। हम तो मुस्लिम बुद्धिजीवियों के हिजरत की बाबत उनसे पूछना चाहते हैं, जिससे आज एक साधारण भारतीय मुसलमान

उलझन में पड़ा हुआ है। उसकी इस मनोदशा का जिम्मेदार कौन है ? आखिर अलगाव की यह नीति क्यों ? जब अन्य भारतीय अल्पसंख्यक अपने हक के लिए सरकार और पार्लियामेंट तक अपनी आवाज़ पहुँचा सकते हैं, तो फिर आपको कौन रोकता है ?

दुख तो इस बात का है कि प्रगतिशील व उदार भारतीय मुस्लिम-वर्ग मुसलमानों की सामाजिक समस्याओं पर सदा चुप रहा है। नतीजे में बद-किस्मती से साधारण भारतीय मुसलमानों के सामने हर कठिन समय पर संकीर्णतावादी धार्मिक व्यक्तियों की बन जाती है। शायद इसीलिए एक साधारण भारतीय मुसलमान को भारत में इस्लाम व मस्जिद हमेशा खतरे में नजर आती है। उनकी धार्मिक भावनाओं का सहारा लेकर इन संकीर्ण कठ-मुल्लाओं तथा पृथकतावादियों ने न केवल उन्हें गुमराह किया है, बल्कि देश की अन्दरूनी शान्ति पर भी हमले किये हैं। यही नहीं, दुनिया भर की बकवास के द्वारा एक साधारण भारतीय मुसलमान के जेहन को चारों तरफ से बाँधने की चेष्टा की जाती है। बहुत हुआ तो सांप्रदायिक दंगों के समय मुस्लिम बुद्धिजीवी दूसरे सम्प्रदाय के सांप्रदायिक तत्वों को कोसना शुरू कर देते हैं। ये बुद्धिजीवी चाहे वे किसी भी मत या पार्टी के क्यों न हों, मुसलमानों के संकीर्ण व सांप्रदायिक तत्त्वों को प्रकाश में लाने की चेष्टा नहीं करते। कम्युनिस्ट पार्टी से लेकर जमाते-इस्लामी तक के मुस्लिम नेताओं ने आज तक कभी भी मुस्लिम फिरकापरस्ती की बात तक नहीं की है। वे उन मुस्लिम नेताओं, मुल्लाओं या समाचारपत्रों की भी निंदा नहीं करते, जो अपना उल्लू सीधा करने के लिए साधारण भारतीय मुसलमानों को गुमराह करते आये हैं। आखिर मुस्लिम फिरकापरस्ती के प्रति ऐसी नीति क्यों ?

इस सिलसिले में जामा-मिलिया के सुलझे हुए वाइस-चांसलर भी हिन्दू-मुस्लिम दंगों का जिम्मेदार केवल जनसंघ, आर. एस. एस. और कांग्रेसी सरकार को बताकर खामोश हो जाते हैं (हुमा उर्दू-डाइजेस्ट : जनवरी, १९६८ अंक)। जहाँ एक ओर उन्होंने इन दंगों का जिम्मेदार दूसरों को बताया है, वहाँ हम उनके मुँह से तस्वीर के दूसरे रुख के बारे में भी जानना चाहते थे। कहना न होगा, हमारा तात्पर्य क्या है। उनके शब्दों में यदि संघ एक सांप्रदायिक संस्था है, तो मुसलमानों में भी इस प्रकार की संस्थाओं की कमी नहीं है। मुसलमानों के किसी भी वर्ग ने मुस्लिम सांप्रदायिक तत्वों से कभी भी टकराने की चेष्टा नहीं की है।

○

उर्दू भाषा की फारसी लिपि को लेकर तो 'मजदूरों और किसानों' के भारतीय मुस्लिम प्रगतिशील कवियों और लेखकों ने भी एक प्रकार का जेहाद-सा बोल दिया है। इस सवाल पर तो बुद्धिजीवी भी 'इस्लाम खतरे में है' जैसी बातें करते हुए नजर आते हैं।

हमें यह कहने में जरा भी हिचक नहीं है कि अधिकांश मुस्लिम बुद्धिजीवियों के पास, चाहे वे किसी भी दल या संस्था के क्यों न हों, साधारण भारतीय मुसलमानों के लिए कोई ठोस राष्ट्रीय प्रोग्राम नहीं है। कभी-कभी लम्बी लम्बी घोषणाएँ व खोखले नारे अवश्य सुनाई पड़ते हैं। हवाई किलों की बुनियादें रखी जाती हैं। किन्तु अंत में सारा प्रोग्राम आपसी लड़ाई के साथ ही खत्म हो जाता है। बहुत हुआ, तो अन्त में सरकार और कुछ दूसरी राजनीतिक पार्टियों को गालियाँ दे कर तसल्ली कर ली जाती है।

आजाद भारत के मुस्लिम बुद्धिजीवी भूलभुलैया में गुम हैं। सच पूछा जाये, तो मुस्लिम जनता के प्रति उन्होंने अपनी सही भूमिका निभाने की चेष्टा ही नहीं की है। उनमें से बहुतों को आज भी मुस्तकबिल बनाने का पाकिस्तानी चक्कर गुमराह कर रहा है। गलतफहमी के शिकार हैं वे। हमारे यहाँ भारतीय मुसलमानों की कोई सही लीडरशिप नहीं है. उनकी धार्मिक भावनाओं का सहारा ले कर उन्हें बहकाया जा रहा है। जरूरत है कि भारतीय मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग अपनी सही परिस्थिति को पहचाने और एक ओर जहाँ अपने संप्रदाय में छुए हुए शत्रुओं को बेनकाब करे, वहाँ दूसरी ओर बहुसंख्यक संप्रदाय के उदार व प्रगतिशील तत्वों को भी आगे बढ़ गले लगाये।

(धर्म-युग के सौजन्य से)

पृष्ठ २६ का शेष

आकाश में गूँज रहे हैं। स्थिति की कोमलता में और भी वार्धक्य हो जाता है जब न केवल सिख, अपितु अम्बेदकरवादी हिन्दु, आदिवासी हिन्दू, अछूत हिन्दु भी अपने को हिन्दुतनू से पृथक् करने की चेष्टा करने लगे हैं। भयावह होने के अतिरिक्त यह स्थिति हिन्दु जाति के भविष्य के लिए अनिष्ट सूचक भी है।

इन परिस्थितियों से हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न जटिल-से जटिलतर होता जा रहा है और मेरी सार्वभौम मानवत्व अथवा विश्व-कौटुम्ब्य की नीति में दरार पड़ती दिखाई देने लगती है। क्या आत्म-विनाश की राख से विश्वबन्धुत्व का भव्य भवन निर्मित हो सकेगा ? हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा करते हुए ही मुझे सार्व-भौमिकता की संसाधना करनी होगी।

सेक्युलरिज्म और साहित्यकार

○

श्री गुरुदत्त

जब लक्ष्मण मेघनाथ की बर्छी से घायल हो गया और उसके जीवन की आशा छूटने लगी तो विभीषण ने लंका के वैद्य से चिकित्सा कराने की सम्मति दे दी। राम की सेना लंका पर आक्रमण किये हुए थी और कई दिन से युद्ध चल रहा था। लक्ष्मण के मरणासन्न हो जाने से लंका में खुशियाँ मनाई जा रही थीं। ऐसे समय में लंका के ही एक वैद्य से लंका के प्रमुख शत्रु के भाई की जीवन-रक्षा के लिये कहना विचित्र प्रतीत होता था। वैद्य के चिकित्सा करने में भी सन्देह था।

परन्तु वैद्य को बुलाया गया और वह चिकित्सा करने के लिए तैयार हो गया। चिकित्सा हुई और लक्ष्मण स्वस्थ हो पुनः रावण की सेना से लड़ने के लिए तैयार हो गया।

आज के काल में वैद्य के ऐसे व्यवहार पर आलोचना की जा सकती है। क्या शत्रु-पक्ष के किसी प्रमुख व्यक्ति को जीवित और स्वस्थ करना क्षम्य है? हमारा विचार है कि लंका के वैद्य ने एक उचित कार्य ही किया था। एक वैज्ञानिक के लिए अपने विज्ञान के प्रयोग में शत्रु और मित्र में भेद-भाव करना सर्वथा अनुचित है। यही बात हम एक साहित्यकार की मानते हैं। साहित्यकार अपनी साहित्य-रचना में पक्ष-विपक्ष का विचार छोड़कर सत्य का निरूपण करने के लिए तैयार रहता है। यह उसका कर्तव्य है। ऐसा करता हुआ वह अपनी कला और विज्ञान का सदुपयोग करता है।

सैक्युलर का अर्थ, सम्प्रदाय के विचार को छोड़कर, कार्य करना है। एक लेखक जब सम्प्रदाय के भेद-भाव का विचार छोड़कर अपने ज्ञान-विज्ञान का प्रयोग करता है, तब वह एक सैक्युलर साहित्यकार माना जा सकता है।

यही बात सैक्युलर राज्य की है। जब राज्य पक्षपात रहित होकर, पक्ष और विपक्ष को भूलकर, शासन कार्य चलाता है, तब राज्य सैक्युलर अर्थात् निरपेक्ष कहा जा सकता है।

एक वैद्य, एक लेखक अथवा एक शासक निरपेक्ष रहने ही चाहियें। वैद्य की चिकित्सा पक्षपात रहित होकर ही होनी चाहिए। इसी प्रकार लेखक

का लेख अथवा शासक का शासन पक्षपात रहित होना चाहिये। दूसरे शब्दों में ज्ञान, विज्ञान एवं शासन ईश्वरीय देन मानी जाती है और इनका प्रयोग अपने और पराये के साथ समान रूप में होना अत्यावश्यक है।

परन्तु क्या किसी शासन के नियम भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों अथवा समुदायों के लिये भिन्न-भिन्न हो सकते हैं ? निःसन्देह नहीं। यदि होंगे तो शासन सैक्युलर अर्थात् निरपेक्ष नहीं माना जा सकता। इसका अर्थ यह है कि शासन के नियम शासन के अन्तर्गत सब सम्प्रदायों एवं समुदायों के लिए समान होंगे। इसी प्रकार लेखक अथवा चिकित्सा का ज्ञान-विज्ञान सबके लिए समान होगा। यह नहीं हो सकता कि लेखक हिन्दुओं के लिये एक बात लिखे, मुसलमानों के लिये दूसरी बात लिखे और ईसाइयों के लिये तीसरी बात लिखे। यह नहीं हो सकता की एक चिकित्सक एक ही रोग की औषध हिन्दू, मुसलमान और ईसाई के विचार से भिन्न-भिन्न दे।

हमारा कहने का अभिप्राय यह है कि एक साहित्यकार जब साहित्य की रचना करता है तो उसका साहित्य पूर्ण मानव-समाज के कल्याण के लिये होना चाहिए। ऐसा करने से ही वह वास्तविक रूप में साहित्यिक माना जा सकता है।

संसार में सच्चाई एक है और उसका प्रकटिकरण पूर्ण समाज के लिए समान होना चाहिए। इसी भाव को वेद में भगवान् ने इस प्रकार लिखा है :—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्या ँ् शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ॥

यजु०२६।२

इसका अर्थ यह है कि कल्याणमयी वाणी, जैसे मैं तुमको दे रहा हूँ, वैसे ही तुम भी इसे पूर्ण मानव-समाज—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज और चाण्डालों को दो।

अर्थात् वेद वाणी सैक्युलरिज्म का प्रतिपादन करती है। परन्तु वेद में यह भी लिखा है :—

प्रत्युष्ट ँ् रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्त ँ् रक्षो।
निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥

यजु—१।७

अर्थात्—दुष्ट पुरुष की भली प्रकार जाँच करके, उसको खूब संतप्त किया जाए। परद्रव्यापहारी पुरुष तथा निर्दयी शत्रु भी सन्तप्त हों। इनका

ठीक विवेचन अर्थात अपराध के अनुसार दण्ड का विधान हो और इनको खूब दंड मिले। इसके साथ ही महान अन्तरिक्ष भी हमारे वश में हों।

ये दोनों बातें परस्पर विरोधी नहीं हैं। इसमें कारण यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इत्यादि का न तो कल्याण करने में भेद-भाव किया गया है और न ही उनमें दुष्टों को सन्तप्त करने में। यही निरपेक्षता है। यही सैक्युलरिज़्म है।

विडम्बना यह उत्पन्न हो गई है कि वेद के मानने वाले निरपेक्ष नहीं रहे। पहले तो ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि वर्णों को जन्म से मान लिया और फिर वेद का पाठन-पठन केवल ब्राह्मणों के लिए सीमित कर दिया। यह इसी प्रकार है कि जैसे हिन्दू की सन्तान हिन्दू और मुसलमान की सन्तान मुसलमान मान ली जाए और फिर शासन का लाभ हिन्दुओं अथवा मुसलमानों तक सीमित कर दिया जाए। न तो वे ब्राह्मण निरपेक्ष कहे जा सकते हैं जिन्होंने ब्राह्मण क्षत्रिय, इत्यादि को जन्म से मानकर वेदवाणी को ब्राह्मणों तक सीमित किया। न ही वह शासन निरपेक्ष कहा जा सकता है जिसमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई इत्यादि को जन्म से ऐसा मान, शासन को भिन्न-भिन्न समुदायों में भिन्न-भिन्न प्रकार से सीमित किया हो।

कहने का अभिप्राय यह है कि सत्य-झूठ, न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, कर्तव्य-अकर्तव्य पूर्ण प्रजा के लिए एक समान होना चाहिए। जो एक मनुष्य के लिए सत्य है, वही दूसरे के लिए भी सत्य है। जो एक के लिए न्याय है, वह दूसरे के लिये भी न्याय हो, सब उचित कार्यों को धर्म की संज्ञा दी गई है। और सब अनुचित कार्यों को अधर्म की संज्ञा दी गई है। अतः सत्य, न्याय, उचित एवं कर्तव्य धर्म हैं। इसी प्रकार असत्य, अन्याय, अनुचित अकर्तव्य अधर्म हैं। जो एक के लिये धर्म है, वही दूसरे के लिये भी धर्म हो और जो एक के लिये अधर्म है वही दूसरे के लिये भी हो। ऐसा व्यवहार निरपेक्ष अर्थात् सैक्युलर माना जायगा।

सैक्युलर का अर्थ धर्म-अधर्म में निरपेक्ष नहीं। यह धर्म और अधर्म में सीमा-रेखा बाँधे हुए है। हाँ, यह हिन्दू मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिख, बंगाली, मद्रासी, गुजराती, आन्ध्रवासी, हिन्दी भाषी, तेलुगू भाषी इत्यादि वर्गों में निरपेक्ष होगा। सैक्युलर का अर्थ किसी मूर्ख ने धर्म-निरपेक्ष किया है। सैक्युलर तो सदा धर्मयुक्त होगा और अधर्म से दूर होगा। हाँ, इसकी धर्म स्थापना और इसका अधर्म उन्मूलन सबमें समान होगा।

अतएव सैक्युलर अर्थात् निरपेक्ष का अर्थ धर्म का पक्ष लेने वाला और

अधर्म का विरोध करने वाला ही हैं। एक सैक्युलर साहित्यकार वही हो सकता है जो निर्भीकता से धर्म का प्रतिपादन करे और अधर्म का खण्डन करे। धर्म और अधर्म के पहचानने में वह भूल कर सकता है, परन्तु जो कुछ भी वह धर्म समझता है अथवा जिसे भी वह अर्धम मानता है, उसका घोष वह निर्भयता से करे। यही उसका सैक्युलर-वाद है।

सेक्युलर के इन लक्षणों के अनुसार श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती एक महान् सैक्युलर लेखक, प्रचारक और वक्ता थे। इन्हीं लक्षणों के अनुसार सैक्युलरिज़्म के सबसे घोर विरोधी अर्थात् पक्षपाती इस युग में श्री जवाहर लाल नेहरू हुए हैं।

श्री जवाहर लाल नेहरू कश्मीर में मुसलमानों को इस्लाम के नाते अधिमान देने वाले सैक्युलर नहीं कहे जा सकते। इसी प्रकार भारत की संसद् जो मुसलमानों के लिये एक पत्नीक कानून बनाने से डरती है और हिन्दुओं के लिए यही बात कर सकती है, वह सैक्युलर नहीं हो सकती। सन् १९२१ से लेकर सन् १९४७ तक श्री गाँधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस मुसलमानों को हिन्दुओं पर अधिमान देने वाली संस्था सैक्युलर नहीं थी। सन् १९४७ के बाद आज तक भारत का शासन मुसलमान और ईसाइयों पर वे प्रतिबन्ध लगाने से डरता हुआ, जो उसने हिन्दुओं पर लगाए हुए हैं, सैक्युलर नहीं हो सकता।

इसी प्रकार जो लेखक अथवा साहित्यकार किसी भी समुदाय अथवा सम्प्रदाय के दोषों को छिपा कर रखना चाहता है, वह निरपेक्ष अथवा सैक्युलर नहीं हो सकता। यह ऐसा ही है कि जैसे कोई डाक्टर किसी मुसलमान श्वास के रोगी को एक दवाई दे और हिन्दू श्वास के रोगी को दूसरी दवाई दे।

अतएव एक सैक्युलर साहित्यकार धर्म का प्रतिपादन करने वाला होगा। वह धर्म-निरपेक्ष नहीं हो सकता। उसके लिये मनुष्य समाज के, यह भी कहा जा सकता है कि प्राणी मात्र के, सब घटक समान हैं। उन सबमें धर्म पर आरूढ़ उसके मित्र हैं और अधर्माचरण में रत उसके शत्रु हैं। यह है सैक्युलर-वाद। यदि निरपेक्ष भाव से कहा जाए तो इस भू-तल पर केवल मात्र हिन्दू समुदाय ही निरपेक्षता (सैक्युलर-इज़्म) के कुछ-कुछ समीप पहुंचता है।

जब कृष्ण ने यह कहा :—

> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ।। भ० गी०—४।७

तब कृष्ण ने अपनी धर्म निरपेक्षता अर्थात् सर्वोत्कृष्ट सैक्युलर-इज्म का प्रदर्शन ही किया था।

अखंड भारत की ओर

○

श्री मुनीन्द्र प्रसाद वर्मा

आज कश्मीर को लेकर सारा देश पाकिस्तान के निर्माण के बाद से ही परेशान है। न जाने कितने लोगों का बलिदान हुआ। एक ओर यदि डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी का ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने है, तो दूसरी ओर १९६५ में भारत-पाक संघर्ष के दौरान मरे अन्य जवानों के अलावा अब्दुल हमीद जैसे सैनिक की शहादत को भी हम भुला नहीं सकते।

कश्मीर की सुरक्षा और वहाँ की अर्थव्यवस्था को सुधारने के सम्बन्ध में काँग्रेसी नेताओं की गलतियों के कारण मामला इतना बिगड़ गया है कि पूरे कश्मीर को भारतीय संघ में मिलाने के महान् कार्य को सम्पन्न करने के लिए हमें दूसरे तरीके अपनाने होंगे। निरर्थक युद्ध और सतही शाँति से मामला सुलझ नहीं सकता। साँप को मारने के लिए कभी-कभी हिम्मत के साथ उसकी पूंछ को पकड़कर उसके मुंह को कड़ी जमीन पर जोर का पटका देना पड़ता है।

इसलिए सतही शाँति और दुस्साहसी युद्ध की बजाय यह देखना होगा कि पूर्वी पाकिस्तान में चीनी कुचक्र को दरकिनार करते हुए वहाँ के भाषावादी लोकताँत्रिक आंदोलन को भारतीय राजनीति कहाँ तक प्रभावित कर सकती है। इसके लिए बंगाली भाषा और संस्कृति के सन्देश को पूर्वी पाकिस्तान की जनता तक पहुँचाने का तरीका निकालना होगा। सम्भव है, कोई एक पार्टी इसके लिए कारगर न हो सके। भारत की सभी पार्टियाँ और देश की साँस्कृतिक संस्थाओं को ऐसा तरीका निकालना होगा, जिससे पूर्वी पाकिस्तान में बंगाली भाषा और उसकी वैष्णव संस्कृति को जिलाया जा सके।

आज भारत का सिंधी समाज अपने देश में रहते हुए थोड़ी व्यावसायिक हैसियत रखने के बावजूद अपने अवकाश की किंचित् घड़ियों में सूना-सूना अनुभव करता है। उसका सारा प्राँत पाकिस्तान में तिरोहित है। उधर सीमाँत गाँधी अपनी सारी उमर जेलों में गुजार देने के बाद भारत से यह माँग कर रहे हैं कि वह पठानों की मदद करे। इस सम्बन्ध में नई दिल्ली के एक सियासी साप्ताहिक में प्रकाशित निम्निलिखित समाचार प्रेरणाप्रद हो सकता है।

"अभी हाल ही में नेशनल अवामी पार्टी के नेता मीर गौस बख्श बिजंजो को इन्हीं नारों "एक यूनिट तोड़ दो", "बलोची अवाम के हकूक वापस करो" और "लिस्सानी (भाषाई) बुनियाद पर फिर से सूबे कायम करो") के सम्बन्ध में दफा १२५—ए (बगावत) के तहत १४ साल की कड़ी कैद और पांच हजार जुर्माना की सजा दी गई है।

"...याद रहे कि बलोचिस्तान में न कोई जलसा हो सकता है और न प्रेस से कोई इश्तहार ही इस सम्बन्ध में छपवाया जा सकता है।"

"इसी तरह सिंध में कुछ समय से "जियो सिंध" (जय सिंध) आंदोलन चल रहा है। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य सिंध की अपनी संस्कृति और भाषा की हिफाजत करना और उसको तरक्की देना है।..."

—जनयुग—७ जुलाई

अब तक मार्शल अयूब को इस बात का नाज था कि पूर्वी हिस्से में चाहे जो कुछ भी होता रहे, पश्चिमी पाकिस्तान में मेरे खिलाफ कोई जुबान नहीं हिला सकता। ये घटनायें समय की तेज रफ्तार का संकेत करती हैं। पश्चिमी पाकिस्तान में लोक संस्कृति के पुजारियों ने उस दीपक की लौ जलायी है, जिस तक चीन की छाया तक नहीं पहुँच सकती। भले ही मार्शल अयूब विदेशी हथियारों से इनका दमन करने की कोशिश में भारत पर हमला करो का नारा दें। पर याद रखना होगा कि देश के अल्पसंख्यक भाषायी लोगों की जुबान बंद करके और उनका मनोबल गिराकर कोई सफलता नहीं मिल सकती। इसीलिए भारत में भी कुछ लोगों ने माँग की थी कि पलटन में अंग्रेजी का वर्चस्व हटाकर देशी जुबानों की प्रतिष्ठा की जाय।

डा० राममनोहर लोहिया के 'जंग या महासंघ' के नारे का अर्थ कई प्रकार से लगाया जा सकता है और इसीलिए संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के ऐसे कई नेता, जो दूसरा लोहिया बनने की कोशिश में हैं, शेख अब्दुल्ला से दोस्ती करने की, उन्हें समझाने बुझाने की मसीहाई कोशिश करते देखे गये हैं। कश्मीर की अर्थव्यवस्था में भ्रष्टाचार का घुन लगाने वाले बख्शी गुलाम मुहम्मद भी पिछले दिनों उनके स्नेहपात्र हुए जा रहे थे, क्योंकि बख्शी साहब ने डा० लोहिया के शवदाह के अवसर पर उपस्थित होने की कृपा की थी। यदि लोहिया के विचारों को उनकी पार्टी के नेताओं ने समझा होता, तो वे सीमाँत गाँधी से विस्तृत वार्ता करते और इस बात के लिए देश में व्यापक आंदोलन का नारा देते कि किस प्रकार गफ्फार खाँ को मदद दी जा सकती है। श्री मनोहर लाल सोंधी धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने सीमाँत गांधी से लम्बी-चौड़ी राजनीतिक

बातचीत की थी।

भारतीय जनसंघ में भी कुछ बदलाव अपेक्षित है। जनसंघ घटनाओं की रफ्तार से यह समझाने का प्रयास करता लगता है कि भाषावर आंदोलन देश को खंड-खंड नहीं करते, बल्कि साँप्रदायिकता से देश खंड-खंड होता है। क्या इस बात से इनकार किया जा सकता है कि पंजाबी सूबे के निर्माण के समय भारतीय जनसंघ के नेतृत्व का मन बँटा हुआ था? उसका मन विचलित था?

यह एक शुभ लक्षण है कि भारतीय जनसंघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री बलराज मधोक ने पिछले दिनों दिल्ली में विधान सभा की स्थापना की राय दी है। मेरी धारणा है कि श्री मधोक को इसकी प्रेरणा हरियाणा के मध्यावधि चुनाव में विशाल हरियाणा दल के उभार से मिली है। इसके लिए बहुत संतुलित ढंग से विचार करने की आवश्यकता है। शायद किसी विशाल हिन्दी-प्रदेश या मध्यदेश के निर्माण की परिकल्पना से ही हिन्दी की बोलियों के झगड़े मिट सकेंगे। दूसरी ओर इस विशाल हिन्दी-प्रदेश या मध्यदेश की तमाम बोलियों के अलिखित साहित्य और लोकसंस्कृति से हिन्दी भाषा और भारतीय संस्कृति की गतिशील धारा को पुष्ट करने का प्रयास करना होगा। इस सम्बन्ध में 'कल्पना' के अप्रैल अंक के एक लेख का उदाहरण देना चाहूँगा।

"हिन्दी की बोलियों को समृद्ध करने का प्रयत्न हिन्दी से अलगोवे का प्रयत्न नहीं है।..."

"हिन्दी भाषा की बोलियों को हिन्दी से अलग करने का आरम्भ भाषा वैज्ञानिकों ने नहीं किया। भाषा वैज्ञानिकों के अध्ययन का अनुचित लाभ उठाया गया...।"

मध्यम वर्ग की आवश्यकता

मेरा अपना मत ऊपर के तमाम कारणों से यही बनता है कि अपने देश में हिन्दीतर भाषायी आन्दोलन अथवा भाषावर प्रान्तों के निर्माण की विवादास्पद समस्या पर मिश्रित नीति या मध्यम मार्ग की आवश्यकता है।

पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों की भाषाई संस्कृति की रक्षा के लिए हमें पंजाबी सूबे के निर्माण को अहितकर नहीं मानना चाहिए। इस सम्बन्ध में "शाश्वत वाणी" के जुलाई अंक में डा० सतीशकुमार आहूजा के लेख में उद्धरित डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के मुखारविन्द से वर्णित निम्न घटना का उदाहरण देकर अपनी बात आगे बढ़ाना चाहूँगा।

'लो एक खबर सुनो, जिसे बहुत कम लोग जानते हैं। १९५१-५२

हड़तालें

○

श्री सचदेव

आजकल हड़तालों का दौर पुनः प्रारम्भ हो गया है। इस वर्ष धान्य की उपज सन्तोषजनक हुई है। परिणामस्वरूप सब वस्तुओं के मूल्य में जो कमी आनी चाहिए थी, वह नहीं आ पाई। इसके विपरीत वस्तुएँ उसी मूल्य पर टिकी हैं जिस पर पहले थीं और कुछ तो महँगी भी होती जा रही हैं। कारखानों में बनने वाली वस्तुओं के मूल्य भी बढ़ रहे हैं। ऐसा क्यों है ? क्या इसका उत्तर न मिलने के कारण ही हड़तालें हो रही हैं ? इसके साथ एक प्रश्न यह भी है कि क्या महंगाई और हड़तालों का कुछ अन्य विकल्प भी है ?

वर्तमान युग के अर्थ शास्त्री वस्तुओं के महंगा होने के कई कारण बताते हैं। उनमें से दो मुख्य हैं। एक तो यह कि माँग अधिक हो जाने के कारण वस्तु महँगी हो जाती है। और दूसरे यह कि पैदावार (प्रदाय) कम हो जाने के कारण भी महँगाई हो जाती है।

परन्तु एक तीसरा भी कारण है। यह कारण अर्थ-शास्त्रियों के विचार क्षेत्र के बाहर का है। यह राजनीतिक कारण है। देश की राजनीति ऐसी दिशा में चल रही है कि वस्तुएँ महँगी होनी चाहिएँ। अर्थशास्त्री भी अपनी टाँग राजनीति में अड़ाना चाहते हैं। वे इसमें भी अपना हस्तक्षेप करते हैं। इससे स्थिति और भी जटिल हो जाती है।

इन तीनों कारणों की पृथक्-पृथक् जाँच की जाय तो पता लगेगा कि इनकी पृष्ठ भूमि में वस्तुतः एक ही कारण है।

यह कहा जाता है कि भारत की आबादी बढ़ रही है। इस कारण अन्नादि की माँग बढ़ गई है और उपज उसी अनुपात में नहीं बढ़ रही। इस कारण महँगाई है। आबादी बढ़ी है इसमें सन्देह नहीं, परन्तु जनसंख्या में वृद्धि का वह अनुपात नहीं जो पैदावार अथवा प्राप्ति (Supply) में वृद्धि का है।

सन् १९३७ में भारत की जनसंख्या तैंतीस करोड़ थी। सन् १९६१ में जन-संख्या चव्वालीस करोड़ थी। अर्थात् तीन के स्थान पर चार हो गयी है। परन्तु सन् १९६१ में गेहूँ का भाव बीस रुपये मन था। अर्थात्

दाम रुपये का १५ सेर से दो सेर हो गया। दूसरे शब्दों में महँगाई सात गुणा हो गई थी। जन-संख्या में वृद्धि हुई एक तिहाई, परन्तु दाम बढ़े सात गुणा। पहले भी अनाज बर्मा इत्यदि से मंगवाया जाता था और उसका मूल्य दिया जाता था। जन-संख्या में वृद्धि से काम करने वाले हाथ अधिक थे। यदि वे हाथ ठीक ढँग पर काम करते तो उपज बढ़ सकती थी अथवा धनोपार्जन कर अधिक अनाज की प्राप्ति की जा सकती थी। प्रत्येक मुख के के साथ दो हाथ बन जाते हैं। अतः यदि देश के अर्थ शास्त्री जन-संख्या में वृद्धि के लिए हाय तोबा मचाने की अपेक्षा इन बढ़ रहे हाथों के लिए काम ढूंढ़ते तो जन-संख्या की वृद्धि महँगाई में किंचित् मात्र भी कारण नहीं हो सकती थी।

ये अर्थ शास्त्री और अन्य सब विचार करने वाले लोग अंग्रेज़ी काल की शिक्षा में पढ़े-लिखे होने के कारण समस्या को समझ ही नहीं सके और घड़ा-घड़ अन्न विदेशों से मंगवाने लगे। अमरीका ने गेहूँ दान-दक्षिणा में देना आरम्भ किया तो हमारे अर्थ-शास्त्री अपनी मूर्खतापूर्ण योजनाओं को चलाने लगे। बड़े-बड़े उद्योग और सरकारी व्यापार-मण्डल बनने लगे। किंतु वे भी महँगाई कम नहीं कर सके।

बड़े पैमाने पर उद्योग-धन्धे वस्तुओं को सस्ता नहीं करते, वरं महँगा करते हैं। वस्तुएं अधिक सँख्या और मात्रा में बनने लगती हैं। उन पर परिश्रम कम व्यय होता है, परन्तु वस्तुओं का दाम अधिक होता है। यह सब स्थानों पर जहाँ बड़े स्तर पर उद्योग-धन्धे चलाये जाते हैं, हो रहा है। कारण स्पष्ट है कि यण्त्रादि एक महँगी वस्तु हैं। जितना बड़े स्तर पर उपज करने वाला यन्त्र होगा, उतना ही वह महँगा होगा। मानव परिश्रम तो कम हो जाता है, परन्तु यन्त्र का प्रारम्भिक व्यय और उसकी टूट-फूट और घिसाई इतनी अधिक होती है कि मानव परिश्रम में बचत उस का प्रतिकार नहीं कर सकती।

इसके साथ ही एक बात और हो जाती है। वह है बेकारी में वृद्धि। इस बेकारी को दूर करने के लिए दो उपाय किये जा सकते हैं। एक यह कि नित्य नये-नये उद्योग-धन्धे चलाये जायें और उनमें बेकार लोगों को लगाया जाये। जितने भी नये उद्योग चलाये जाते हैं उनकी पूँजी के लिए पहले उद्योगों में काम करने वालों के परिश्रम का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार पहले उद्योगों में हुई बचत नये उद्योगों में व्यय होने से पहले उद्योगों से बने माल को सस्ता नहीं होने देतीं।

इस बेकारी को दूर करने का एक और भी उपाय है। बेकार लोगों को तो पैन्शन दी जाती है अथवा उनसे नगण्य काम लिया जाता है और वेतन पूरा दिया जाता है। यह भी मशीनों से बनी वस्तुओं के दाम सस्ते नहीं होने देती।

हमारे कहने अभिप्राय यह है कि बड़े-बड़े उद्योगों में मानव परिश्रम कम व्यय होता है और उपज बढ़ जाती है। इस पर भी खरीददार को वस्तु सस्ती नहीं मिल सकती। कारण यह कि मशीन का प्रारम्भिक व्यय, इसको चालू रखने के लिए योग्य, ऊँचे वेतन वालों की आवश्यकता, मशीन की टूट-फूट एवं घिसाई इतनी अधिक होती है कि ग्राहक को वस्तु सस्ते दाम पर मिल ही नहीं सकती। ग्राहक से प्राप्त दाम में से ही नये उद्योग की पूँजी अथवा बेकार लोगों की पैन्शन अथवा उनसे नाम मात्र का काम लेकर पूरा वेतन देने के लिए धन निकालना पड़ता है।

अतः हमारा यह कहना है कि वस्तुओं की महँगाई में एक कारण बड़े-बड़े उद्योगों का चलाना है।

इसके साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि बड़े उद्योगों से बना माल अपने देश में खप नहीं सकता और विदेशों में मुकाबिले पर माल बेचने से सरकार को अपने पास से उपदान (Subsidy) देना पड़ता है। यह टैक्सों से अथवा ऐसे उपायों से प्राप्त किया जाता है, जिससे देश के ग्राहकों को वस्तु का दाम और भी अधिक देना पड़ता है।

वस्तुओं को सस्ता करने का उपाय यह है कि छोटे-छोटे घरेलू स्तर (cottage scale) के उद्योग हों।

संस्कार अभी भी उद्योग-धन्धों, और खेती-बाड़ी को भी, यन्त्रों द्वारा चलाने के पीछे पड़ी है। इससे वस्तुएँ (कपड़ा इत्यादि) कभी सस्ती नहीं होगी। परिणाम यह है कि वेतनधारी जनता अपने वेतन पर सन्तुष्ट नहीं रह सकती। आप वेतन बढ़ा दीजिए, इसका प्रभाव महँगाई पर होगा। वेतन बढ़ने से महँगाई बढ़ती है। इससे पुनः वेतन बढ़ाने का आन्दोलन होता है। यह एक दूषित चक्र है।

आज सरकारी कर्मचारी वेतन वृद्धि के लिए कह रहे हैं। वेतन वृद्धि होगी तो सरकार काम चलाने के लिए कर बढ़ायेगी। इससे वस्तुएँ महँगी होंगी और पुनः वेतन वृद्धि की माँग होगी।

कर्मचारियों की माँग है कि उनके वेतन को वस्तुओं के मूल्य संकेतक (price index) के साथ जोड़ दिया जाये। यह भी स्थाई प्रबन्ध नहीं हो सकता। कारण यह कि वेतन वृद्धि वस्तुओं का दाम बढ़ायेगी और दाम बढ़ने

शी वेतन बढ़ेंगे ।

अतः इस समस्या का सुझाव ही यह है कि मानव परिश्रम का अधिक-से-अधिक और यन्त्रादि का कम-से-कम प्रयोग हो । यदि यन्त्र लगाये भी जाएँ तो वे इतने छोटे-छोटे हों कि मनुष्य अकेला उन पर काम कर सके। तब ही वस्तुओं के दाम कम होंगे और तब हड़ताल इत्यादि के लिए स्थान सीमित हो जायेगा ।

यह तो है महँगाई और हड़तालों का सम्बन्ध । परन्तु हड़तालें तो महँगाई के बिना नौकरी की अन्य उचित अथवा अनुचित सुविधाओं के कारण भी होती देखी जाती हैं । इनमें भी दो बातें है । एक उचित और आवश्यक सुविधायें और दूसरी हैं काल्पनिक और अनावश्यक सुविधाएँ । इनमें पहली प्रकार की सुविधाओं की प्राप्ति के लिए न्यायिक जाँच का एक ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जो तुरन्त निर्णय दे सके । साथ ही न्यायिक निर्णय (Adjudication) को तुरन्त लागू करने का प्रबन्ध होना चाहिए । न्यायिक निर्णय देने वाले को यह भी अधिकार होना चाहिए कि वह निर्णय न मानने वाले के लिए दण्ड भी निश्चय कर सके ।

इसका प्रबन्ध हमारी समाजवादी सरकार न तो करना चाहती है और कदाचित् कर भी नहीं सकती । यह करना इस कारण नहीं चाहती क्योंकि प्राय: सब समाजवादी सरकारें अशान्ति चाहती हैं । इस अशान्ति से इसको अपने लिए अधिक और अधिक अधिकार लेने का बहाना मिल जाता है । जब तक सरकार सब कुछ अपने अधीन नहीं कर लेती, तब तक यह समाज में अशान्ति उत्पन्न करती रहती हैं । यह हड़तालों को रोक सकती भी नहीं । इसके लिए इसे कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता रहेगी और यह कर्मचारियों का नाम लेकर बनी सरकार कर्मचारियों को नियन्त्रण में नहीं रख सकती ।

काल्पनिक और अनावश्यक माँगों के कारण हड़तालें भी होती हैं। ऐसा कराने वाली संसार में एक विधारधारा है । वह है कम्युनिस्ट विचार-धारा । ये लोग थोड़ी-सी संख्या में होते हुए भी सम्पूर्ण समाज पर अपना नियन्त्रण रखना चाहते हैं । ऐसा करने के लिए ये कर्मचारियों की हड़तालें सप्रयोजन मानते हैं ।

इसका एक उदाहरण अभी-अभी फ्रांस में मिला है । देश में व्यापक हड़ताल कर दी गई । देश का सब काम ठप्प हो गया । इन्हीं लोगों ने अथवा इनके सहयोगियों (Fellow travellers) ने दुनियाँ भर में हल्ला मचा दिया

कि फ्रांस में क्रान्ति हो गई है। परन्तु फ्रांस के स्थित-प्रज्ञ प्रधान डी-गॉल ने इनका भाँडा फोड़ दिया। पता चला है कि हड़तालें करने वाले पूर्ण जाति के चार प्रतिशत से अधिक नहीं थे।

इनके साथ व्यवहार का ढँग हो यह है कि इनको (कम्युनिस्टों को) शरारत करने से पहले ही दबा दिया जाये। एक न्यायप्रिय राज्य में कम्युनिस्टों के लिए स्थान नहीं हो सकता। जिन लोगों का सिद्धान्त ही यह हो कि येन केन प्रकारेण समाज में दुर्व्यवस्था बना कर अपना उल्लू सीधा करना है, उनके लिए देश के जेलखानों में ही स्थान हो सकता है।

पृष्ठ ३८ का शेष

की बात है, पूर्वी बंगाल, पाकिस्तान से खबर आई कि बंगाल के दोनों टुकड़े मिलाकर महाबंगाल की रचना का यही उचित समय है। भारतीय बंगाल आगे बढ़े तो पाकिस्तानी बंगाल स्वागत करेगा...।"

क्या ही अच्छा होता कि चंडीगढ़ को झगड़े का प्रश्न न बनाकर अकाली नेता पाकिस्तानी पंजाब की भाषा और संस्कृति की खोज खबर लेने का कोई कार्यक्रम बनाते। बहुत दिनों पहले ही बंगाल प्रान्त का निर्माण भाषा के आधार पर न हुआ होता तो पूर्वी पाकिस्तान, पाकिस्तानी शासकों के लिए सिरदर्द न रहता।

कश्मीर के सम्बन्ध में भी यह हो सकता है कि उसके राजनीतिक एकीकरण और आर्थिक विकास के उद्देश्य को नजरअन्दाज न करते हुए डोगरी कश्मीरी और उर्दू की उन्नति का कोई समान्वित कार्यक्रम बनाया जाय। फिर अनगिनत शेख कश्मीर और देश के अल्पसंख्यकों को उत्तेजित नहीं कर सकेंगे।

सुख दुःख की समस्या

○

श्री रामशरणदास वशिष्ठ

संसार में मनुष्यमात्र सुख की इच्छा करते हैं और सुख प्राप्ति के उपाय भी करते हैं। पर सुख सबको नहीं मिलता। संसार में अधिक जनता दुःख से पीड़ित होती है। इसका क्या कारण है ?

आदिकाल से इस विषय पर विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत और विचार रहे हैं। किसी ने कहा "ततिदे सर्वं दुःखं दुखःसाधनं।" बौद्ध मत का यही प्रचार था कि "सर्वं इद्म दुःखम्"। यही कथन गुरुनानक जी का भी था। "नानक दुखिया सब संसार।" संसार दुःख का घर है। संसार दुःख का रूप है। यह संत मत के कई संतों ने कहा है। इसी कारण दुःख साधनारूप भावना करके वे संसार को छोड़ कर जंगलों में संन्यासी बनकर जाने का उपदेश करते थे। सब दुःखमय जीवन हो और सुख का लेशमात्र न हो, यह हो नहीं सकता, क्योंकि सुख की अपेक्षा के बिना दुःख सिद्ध नहीं होता। जैसे प्रकाश और अंधकार साथ-साथ चलते हैं। इसीलिये केवल दुःख भावना ठीक नहीं। संसार में दुःख वा सुख दोनों का अस्तित्व है। यही सिद्धांत है।

यदि सारा संसार दुःख रूप होता तो किसी की प्रकृति सुख प्राप्ति की न होती, न किसी को सुख की इच्छा होती। पर मनुष्य सुख में प्रवृत्ति और दुःख की निवृत्ति चाहता है। यदि बुद्ध मतानुसार इस सुख को भी दुःख ही मानें तो यह असम्भव है। संसार में यह देखने में आता है कि सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख चक्रवत् आते हैं। जीव प्रकृति-बन्धन में फंसा हुआ, सत्व, रजस और तमस के गुणों और उनसे उत्पन्न हुए विकारों के अंदर से गुजरता हुआ अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख दुःख भोगता है। इसमें यही सिद्धांत है। पर यह सांसारिक सुख-दुःख स्थायी नहीं। न ही यह बाह्यय सुख है। यह सांसारिक सुख इन्द्रियों का सुख है। यह क्षणभंगुर है। गीता ने भी यह कहा है कि मनुष्य को सुख-दुःख में समान रहना चाहिए। श्रीकृष्ण कहते हैं कि प्रकृति के योग से मनुष्य को सुख-दुःख होता है। इसलिये मनुष्य को दोनों अवस्थाओं में समान रहना चाहिए। ऐसा ही मनुष्य उन्नति

करता है। सच्चा स्थाई सुख आत्मज्ञान, ईश्वरभक्ति, प्रभु आराधना और सेवा से प्राप्त होता है। इस सांसारिक सुख का परिणाम दुःख है। जब मनुष्य की इच्छा पूरी नहीं होती, तब वह दुःख मानने लगता है। इच्छाएँ अनन्त हैं। नई-नई बनती रहती हैं। सबकी पूर्ति असम्भव है। इसलिए मन की इच्छाओं को रोकना ही उत्तम है।

राजा भर्तृहरि ने भी, गीता की भाँति ही तीन प्रकार के सुख माने हैं। सात्विक, जिसके परिणाम में भी सुख हो। वह सुख आत्मज्ञान से प्राप्त होता है। जो सुख विषय भोग से मिलता है, वह राजसी है और जो सुख आलस्य निद्रा या प्रमाद से मिलता है वह तामसी है। जो मनुष्य शास्त्र विधि पर न चले, कामवश विषयों को भोगे, उसको कभी शान्ति प्राप्त नहीं होती। मनुष्य को चाहिए कि वह इस अनित्य सुख के पीछे न भागे। परन्तु आंनन्द प्राप्ति की चेष्टा करे। क्योंकि प्रभु आनन्द के केन्द्र हैं। ईश्वरज्ञान वा भक्ति से उस आनन्द की प्राप्ति करे। प्रभु की शरण में जाने से सच्चा सुख मिलता है। वह संसार में रहकर, धर्म पालन करता हुआ प्राप्त करे। सच्चा सुख आत्मा से जाना जाता है। उसका मनुष्य को पुरुषार्थ करना चाहिए। यही वैदिक आज्ञा है।

पृष्ठ ४९ का शेषांश

१५ अगस्त के कार्यक्रम में यदि इस बार विविधता थी तो केवल एक बात में। प्रथम बार नेहरू परिवार के किसी सदस्य की ओर से नेताजी को श्रद्धा-सुमन समर्पित किये गये। प्रथमबार प्रधानमंत्री ने ऐतिहासिक लालकिले की प्राचीर से नेताजी का नामोच्चारण कर उन्हें अपने श्रद्धा-प्रसून अर्पित किये। और एक अन्य महापुरुष का उल्लेख भी इस बार देवी इन्दिरा ने किया। वे संत महापुरुष थे स्वामी विवेकानंद। उनका उद्धरण, जिसके भाव हैं "भारत भू पर जीवन धारण करने वाला व्यक्ति धन्य हो जाता है।" देवी इंदिरा के मुख से निस्सृत हुआ।

भारत के जन-जन के मानस में स्वामी विवेकानंद एवं नेताजी के प्रति जो श्रद्धा एवं सम्मान विद्यमान है, उसमें देवी इंदिरा के नामोच्चारण से चार चाँद लग गये हों, ऐसी बात नहीं। हमारा कथन तो इतना ही है कि इस नामोच्चारण से देवी इंदिरा की अपनी वाणी ही पवित्र हुई है और यदि जब तक वे प्रधामंत्री के पद पर प्रतिष्ठित हैं, इस देश के महापुरुषों, संतों, महात्माओं, ऋषियों, महर्षियों, का पदे-पदे स्मरण करती रहीं तो देश-वासियों का तो सम्मान होगा ही, साथ ही इससे उनकी पिछली पीढ़ियों के पाप भी शनैः शनैः शमित हो जावेंगे।

समाचार समीक्षा

दिल्ली प्रशासन का प्रशंसनीय पग

पन्द्रह अगस्त १९४७ को दिल्ली ने अंग्रेजों से मुक्ति का दिन देखा था। और अब १५ अगस्त १९६८ से दिल्ली अपने प्रदेश में अंग्रेजी से मुक्ति का दिन देख रही है। दिल्ली प्रशासन और दिल्ली नगर निगम ने इस ऐतिहासिक दिन से अपना समस्त काम-काज हिन्दी में चालू कर दिया है। इस स्वागत-योग्य घोषणा को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का उत्तरदायित्व जन-साधारण के ऊपर है। सरकारी घोषणायें बिना जन-सहयोग के केवल कागजी बन जाया करती हैं। राजधानी की यह घोषणा व्यावहारिक, प्रभावी और समस्त भारत को प्रेरणादायक बन सके, इसके लिये नगर निगम और प्रशासन से जो भी पत्राचार या अनुनय-आवेदन किया जाए, वह सब केवल हिन्दी में ही हो। भाषा की, अनुवाद की और टाइपराइटर आदि की असुविधा कुछ दिनों तक सामने आ सकती है। हिन्दी टाइप की सुविधा न हो तो हाथ से लिखकर काम चलाया जा सकता है। अंग्रेजी शब्द के स्थान पर अगर कोई समानान्तर हिन्दी शब्द न मिले तो उस शब्द को देवनागरी लिपि में लिखने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिये। व्यवहार से ही भाषायें बना और संवरा करती हैं।

सभी को अपने निजी और व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के नामपट्ट हिन्दी में कराने चाहियें। अपने मांगलिक कार्यों के निमन्त्रण पत्र हिन्दी में ही भेजे जाने चाहियें। पत्रों के पते, तार आदि हिन्दी में ही लिखने चाहियें। दिल्ली में शीघ्र ही हिन्दी की टेलीफोन निदेशिका प्रकाशित हो रही है। सभी हिन्दी प्रेमियों को हिन्दी की निदेशिका ही लेनी चाहिये और अपने परिचितों को भी इसके लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। परस्पर का वार्त्तालाप हिन्दी में ही किया जाय और हिन्दी प्रदेशों को सरकारी पत्र आदि भी हिन्दी में ही लिखे जावें।

हिन्दी के इस पावन यज्ञ में कुछ लोग विघ्न डालने वाले भी हो सकते हैं, उनसे सावधान रहने की आवश्यकता है। आदमी की राह में जब कांटे आते हैं

तो उन काँटों से वह तीन प्रकार से निबटता है। कुछ काँटे तो ऐसे होते हैं जिनसे आसानी से बचकर निकला जा सकता है, कुछ को उठा कर एक ओर को करके आगे को राह बनाई जा सकती है और कुछ तो मसलने ही पड़ते हैं। ठीक यही बात विरोधी रूपी कंटकों से निबटने के लिये करनी होगी। विरोधी अहिन्दी भाषियों के नाम पर अंग्रेजी का समर्थन करेंगे, राजनैतिक स्वार्थों के लिये अंग्रेजी को बनाये रखना पसन्द करेंगे। इसके लिये वे अखबारों के पास पहुँचेंगे, प्रशासन, निगम और संसद् तक में तर्क-वितर्क करेंगे। किन्तु धैर्य और विवेक के साथ रचनात्मक रीति से उन परिस्थितियों का सामना करना होगा। इस प्रकार हिन्दी प्रेमियों को दिल्ली में हिन्दी का दीप जलाकर देश भर में भाषायी स्वराज्य का प्रकाश प्रसारित करना होगा।

गृहमन्त्रालय और मुख्यमन्त्रियों का अंग्रेजी मोह :

हिन्दी को दिल्ली प्रशासन में राजभाषा के सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित करने के श्रेय के भागी दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री विजयकुमार मलहोत्रा ने एक समारोह में सार्वजनिक रूपेण गृहमन्त्रालय के विचित्र अंग्रेजी मोह का उल्लेख करते हुए बताया कि मन्त्रालय ने उन्हें बुला कर पूछा कि प्रशासन हिन्दी का प्रचलन किस आधार पर कर रहा है? ओफिशियल लैंग्वेजेज़ ऐक्ट के अन्तर्गत यह सब कुछ अवैधानिक है। दिल्ली प्रशासन सभी हिन्दी भाषी राज्यों के साथ हिन्दी में पत्र व्यवहार करता है तथा अहिन्दी भाषी राज्यों को हिन्दी में भेजे गये पत्रों के साथ प्रादेशिक भाषा का अनुवाद भेज देता है। गृहमन्त्रालय की दृष्टि में यह कृत्य भी अवैधानिक है। मन्त्रालय का निर्देश है कि यदि अनुवाद भेजना हो तो प्रादेशिक भाषा में नहीं वरंच अंग्रेज़ी में भेजा जाना चाहिये। यही वैधानिक है।

श्री मलहोत्रा ने ही यह भी बताया कि जहाँ कहीं भी मुख्यमन्त्री सम्मेलनों में भाग लेने के लिये उन्हें जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन्होंने अनुभव किया कि वे और गोवा के मुख्यमन्त्री दो ही व्यक्ति ऐसे हैं जो अपना भाषण हिन्दी में करते हैं, शेष सभी अंग्रेजी में ही (और वह भी अशुद्ध अंग्रेजी में) भाषण करते हैं। यह बात अहिन्दी भाषी प्रदेशों के मुख्यमन्त्रियों की नहीं अपितु हिन्दी भाषी प्रदेशों के मुख्यमन्त्रियों की है। अहिन्दी भाषी प्रदेशों के मुख्यमन्त्रियों का तो कहना ही क्या।

सोचना पड़ता है कि कब और कैसे इस मानसिक दासता से मुक्ति पायेगा इस देश का मानव?

चेकोस्लोवाकिया : द्रौपदी चीर-हरण

लोकोक्ति है कि यदि द्रौपदी चीर-हरण न हुआ होता तो कदाचित् महाभारत का युद्ध नहीं होता और न ही समस्त मानव-समाज की सामूहिक हत्या होती। समाज में सुप्रतिष्ठित मानव समाज—भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य प्रभृति वृद्ध, विद्वान एवं वीर पुरुष—यदि उस समय दुःशासन के दुष्कृत्य की दुर्योधन के सम्मुख दीर्घ-स्वर से निन्दा करता तो निश्चित ही महाभारत का रूप कुछ और होता।

द्रौपदी चीर-हरण जैसी स्थिति ही आज चेकोस्लोवाकिया पर हो रही है। वारशा-सन्धिकर्ता देशों ने छः दिशाओं से अपनी सेनाओं को चेकोस्लोवाकिया में घुसाया यह कह कर कि चेकोस्लोवाकिया की जनता ने उनको पुकारा है, उनका जीवन खतरे में है, हम उनके आमन्त्रण पर उनके अस्तित्व की रक्षा के लिये गये हैं। किन्तु इस आक्रमण की पुष्टि करने वाला एक भी तो जयचन्द मीरजाफर सम्मुख नहीं आया। विपरीत इसके वहाँ उनका विरोध हुआ, किसी ने आगे बढ़कर उनका स्वागत नहीं किया। यह भारत का ही दुर्भाग्य है कि जयचन्द और मीरजाफरों की न तो कमी थी, न है और न रहेगी। किन्तु चेकोस्लोवाकिया की माताओं ने देशद्रोहियों को नहीं जन्मा है।

संसार के कुछ नगण्य राष्ट्रों अथवा देशों को छोड़कर सभी ने रूसी-राक्षस के इस कुकृत्य को जघन्य आक्रमण कह कर इसकी निन्दा की है। इतना ही नहीं, रूस के कठपुतली कम्युनिस्ट देशों ने भी इसकी निन्दा की है। सभी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों ने भी इसको जघन्य और निन्दनीय कहा है। युगोस्लाविया के मार्शल टीटो वे प्रथम राष्ट्रपति हैं, जिन्होंने इस आक्रमण की निन्दा करने में एक पल का भी विलम्ब नहीं किया।

संसार के मानचित्र को कलंकित करने वाला इतना बड़ा काण्ड हो जाय और एशिया का नेता कहलाने वाला भारत, प्रथम तो इस बारे में चुप रहे और यदि कुछ कहे भी तो उस स्वर में जो किसी को सुनाई न दे और उन शब्दों में, जिनका न कोई अर्थ हो और न महत्व।

हंगरी में हुए आसुरी आक्रमण के अवसर पर जो निन्दनीय भूमिका बाप ने निभाई थी, वही भूमिका आज इस अवसर पर बेटी निभा रही है। ऐसी स्थिति में देवी इन्दिरा के वक्तव्य को संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता तथा संसद सदस्य मधुलिमये यदि रूस तथा ब्रझनेव की दासी का वक्तव्य

कहते हैं तो सम्भवतया उचित ही कहते हैं।

भारतवासी इस विषय में मौन नहीं हैं। यदि सत्तारूढ़ कांग्रेसी इस सम्बन्ध में अपना पौरुष प्रकट करने में लज्जा अनुभव करते हैं तो जन समाज जागरुक है। वह मुक्त कण्ठ से इसकी निन्दा कर रहा है। विरोधी दलों के संसद सदस्य—सुर्खों को छोड़ कर—अपने विरोध का प्रचंड प्रदर्शन कर रहे हैं। कांग्रेसी सदस्या श्रीमती सुचेता कृपलानी ने इस विषय में पहल करने का प्रशंसनीय पग उठाया है। अशोक मेहता के समाजवादी मन ने जोर मारा और उन्होंने सरकार की नीति के विरोध में मन्त्री मण्डल से त्याग पत्र देने का साहसिक एवं प्रशंसनीय कार्य किया है।

अब तक स्थिति यह है कि चेकोस्लोवाकिया में असुरों ने अपना शासन स्थापित कर लिया है। कुछ चेकोस्लोवाक जन नेताओं का नजरबंद किया हुआ है, कुछ का अपहरण कर लिया गया है और यह बताया जा रहा है कि कुछ नेताओं की मास्को में रूसी-राक्षसों से वार्त्ता चल रही है।

सुरक्षा परिषद में प्रस्तुत प्रस्ताव को रूस ने अपने विशेषाधिकार से निष्फल कर दिया है। किन्तु उस प्रस्ताव के लिए हुए मतदान में भारत ने भाग न लेते हुए तटस्थता में पाकिस्तान और अल्जीरिया का साथ दिया है। भारत की देवी का कहना है कि प्रस्ताव में समाविष्ट "निन्दा" शब्द का समर्थन करने में उनको अपने रूसी सखाओं से भय लगता है।

ईश्वर भारत के इन तथाकथित नेताओं को सद्बुद्धि दे, अन्यथा इन मानवता के माथे के कलंकों से इस देश को मुक्ति दे।

ऐतिहासिक लाल-किले की प्राचीर से :

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी १५ अगस्त का दिन परम्परागत धूम-धाम से मनाया गया। ऐतिहासिक लालकिले की प्राचीर पर उसी प्रकार राष्ट्रीय पताका फहराई गई और प्रधानमंत्री द्वारा भूत-भविष्य का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया। पाकिस्तान से पुनः शान्ति का प्रस्ताव किया गया जिसका पाकिस्तानी लीडरों और समाचारपत्रों ने ऐसा उपहास किया कि यदि कोई समझदार प्रधानमंत्री होगा तो भविष्य में इस प्रकार की हास्यास्पद भूल पुनः नहीं करेगा। स्वाधीनता दिवस की पूर्व संध्या को राष्ट्रपति द्वारा प्रचारित भाषण और १५ अगस्त के प्रधानमंत्री के भाषण में कोई विशेष अन्तर नहीं था।

शेष पृष्ठ ४५ पर
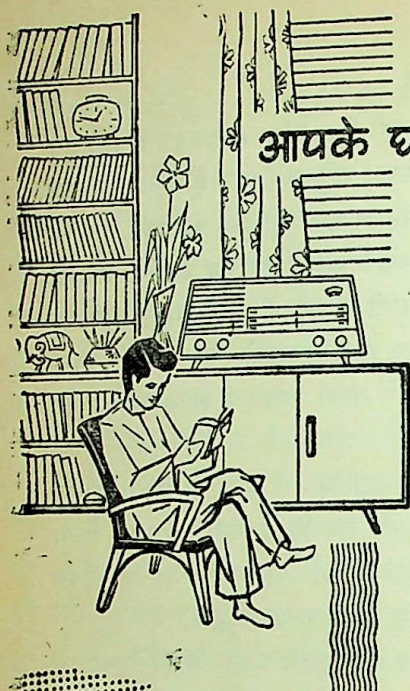
आपका पुस्तकालय और हमारा सहयोग

१. हमारी पुस्तकालय योजना के सदस्य बनिये। केवल दो रुपये मनी-आर्डर द्वारा भेजकर आप हमारे सदस्य बन सकते हैं।

२. हमारी नटराज पाकेट बुक्स में से (सूची कवर पृष्ठ ३ पर) आप अपनी पसन्द की १५ रुपये की चुनी हुई पुस्तकें मंगवाइये और हम केवल १३ रुपये में ये पुस्तकें आपको भेजेंगे। डाक व्यय लगभग दो रुपये हम देंगे। इसके साथ ही—

३. एक लोहे की तार का बना हुआ सुन्दर रैक जिसमें आप अपनी पुस्तकें लगा सकते हैं, बिना मूल्य हम अपनी ओर से आपको भेंट में देंगे।

४. प्रति दो मास बाद जब हमारी नयी पुस्तकें प्रकाशित होंगीं, हम आपको सूचना भेजेंगे। तथा आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें सात रुपये में आपको भेजी जायंगी। यदि नवीन प्रकाशनों में से कोई पुस्तक आप नहीं लेना चाहेंगे तो आप उसके स्थान पर कोई अन्य उसी मूल्य की पुस्तक मंगवा सकेंगे।

५. बीच की अवधि में कभी भी आप आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें केवल सात रुपये में मंगवा सकेंगे।

भारती साहित्य सदन,

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

पाकेट माला में श्री गुरुदत्त की रचनाएँ

अन्तिम यात्रा	१.००	नये विचार नई बातें	२.००
एक और अनेक	१.००	निष्णात	२.००
कामना	२.००	निर्मल	२.००
खेल और खिलौने	२.००	पाणिग्रहण	३.००
गुण्ठन	३.००	प्रेरणा	३.००
गृह संसद	२.००	बहती रेता	३.००
चंचरीक	१.००	बीती बात	१.००
छलना	२.००	भाग्य का सम्बल	२.००
जमाना बदल गया—१	२.००	मानव	३.००
,, ,, ,, —२	२.००	मायाजाल	३.००
,, ,, ,, —३	२.००	यह संसार	३.००
,, ,, ,, —४	२.००	यह सब झूठ है	२.००
,, ,, ,, —५	२.००	युद्ध और शान्ति—१	३.००
,, ,, ,, —६	२.००	,, ,, ,, —२	३.००
,, ,, ,, —७	२.००	लालसा	३.००
,, ,, ,, —८	३.००	लोक परलोक	२.००
,, ,, ,, —९	३.००	विडम्बना	३.००
जीवन ज्वार	३.००	विद्यादान	२.००
देश की हत्या	३.००	वीर पूजा	१.००
दो भद्र पुरुष	२.००	संस्खलन	२.००
द्रष्टा	२.००	सम्भवामि युगे युगे—१	२.००
धरती और धन	३.००	,, ,, —२	२.००
धर्म और समाजवाद	३.००	साहित्यकार	२.००
नयी दृष्टि	३.००		

भारती साहित्य सदन

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

कुछ विशेष प्रचारित साहित्य

भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ भाग—१	ले० श्री सावरकर		२.५०
भाग—२	,,		२.५०
१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर	,,		१८.००
हिन्दू पद पादशाही	,,		६.५०
हिन्दुत्व	,,		३.५०
मोपला (उपन्यास)	,,		४.००
गोमान्तक ,,	,,		४.००
मोपला-गोमान्तक संयुक्त पाकेट संस्करण (सम्पूर्ण)	,,		३.००
अमर सेनानी सावरकर : जीवन झांकी	ले० शिवकुमार गोयल		२.५०
भारत और संसार	श्री बलराज मधोक		५.००
भारत की सुरक्षा	,,		४.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	,,		६.००
अन्तिम यात्रा	श्री गुरुदत्त	सजिल्द	२.००
अन्तिम यात्रा	,,	पाकेट संस्करण	१.००
धर्म संस्कृति और राज्य	,,		८.००
धर्म तथा समाजवाद—	,,	सजिल्द संस्करण	६.००
धर्म तथा समाजवाद—	,,	पाकेट संस्करण	३.००
देश की हत्या (उपन्यास)	,,	सजिल्द	६.००
देश की हत्या	,,	पाकेट संस्करण	३.००
जमाना बदल गया	,,	सजिल्द ४ भाग	४०.००
जमाना बदल गया	,,	पाकेट ६ भाग	२०.००
मेरे अन्त समय का आश्रय : श्रीमद्भगवद्गीता	भाई परमानन्द		५.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ता कुमार	सजिल्द	३.००
धरती है बलिदान की	,,	पाकेट संस्करण	१.००
हिमालय पर लाल छाया	,,		१२.००
शक्तिपुत्र शिवाजी	श्री सीताराम गोयल		१.५०

भारती साहित्य सदन

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं राष्ट्र भारती प्रेस, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनॉट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

अक्टूबर १९६८ वर्ष ८—अंक १० रजि० क्र० ६६८९/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत संस्कृति परिषद् के प्रकाशन

१—धर्म संस्कृति और राज्य—ले० श्री गुरुदत्त

तीनों विषयों की व्याख्या, इनका परस्पर सम्बन्ध तथा आज के युग की समस्याओं से इनका समन्वय इस पुस्तक का विषय है। अत्यन्त ही सरल भाषा में युक्तियुक्त विवेचना इसकी विशेषता है।

मूल्य आठ रुपये

२—धर्म तथा समाजवाद—ले० श्री गुरुदत्त

समाजवाद की युक्तियुक्त विवेचना, तथा धर्म के साथ इसका 'सम्बन्ध' इस पुस्तक का विषय है। समाजवाद के विषय में बहुत-सी भ्रामक धारणाओं का स्पष्टीकरण इस पुस्तक में है। राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी तथा समाजवाद व धर्म में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए पठनीय ग्रन्थ।

मूल्य सजिल्द पुस्तकालय संस्करण ६ : रुपये
सम्पूर्ण पाकेट ,, ३ : रुपये

३—भारत—गांधी-नेहरू की साया में—ले० श्री गुरुदत्त

'जवाहरलाल नेहरू एक विवेचनात्मक वृत्त' का संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण। यह पुस्तक पिछले एक वर्ष से भारत भर में चर्चा का विषय रही है। नया संशोधित संस्करण नवम्बर १५ तक छप जायगा।

मूल्य सजिल्द पुस्तकालय संस्करण आठ रुपये
सम्पूर्ण पाकेट ,, तीन रुपये

४—श्रीमद्भगवद्गीता—एक अध्ययन—ले० श्री गुरुदत्त

अत्यन्त ही सरल बोधगम्य भाषा में यह अध्ययन एकदम अनुठी रचना है। गीता के विषयों का क्रमवार विस्तृत एवं युक्तियुक्त विश्लेषण।

मूल्य (कपड़े की जिल्द सहित) १५ रुपये

प्राप्ति स्थान

भारती साहित्य सदन

बिक्री विभाग

३०/९० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३·३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
पं० भगवद्दत्त
प्रा० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

देश में अव्यवस्था

देश में व्याप्त अव्यवस्था का कारण ढूँढने से पूर्व अव्यवस्था की कुछ मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख करना ठीक रहेगा। उनसे कारणों के समझने में सुविधा होगी।

देश के एक कोने से चलकर दूसरे कोने तक दृष्टिपात करें तो पता चलेगा कि किसी न किसी रूप में पूर्ण देश में अव्यवस्था विराजमान है।

कश्मीर से आरम्भ करते हैं। कश्मीर में कभी भी न्यायानुसार निर्वाचन नहीं हुए। वहाँ हिन्दुओं को वह दर्जा प्राप्त नहीं है, जो मुसलमानों को है। वहाँ बहुत बड़ी संख्या में ऐसे लोग रहते हैं जो कश्मीर को अलग करके पाकिस्तान से मिलाने का यत्न करते रहते हैं। इन लोगों के अपने कई रूप हैं—कश्मीर की भावी स्थिति के लिये मत-दान की माँग करने वाले, कश्मीर को स्वतंत्र रूप की माँग करने वाले, तथा स्वतन्त्र संवि-धान की माँग करने वाले, शेख अब्दुल्ला के संगी-साथी और मुसलमानों के लिये विशेष अधिकार माँगने वाले—ये सब अन-जाने में अथवा जान-बूझ कर कश्मीर को

भारत से पृथक् कर पाकिस्तान में ले जाना चाहते हैं।

कुछ मास हुए एक कश्मीरी लड़की के किसी मुसलमान अफसर द्वारा अपहरण किए जाने पर झगड़ा हुआ था। उसके विषय में न्यायिक जाँच नहीं हो सकी। हिन्दू विद्यार्थियों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध हैं और कश्मीर जाने वाले यात्रियों के लिये अनेक प्रकार के खर्च लगे हुए हैं, जिनसे कश्मीर एक पृथक् राज्य बना हुआ है।

कश्मीर से आगे लद्दाख है। लद्दाख की समस्या नेफ़ा और असम की समस्या से सम्बन्धित है। लद्दाख में सहस्रों मील का क्षेत्र चीन ने अपने अधिकार में कर लिया है और यही बात नेफ़ा क्षेत्र में है। चीन ने न केवल सहस्रों मील का क्षेत्र लद्दाख और नेफा में हड़प लिया है अपितु नए मान-चित्र बनाकर देश के एक बहुत बड़े भू-भाग को अपना घोषित कर रखा है। इन क्षेत्रों में और असम, बंगाल में भी वे लोग सक्रिय हैं, जो चीन सरकार का खुले आम समर्थन करते हैं अर्थात् चीन के भारत भूमि पर चीनी अधिकार को स्वीकार करते रहते हैं। केवल इतना ही नहीं, वरंच वे स्वय धींगा-मस्ती से राज्य प्रशासन अपने अधिकार में कर चीन के साथ भाईचारा बनाने का यत्न करने के लिए तैयार हैं।

बंगाल और असम की समस्या दोहरी है। एक तो यह कि यहाँ पर कुछ लोग हैं जो इन राज्यों में पाकिस्तान के साथ और चीन के साथ मित्रता का व्यवहार रखने के लिये भारत का विरोध करते रहते हैं। इन लोगों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। दूसरे, पाकिस्तान से मुसलमान आ-आकर इन दो राज्यों में घुस-पैठ कर रहे हैं। इस प्रकार पाकिस्तान के पक्ष के लोगों की संख्या में वृद्धि कर रहे हैं।

आसम और बर्मा के भीतर सीमा पर नागा भूमि और मीज़ो भूमि है। इन दोनों में विद्रोह फैला हुआ है और वहाँ पर्याप्त संख्या में ऐसे लोग हैं जो इन क्षेत्रों को भारत सरकार से पृथक् करना चाहते हैं। इन क्षेत्रों में ईसाई नागा और ईसाई मीज़ो भारी संख्या में हैं। वे उन विद्रोहियों की सहायता करते रहते हैं। वहाँ के विद्रोही विदेशी राज्यों की ईसाई जनता से अथवा ईसाई राज्यों से सहायता की आकाँक्षा करते हैं।

बिहार में राँची के आस-पास ईसाइयों की संख्या बढ़ रही है। वे लोग ईसाई होने के साथ ही साथ भारत के साथ सहानुभूति भी खो देते हैं। धीरे-धीरे वहाँ भी भारत से पृथक् ईसाई राज्य बनाने की आवाजें उठने लगी हैं। इंग्लैण्ड और अमेरिका के ईसाई और राजनीतिक मिशनरी आते जाते

रहते हैं और इन लोगों की देश के प्रति निष्ठा को विगलित करते रहते हैं।

मद्रास राज्य में रहने वालों ने पिछले चुनाव में उन लोगों को राज गद्दी पर बैठाया जो भारत से किसी प्रकार का सम्बन्ध न तो रखना चाहते हैं और न ही मानते हैं। इस राज्य में भाषा की समस्या इतनी उग्र है कि वहाँ के राज्याधिकारी साँस्कृतिक रूप में अपने को शीघ्र ही भारत से पृथक् कर लेंगे।

आन्ध्र राज्य में एक तो हैदराबाद है। इसमें अभी तक निज़ाम शाही के अवशेष विद्यमान ही नहीं, वरंच सक्रिय भी हैं। वे अपनी इस्लामी संस्कृति के चारों ओर राजनीति का तानाबाना बुनने का यत्न कर रहे हैं। आन्ध्र राज्य के एक भाग में कम्युनिस्ट अधिक सक्रिय हैं। इस क्षेत्र में ही तेलंगाना है, जहाँ कम्युनिस्ट एक बार पहले भी पृथक् राज्य स्थापित करने का प्रयास कर चुके हैं। जब भी वहाँ के कम्युनिस्टों पर भूत सवार हो जाता है, तभी वे वहाँ विनाश लीला रचा देते हैं।

इसके आगे केरल राज्य है। यहाँ पर कम्युनिस्टों तथा मुसलमानों का संयोग हो रहा है। काँग्रेस ने सन् १९५२ के निर्वाचनों में बहुमत प्राप्त किया तो ईसाइयों को प्रसन्न करने के लिए हिन्दुओं के मन्दिरों को गिराना, उनको आग लगाना आरम्भ कर दिया। ईसाइयों की सहायता से वे काँग्रेसी हिन्दुओं का विरोध करने लगे तो हिन्दुओं ने काँग्रेस का समर्थन छोड़ दिया। हिन्दू दो भागों में बंट गये। जो काँग्रेस के विरोधी हुए, वे या तो समाजवादी हो गये अथवा कम्युनिस्ट हो गये। कुछ हिन्दू लोग काँग्रेस में भी रहे। इस प्रकार वहाँ तीन विचार के लोग हैं, हिन्दू, ईसाई तथा मुसलमान। हिन्दू तीन भागों में बंटे हैं, काँग्रेस पक्ष में, समाजवादी पक्ष में, और कम्युनिस्ट पक्ष में। मुसलमान अपना पृथक् मत रखते हैं। इसी प्रकार ईसाइयों का अपना मत है।

परिणाम यह है कि हिन्दु बहुसंख्या में होते हुए भी बंट जाने के कारण, प्रभाव विहीन हो गये थे। अब वहाँ संयुक्त राज्य है। कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट और मुसलमानों के संयुक्त दल का। इसमें आर्थिक विषयों में सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट साथ साथ रहते हैं तथा अराष्ट्रीय आयोजनों में कम्युनिस्ट और मुसलमान दल इकट्ठे रहते हैं।

केरल के उपरान्त मैसूर और महाराष्ट्र राज्य हैं। दोनों राज्यों में तमिल भाषी लोगों ने गड़बड़ मचानी आरम्भ की तो वहाँ उनके विरोध में

शिव सेना बन गयी । तमिल वाले दक्षिण वालों को उत्तर भारत वालों से पृथक् मानते हैं और अपने को दक्षिण का नेता समझते हैं । मैसूर और महाराष्ट्र में इसका घोर विरोध हो रहा है । यही कारण है कि तमिल भाषी लोगों के विरुद्ध शिव सेना का प्रचार बढ़ रहा है ।

इसके उपरान्त गुजरात और राजस्थान हैं । इन राज्यों का केन्द्र से बहुत बड़ा समन्वय है । कदाचित् ये राज्य ही काँग्रेस के मुख्य स्तम्भ हैं ।

पंजाब और हरियाणा की राजनीतिक स्थिति डाँवाडोल है । पंजाब में सिक्ख अपने आपको हिन्दुओं से पृथक् मानते हैं । यह ठीक है कि बहुत से परिवारों में हिन्दू और सिक्ख साथ-साथ विद्यमान हैं, परन्तु ऐसे परिवार बहुत कम है तथा दिन प्रतिदिन और भी कम होते जा रहे हैं । हिन्दू सिक्खों में वैमनस्य बढ़ता जाता है । इस वैमनस्य के बढ़ने में केन्द्र का भी हाथ है । हरियाणा हिन्दू बहु-संख्यक प्रदेश है और यह सदा पूर्ण रूप से काँग्रेस के हाथ में रहा है । सन् १९६७ के निर्वाचनों में विरोधी दलों ने संयुक्त मोर्चा बनाया था, परन्तु सब ऐसे प्रदेशों की भाँति जहाँ-जहाँ काँग्रेस विरोधी दलों ने संयुक्त मोर्चे बनाये, उनमें नेता वे काँग्रेसी ही बने जो काँग्रेस में से ही बाहर आये थे । इनमें से अधिकाँश दिनानुदिन कार्य में मतभेद होने के कारण काँग्रेस से बाहर आये थे । किसी सैद्धान्तिक मतभेद के कारण काँग्रेस से बाहर नहीं हुए थे । अतः संयुक्त मोर्चे के नेता थर्ड रेट काँग्रेसी बने । उन्होंने संयुक्त मोर्चे बहुत ही बुरी भाँति चलाये और प्रायः सब के सब असफल हुए । हरियाणा में भी वे असफल हुए ।

बिहार और उत्तर प्रदेश में भी यही समस्या उत्पन्न हुई थी । काँग्रेस के पास निर्विवाद बहुमत नहीं आया था । अतः विरोधी पक्षों ने संयुक्त दल बना कर राज्य चलाने का प्रयास किया था, परन्तु सब में काँग्रेस से निकले हुए मुख्य मन्त्री बने और काम चल नहीं सका ।

यह तो स्थिति है राज्यों की । और देश में सुरक्षा की अवस्था यह है कि पाकिस्तान एक इस्लामी राज्य है और इस्लाम के मानने वाले पांच करोड़ से भी अधिक इस देश में बसे हुए हैं । भारत पाकिस्तान का विरोध एक इस्लामी राज्य के नाते कर नहीं सकता । इसके विपरीत पाकिस्तान एक इस्लामी राज्य होने के नाते भारत का विरोध करता रहता है । इस्लाम के नाम पर भारत के विरुद्ध जहाद करने का नारा लगाता हुआ पाकिस्तान दुनिया भर में दनदनाता घूमता है । इसका प्रभाव यह हुआ कि भारत के मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं का सन्देह बढ़ रहा है ।

भारत हिन्दू और मुसलमान में अंतर नहीं मानता, परन्तु पाकिस्तान मानता है और वह भारत के मुसलमानों से आशा करता है कि अवसर आने पर वे भारत में रहते हुए पाकिस्तान की सहायता करेंगे।

यह ठीक है कि भारत के मुसलमानों में बेचैनी है और वह बेचैनी है इस्लाम के खतरे के विषय में। उनका विचार है कि उनकी सभ्यता और संस्कृति भारत में सुरक्षित नहीं। वे समझते हैं कि उनका सबसे बड़ा सँरक्षक नेहरू परिवार है। पिछले २१ वर्ष से नेहरू परिवार का राज्य ही भारत में चला आ रहा है। परन्तु भविष्य में स्थिति निश्चित नहीं। यही कारण है कि भारत के मुसलमान आश्वस्त नहीं। इस असन्तोष को काँग्रेस ने मिटाने का बहुत यत्न किया है। धन से, पद से, मान प्रतिष्ठा से और कानून से इनकी रक्षा होती है। भारत में ऐसे लोग हैं जो यह अनुभव करते हैं कि मुसलमानों को विश्वास दिलाने के कार्य में कई बातों में हिन्दुओं के हितों का बलिदान कर उनकी सहायता की गई है। उनके ऐसा अनुभव करने में प्रबल कारण भी है।

समस्या यह है कि यदि भविष्य में कांग्रेस सरकार हट गई तो क्या मुसलमान वही कुछ पा सकेंगे, जो वे काँग्रेस के शासन में पाते रहे हैं? साधारण हिंदू अनुभव करता है कि मुसलमानों के साथ रियायत हो रही है। तो वह रियायत किसी भी दूसरे दल के सत्तारूढ़ होने में रह नहीं सकेगी। तब मुसलमान भारत के एक नागरिक से अधिक कुछ नहीं रह जायेंगे और इस कारण असन्तोष तथा अशान्ति बढ़ेगी। उस समय यदि पाकिस्तान ने कुछ वैसा किया, जैसा कि सन् १९६५ में किया था तो क्या होगा? क्या वे मुसलमान जो सन् १९६५ में मौन और शान्त रहे थे, तब भी मौन रह सकेंगे?

युद्ध समय में शत्रु देश के नागरिकों को प्राय: बन्दी बना कर रखा जाता है। पाकिस्तान एक इस्लामी देश है। तो क्या पाकिस्तान से युद्ध के समय इस्लाम के मानने वालों को बन्दी बनाना पड़ेगा? यह उचित और सम्भव भी होगा क्या?

कुछ ऐसी ही स्थिति चीन की है। चीन से हमारे राजनायिक सम्बन्ध नहीं हैं। वह एक बार भारत पर आक्रमण कर चुका है। उस समय चीन के समर्थक कम्युनिस्टों को बन्दी बना लिया गया था। सबको नहीं, कुछ बड़े-बड़े नेताओं को। तब से अब की स्थिति बदल चुकी है। चीन समर्थक कम्युनिस्टों की संख्या पहले से बढ़ गई है। नक्सलबाड़ी की घटना और

परीक्षण हो चुका है। रूसी पक्ष के कम्युनिस्ट भी डाँवाडोल हो उठे हैं। जिस आधार पर वे रूस और चीन में अंतर मानते थे, वह आधार विलीन हो रहा प्रतीत होता है। कम्युनिज्म में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और विचार स्वतन्त्रता के विषय में कुछ काल्पनिक और वास्तविक मत भेद चीन और रूस की नीतियों में दिखाई देता था, परन्तु चेकोस्लोवाकिया की घटना के अनन्तर वह अब केवल काल्पनिक ही दिखाई देने लगा है। अतः दोनों पक्ष के कम्युनिस्ट पुनः एक होते हुए प्रतीत होते हैं।

अतः चीन के राज्याधिकारियों ने कहीं हिन्दुस्तान से झगड़ा आरम्भ किया तो देश के कम्युनिस्ट निष्क्रिय पड़े रहेंगे क्या ? ऐसी सम्भावना प्रतीत नहीं होती।

सम्भव तो यह है कि नक्सलवाड़ी जैसी योजना कहीं सीमा पर आरम्भ हो गई तो चीन उनकी वैसे ही सहायता करेगा, जैसे वह उत्तरी वियतनाम वालों की कर रहा है।

देश में महंगाई दिन प्रतिदिन अधिक हो रही है और इस महंगाई का बहाना बना कर हड़तालें हो रही हैं। इन हड़तालों का परिणाम यह हो रहा कि देश में विद्रोहात्मक प्रवृत्ति के लोग संख्या में बढ़ रहे हैं।

देश की स्थिति का उक्त वर्णन अति संक्षिप्त है और कुछ ही मदों का उल्लेख किया गया है। इस पर भी इनमें से कोई एक भी कारण हो सकता है कि देश में विदेशियों और विधर्मियों का राज्य पुनः हो जाये।

विधर्मियों से हमारा अभिप्राय दूसरे मजहब वालों से नहीं है। विधर्मियों के राज्य का अभिप्राय है कि यहाँ प्रचलित कानून, प्रथा और परम्पराओं के विरुद्ध कानून, प्रथा और परम्पराओं वालों का राज्य।

यह स्थिति है।

अगले अक में हम इन विघटनात्मक परिस्थितियों के कारणों पर प्रकाश डालेंगे और तदनन्तर इनसे मुक्ति पाने के उपायों पर विचार व्यक्त करेंगे।

१९ सितम्बर की हड़ताल

जब हम सरकार की उन नीतियों की आलोचना करते हैं, जिनसे देश में महंगाई बढ़ रही है तो इससे यह अभिप्राय नहीं लिया जा सकता कि हम अन्य लोगों के कामों की प्रशंसा करेंगे, जो सरकार को विवश कर वैसे ही काम करवाना चाहते हैं, जिनसे महँगाई बढ़े। १९ सितम्बर की हड़ताल का यही उद्देश्य था।

देश में सब लोगों को यह समझ लेना चाहिये कि देश में महँगाई का सबसे प्रमुख कारण यह है कि यहाँ अनुत्पादक (unproductive) श्रमिकों की संख्या बहुत बढ़ गयी है। केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों में अधिक नहीं, तो तैंतीस प्रतिशत कर्मचारी बेकार के रखे हुए हैं। प्रथम तो यह कि जितना काम एक क्लर्क मज़दूर, मिस्त्री अथवा इंजीनियर किसी निजी कम्पनी, कारखाने अथवा दुकान पर करता है, उतना कोई भी सरकारी कर्मचारी नहीं करता। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विभाग में काम की अपेक्षा कर्मचारी अधिक हैं। ऐसी स्थिति कर्मचारियों से उत्पन्न की हुई न भी मानी जाये, तब भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों का वेतन राजकीय कर्मचारियों (State Servants) कारखानों और व्यवसायिक कर्मचारियों से अधिक होता है। देहातों में भी भूमि पर काम करने वाले कामों अथवा अन्य कार्यों में लगे हुए कर्मचारियों का वेतन केन्द्रीय कर्मचारियों के वेतन से निस्सन्देह कम होता है।

महंगाई तो सबके लिए समान रूप से है। राजधानी, छोटे-बड़े नगरों तथा देहातों में यदि अन्तर है तो वह मकानों के भाड़े में है अथवा यातायात के साधनों में है। मकानों के भाड़े के विषय में भी केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को उतनी शिकायत नहीं, जितनी कि किसी अन्य संस्थान के कर्मचारी को हो सकती है। यातायात के भाड़े की कठिनाई है, परन्तु उसमें भी यह बात विख्यात है कि बसों के ठीक रूप में न मिलने पर कार्यालय में देर से उपस्थित होने की ओर कोई ध्यान नहीं देता। शेष खाने-पीने की कठिनाई प्रायः सबके लिये एक समान और सब स्थानों पर है।

हमारा कहना यह है कि जो कठिनाई केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को है, वह अधिक नहीं तो ८० प्रतिशत जनता को भी है। एक विचारणीय बात और है कि सरकारी कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि, करों में वृद्धि के रूप में, जनता के सिर पर बोझा पड़ती है।

अतः देश में सबसे अधिक वेतन और अनेक प्रकार की सुविधाएँ पाने वाले लोग इतने अधीर हो जाएँ कि हड़ताल करने पर उतारू हो जाएँ और उन सेवाओं को ठप्प करने का आयोजन करें जिन पर पूर्ण देश का जीवन निर्भर करता हो, मज़ाक की बात नहीं है। हड़ताल करने से देश का कल्याण नहीं, वरं अकल्याण ही हुआ है। यह बात अँधों को भी दिखाई देती है कि केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल से गृह-मन्त्री अथवा किसी भी अन्य मन्त्री अथवा संसद सदस्य को हानि नहीं पहुँचती। हानि तो उनको पहुँचती है, जिनका

नित्य की कमाई पर निर्वाह होता है ।

यह हड़ताल अनावश्यक थी । यह उस प्रयोजन को सिद्ध नहीं कर सकती थी, जिसके लिये की गयी थी । इससे देश के काम-काज में बाधा पड़ सकती थी और जितनी सीमा तक हड़ताल सफल हुई है, उतनी बाधा पड़ी है ।

इस पूर्ण समस्या पर विचार करें तो प्रश्न उठता है कि हड़ताल किसलिए की गयी थी ? इस कारण कि वस्तुओं के दाम बढ़ गये हैं । क्या हड़ताल करने से दाम कम होंगे ? कदापि नहीं । क्या वेतन बढ़ने से दामों में कमी होगी ? कभी नहीं । क्या हड़ताल करने से सरकार भंग हो सकती है ? निस्सन्देह । परन्तु तब कौन सरकार बनायेगा ? प्रजा सोशलिस्ट दल, संसोपा अथवा जनसंघ ? सम्भावना प्रतीत नहीं होती । इनके सरकार बनाने की सम्भावना मान भी ली जाये तब भी वे महँगाई में कमी तब तक नहीं कर सकेंगे जब तक वेकार कर्मचारियों की छटनी नहीं करेंगे और वेतन में कमी नहीं करेंगे ।

यदि सरकार भंग हुई और कोई दल शक्तिशाली बना तो सम्भवतया वह कन्युनिस्ट दल होगा । यह इसलिये कि दुनियां में सबसे अधिक संगठित दल वही है । इस दल की पीठ पर दो गुण्डे राज्य हैं और वे दोनों अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं । सबसे बड़ी बात यह है कि वर्तमान सत्ताधारी दल में चालीस प्रतिशत कम्युनिस्ट सम्मलित हैं । शेष साठ प्रतिशत में से अधिकांश भ्रान्त मन, अनिश्चित बुद्धि और विकृत व्यवहार रखते हैं । कम्युनिस्टों के शक्तिशाली होने से सुख और शान्ति नहीं हो सकती ।

इतना जन-संघ को भी समझ लेना चाहिये कि उनमें भी ४० प्रतिशत नहीं, तो दस प्रतिशत अभी भी साम्यवादी मनावृत्ति रखने वाले घुसे हुए हैं और वे जन-संघ को समाज-कल्याण के नाम से कम्युनिस्टों का साथी बनाने में यत्नशील हैं ।

यह हड़ताल भूल थी । इसके परिणाम इस समय तक भयंकर हुए हैं तथा और भी अधिक भयंकर हो सकते हैं ।

सरकार की ओर से जो अनियमित उत्पीड़न हुआ है, उसके पक्ष में हम नहीं । परन्तु क्या हड़ताल स्वयमेव एक उत्पीड़न नहीं ? हमारा, बुद्धिशील तथा निस्वार्थ भाव से सेवा करने वाले लोगों से यही निवेदन है कि वे विचार करें और समझें ।

इतिहास में भारतीय परम्परायें

○

श्री गुरुदत्त

सृष्टि आरम्भ :

जगत् बना। उसमें पृथिवी (ठोस ग्रह), अन्तरिक्ष में उपस्थित देवता (इन्द्र, वरुण, मरुत, सरस्वत्यादि) बने और द्यू-लोक बना।

ग्रहों में पृथिवी बनी और उसकी अवस्था जब प्राणी (मनुष्य, पशु-पक्षी इत्यादि) के पालन के योग्य हुई, तब इस पर सृष्टि हुई। इस सृष्टि होने में पहले वनस्पतियाँ हुईं।

बिना बीज के पेड़ नहीं हो सकता। इस कारण यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वनस्पतियों का और इसी प्रकार प्राणियों का बीज कहाँ से आया ?

यह हम पीछे लिख आये हैं कि सोम से पृथिवी पर औषधियाँ आयीं। हमने जैमिनीय ब्राह्मण का प्रमाण दिया है। सोम द्यु-लोक में स्थित एक देवता (दिव्य गुण सम्पन्न शक्ति) है। वहाँ औषधियों के बीज बने और जब पृथिवी पर भूमि उनके लिये तैयार हुई तो सुपर्णा (परमात्मा) के प्रताप से सोम के छींटे पृथिवी पर पड़े और वनस्पतियाँ उत्पन्न होने लगीं।

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि ऐसी कोई बात नहीं कि एक प्रकार के बीज आये और फिर उनसे, विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार, भिन्न-भिन्न प्रकार के पेड़-पौधे बने। सोम का आहरण (भेदन) किया तो उसके छींटे उड़कर पृथिवी पर गिरे और उनसे औषधियाँ हुईं।

पृथिवी औषधियों के उत्पन्न होने से पहले गँजी थी।

ऋक्षा ह वा इयमग्र आसीत्। तस्यां देवा रोहिण्यां वीरुधोऽरोहयन्। (मैत्रेय संहिता—१।६।६।२।।)

वह पृथिवी पहले गँजी (लोम रहित) थी। उसमें रोहिणी ने लतायें लगायीं।

सोम से रोहिणी और रोहिणी से पृथिवी में, वनस्पतियाँ आयीं। अर्थात् इनका बीज पहले था। वह यहाँ पर आकर पड़ा और उससे यहाँ औषधियाँ बनीं।

औषधियों के उत्पन्न हो जाने पर यहाँ ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा परमात्मा की रचनात्मक शक्ति का प्रतीक है। इसके विषय में मनु ने इस प्रकार लिखा है—

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षड् ।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्ति मनीषिणः ।।

(मनु०—१।१७)

संसार जिन सूक्ष्म अवयवों से बना है, वह ही उस (ब्रह्मा) का शरीर है। उसी शरीर में बैठकर वह सृष्टि करता है।

इस ब्रह्मा के विषय में, जिसने प्राणी सृष्टि का सृजन किया, महाभारत में इस प्रकार लिखा है—

ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयम्भुवा ।
तस्मात् पद्मात् समभवद् ब्रह्मा वेदमयो निधिः ।।१५।।

(महा भा०-शा०—१८१।१५)

अर्थात्—इसके उपरान्त उस तेज से युक्त अद्वितीय शक्ति वाले पद्म पर स्वयं उत्पन्न हुए ब्रह्मा (मानस देव) ने जो ज्ञानमय था, सृष्टि की।

यह ब्रह्मा परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं । ऐसा ही महाभारत का आशय है। महाभारत इसी प्रसंग में कहता है—

स एष भगवान् विष्णुरनन्त इति विश्रुतः ।
सर्वभूतात्मभूतस्थो दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः ।।२०।।

(महा भा०-शा०—१८२।२०)

वह ही भगवान् विष्णु है जो अनन्त है, ऐसा प्रसिद्ध है। वह सर्व भूतों के अन्तःकरण में अन्तर्यामी के रूप में विद्यमान है।

भारतीय परम्परा के अनुसार जहाँ जगत् रचना में कारण परमात्मा है, वहाँ प्राणी की सृष्टि करने में भी वही कारण है।

ब्रह्मा (परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति का प्राणी) सृष्टि के लिये प्रादुर्भाव कहाँ हुआ और कैसे हुआ ? इस विषय में बाल्मीकि रामायण में इस प्रकार वर्णन है—

ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह ।।
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुंधराम ।
असृजच्च जगत् सर्वं सह पुत्रैः कृतात्माभिः ।

(बा० रा०-अयोध्या०—११०।३-४)

पहले (प्राणी सृष्टि से पहले) सब कुछ जलमग्न था। उस जल में

पृथिवी का निर्माण हुआ। तब देवताओं के साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुए। तदनन्तर वराह ने पृथिवी को जल से निकाला। तब उसने अपने कृतात्मा पुत्रों के साथ जगत् और सृष्टि की उत्पत्ति की।

बाल्मीकि रामायण में इन दो श्लोकों में उस पूर्ण प्रक्रिया को, जो जगत् रचना के आरम्भ से मानव सृष्टि होने तक हुई, संक्षेप में लिख दिया गया है।

यहाँ इतना और समझ लेना चाहिये कि वराह के अर्थ सूअर नहीं। निरुक्त में लिखा है—

वराहो मेघो भवति। वराहारः।
वरमाहारमाहार्षिरिति च ब्राह्मणम्।
(नि०—५।४)

बादलों को वराह कहने का कारण यह है कि जल उसका आहार है।

अतएव रामायण के उक्त पाठ का यह अर्थ बनता है कि पृथिवी जल-मग्न थी और उस वराह (पानी पीने वाले बादलों ने) भूमि को जल से निकाला। उस पृथिवी पर ब्रह्मा ने अपने कृतात्मा पुत्रों से सृष्टि की रचना की।

इसी विषय में महाभारत का प्रमाण हम ऊपर दे चुके हैं। वहाँ यह बताया है कि मेरु पर्वत का शिखर ही वह स्थान है, जिसे कमल कहते हैं और जहाँ प्राणी की रचना हुई।

हमारा मत इसमें यह है। जल सूखने पर पृथिवी का वह भाग सबसे पहले जल से निकला, जो सबसे ऊँचा था। उस भाग को मेरु के नाम से स्मरण किया गया है। सम्भवतः यह तिब्बत का कोई उच्च पठार था। यहाँ पर परमात्मा की शक्ति से बृहदाकार अथवा अनेक आकार विस्तार के अण्डे के समान पंचभौतिक पिण्ड बने। इन पिण्डों को विराट् पुरुष कहते हैं। यह सब हम भागवत पुराण के उद्धरण से वर्णन कर चुके हैं।

इन पिण्डों में से सब प्रकार के युवा प्राणी स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए और वे प्राणी पूर्व कल्प के अपने-अपने कर्म-फल को लेकर आये।

आत्मा के विषय में दो मत हैं। एक मत यह मानता है कि परमात्मा स्वयं ही आत्मा का रूप धारण कर उक्त चेतनावस्था युक्त पंच-भौतिक शरीर में आ उपस्थित होता है। तथा दूसरा मत यह है कि पूर्व कल्प की वे आत्मायें जो ब्रह्म रात्रि के समय सुषुप्ति अवस्था में थीं, इन निर्माणाधीन चेतना-युक्त शरीरों में अपने-अपने कर्म-फल से आ गयीं।

आत्मा तथा ब्रह्म एक नहीं । इस विषय में सुश्रुताचार्य अपने सुश्रुत ग्रन्थ में इस प्रकार लिखते हैं—

तत्र सर्व एवाचेतन एष वर्ग: पुरुष: पंचविंशतितम: स च कार्य्यकारण-संयुक्तश्चेतयिता भवति सत्यप्यचैतन्ये प्रधानस्य पुरुषकैवल्यार्थ प्रवृत्तिमुपदिशंति क्षीरादींश्च हेतनुदाहरन्ति ॥

समस्त वर्ग (व्यक्तादि २४ तत्त्व) चेतना से रहित हैं । चेतना वाला पच्चीसवाँ पुरुष है (यहाँ पुरुष का अर्थ जीवात्मा है) । वह पुरुष, कार्य (पंच महाभूत) और कारण (अव्यक्तादि अष्टधा) प्रकृति से संयुक्त होकर ही चेतना करने वाला है । प्रकृति तो अचेतन है । पुरुष (जीवात्मा) की, कैवल्यार्थ (मोक्ष) की प्रवृत्ति होती है ।

इसी भाव को एक अन्य आयुर्वेद पंडित भावमिश्र वर्णन करते हैं—

एवं चतुर्विंशतिस्भितत्त्वे सिद्धे वपुर्गृहे ।
जीवात्मा नियतेर्निघ्नो वसति: स्वांतदूतवान् ॥

इस प्रकार चौबीस तत्त्वों से सिद्ध किये (रचे हुए) शरीर रूपी घर में नियति (कर्मों) के अधीन अपने दूत (मन) के साथ जीवात्मा रहता है। आगे चलकर सुश्रुताचार्य लिखते हैं :

न चायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्ते सर्वगत: क्षेत्रज्ञा नित्याश्च असर्वगतेषु च क्षेत्रज्ञेषु नित्येषु पुरुषख्यापकान्हेतूनुदाहरंति ॥१७॥

आयुर्वेदशास्त्रेष्वसवर्गता: क्षेत्रज्ञा नित्याश्च तिर्यग्योनिमानुषदेवेषु संचरंति धर्माधर्मनिमित्तम् ॥१८॥

आयुर्वेद शास्त्र में क्षेत्रज्ञों (जीव) को सर्वगत (सर्वव्यापक) नहीं मानते । (यदि जीव सर्व-व्यापक होता तो एक ही समान सुख-दुःख सबको होता । ऐसा नहीं होने से जीव सर्व-व्यापक नहीं ।) परन्तु नित्य है । असर्वगत (एक शरीर व्यापी) जीवों में नित्य पुरुष व्यापक हेतुओं को देखते हैं ।

असर्वगत जीव नित्य हैं। वे धर्म और अधर्म का निमित्त पाकर तिर्यग्योनि (पशु कीटादि) तथा मनुष्य देह अथवा देव देह में विचरते हैं।

इससे ब्रह्मा शरीरधारी आदि-पुरुष भी माना जा सकता है। यह भी सम्भव है कि ब्रह्मा तो रचनात्मक शक्ति ही हो और फिर ब्रह्मा से उत्पन्न किये जाने वाले सदेह प्राणी बने हों। अधिक सम्भव यही है कि ब्रह्मा एक सशरीर व्यक्ति था और उसने आगे सृष्टि चलायी। ब्रह्मा के शरीर में किसी पूर्व कल्प की अति श्रेष्ठ आत्मा को स्थान मिला।

अक्टूबर १९६२ के चीनी आक्रमण के सन्दर्भ में :

साम्राज्यलिप्सु चीन और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी

○

स्वर्गीय सरदार पटेल

(शाश्वतवाणी के विगत मास के सम्पादकीय में हमने श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की पुस्तक "पिलिग्रमेज टु फ्रीडम" में सरदार पटेल द्वारा नेहरू को चीन के सम्भावित आक्रमण के सम्बन्ध में लिखे गये पत्र का उल्लेख किया था। सन् १९६२ के चीनी हमले के बाद से ही देश की जनता नेफा पराभव के मूलभूत और तात्कालिक कारणों को लेकर समय-समय पर परेशान होती रही है। और हाल में प्रकाशित कतिपय पुस्तकों ने एक बार फिर लोगों का ध्यान छः वर्ष पूर्व हुई घटनाओं और उनके कारणों पर केन्द्रित कर दिया है। साथ ही उन घटनाओं की पुनरावृत्ति का भय भी अभी तक बराबर बना ही हुआ है।

अगर नेहरू की चलती तो आज भी हैदराबाद भारत में विलीन न हुआ होता। और ऐन भारत के पेट में दूसरा पाकिस्तान बन कर घोर शत्रु के रूप में उत्तर-भारत व दक्षिण-भारत के बीच वह कील की तरह ठुका रहता। यह बात दूसरी है कि पुलिस कार्रवाई के सफल होने के बाद सबसे पहले हैदराबाद जाकर "हैदराबाद के मुक्तिदाता" के रूप में जयजयकार नेहरू ने ही प्राप्त किया।

यदि नेहरू देशद्रोही शेख अब्दुल्ला के प्रभाव में आकर कश्मीर विभाग को सरदार पटेल के स्वराष्ट्र मन्त्रालय से हटा न लेता तो, कश्मीर रूपी कैन्सर जो आज भारत के हृदय में रिस रहा है वह न होता।

यदि नेहरू तिब्बत के सम्बन्ध में सरदार पटेल के सुझाव को न ठुकराता तो आज चीन और भारत के बीच तिब्बत एक 'बफर' राज्य के रूप में विद्यमान होता।

अपनी विलक्षण बुद्धि से सरदार पटेल ने १९५० में ही हमारी उत्तर-पूर्वी सीमा पर सिर उठाते हुए अपशकुनों और उस स्थिति में हमारी विदेश-नीति के सम्भावित भयंकर दुष्परिणामों को भाँप लिया था। तिब्बत के प्रश्न

पर विचार करने के लिए हुई मंत्रि-मण्डल की बैठक में सबने नेहरू के तब तक के कृत्यों पर अपनी मूक सहमति व्यक्त कर दी थी। केवल दो मन्त्रियों ने क्षीण-सी आलोचना करने का साहस किया था। उनमें से एक थे काका गाडगिल। कहा जाता है कि उनको यह झाड़ सुनने को मिली थी—"क्या आप नहीं देखते कि हिमालय भी मौजूद है?" तभी डरते-डरते मुंशी महोदय ने, जो उन दिनों मन्त्रि मण्डल के सदस्य थे, कहा कि "सातवीं सदी में तिब्बतियों ने हिमालय लाँघ कर कन्नौज पर चढ़ाई की थी।"

मन्त्रि-मण्डल की उस बैठक के कुछ दिन बाद ही सरदार पटेल ने नेहरू को एक महत्वपूर्ण पत्र लिखा। पाठकों की जानकारी एवं इतिहास की दृष्टि से उसका अविकल हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। केवल कोष्टक के वाक्य एवं रेखांकन हमारी ओर से जोड़े गए हैं—सम्पादक)

डी० ओ० नं० ८२१-डी० पी० एम०। ५०
नयी दिल्ली, ७-११-१९५०

प्रिय जवाहर लाल जी,

अहमदाबाद से लौटने और उसी दिन हुई मन्त्रि-मण्डल की बैठक में भाग लेने के बाद से इस बैठक में मुझे केवल पन्द्रह मिनट की सूचना पर शामिल होना पड़ा था और मुझे खेद है कि इस कारण मैं सारे कागजातों का अध्ययन नहीं कर पाया था। मैं तिब्बत के प्रश्न पर चिन्तित होकर विचार कर रहा हूँ। और मुझे लगा कि जो बातें मेरे मन में उठ रही हैं, उनमें आप को भी मुझे साझीदार बनाना चाहिए।

मैं उस पत्र-व्यवहार को पढ़ गया हूँ, जो हमारे विदेश मंत्रालय व पीकिंग स्थित राजदूत के बीच तथा उनकी मार्फत चीन सरकार से हुआ है। मैंने भरसक प्रयत्न किया है कि हमारे राजदूत और चीन सरकार के अधिक-से-अधिक अनुकूल होकर इस पत्र-व्यवहार को पढ़ूं। किन्तु यह कहते मुझे दुःख होता है कि इन अध्ययन से इस दोनों में से कोई मेरे सामने अच्छे रूप में नहीं आया।

चीन सरकार ने शान्तिपूर्ण इरादों की बातें करके हमें बहकाने की कोशिश की है। मैं तो ऐसा अनुभव करता हूँ कि ऐसी महत्वपूर्ण घड़ी में चीन तिब्बत की समस्या को शान्तिपूर्ण रीति से सुलझाने की अपनी तथाकथित इच्छा के प्रति हमारे राजदूत के मन में विश्वास बैठाने में सफल हो गया है। यह असन्दिग्ध है कि जिस अवधि में यह पत्र-व्यवहार हो रहा था, उस अवधि में तिब्बत पर चढ़ाई करने के लिए चीनी अपनी सेनाओं का जमाव करते रहे

होंगे। मेरी राय में चीनियों की अन्तिम कार्रवाई विश्वासघात से कुछ ही घटकर है।

दुर्भाग्य की बात तो यह है कि तिब्बतियों ने हम पर भरोसा रखा, उन्होंने हमारी राय पर चलना पसन्द किया, और हम उन्हें चीन की कूटनीति और दौर्मनस्य के चंगुल से बचाने में असफल रहे। सद्य: सम्भूत घटनाओं से ऐसा लगता है कि हम दलाईलामा को बचा नहीं पायेंगे। चीनियों के रवैये और कार्रवाइयों के लिए औचित्य और कारण जुटाने के लिए हमारे राजदूत महोदय ने बड़ा-बड़ा परिश्रम किया है। जैसा कि विदेश मन्त्रालय ने एक तार में कहा है, उन्होंने हमारी ओर से चीन को जो निवेदन दिये हैं, उनमें से एक-दो में दृढ़ता का अभाव है और अनावश्यक क्षमा-याचना भी है।

अमरीका और ब्रिटेन की चालबाजियों के कारण चीन के लिए तिब्बत में खतरे पैदा हो गये हैं, इस पर कोई सयाना आदमी विश्वास करेगा, यह कल्पना करना भी कठिन है। अत: यदि चीनी उन पर विश्वास करते हैं तो इसका अर्थ है कि उन्हें हम पर इतना अधिक विश्वास है कि वे हमें आंग्ल-अमरीकी कूटनीति का मोहरा या गुर्गा मानते हैं। आपके सीधे उनसे ही बात करने के बावजूद भी यदि वे ऐसा अनुभव करते हैं तो यह इस बात का संकेत है कि यद्यपि हम अपने-आपको चीन का मित्र मानते हैं, चीनी हमें अपना मित्र नहीं मानते। "जो हमारे साथ नहीं वह हमारे विरुद्ध है" यह जो कम्युनिस्टों की मनोवृत्ति है, उसे ध्यान में रखें तो यह बड़ा महत्वपूर्ण संकेत है, जिस पर हमें समुचित ध्यान देना होगा।

पिछले कुछ मासों में रूसी गुट के बाहर अकेले हम ही राष्ट्र-संघ में चीन के प्रवेश की वकालत और फारमोसा के विषय में अमरीका से आश्वासन दिलाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। चीनियों को आश्वस्त करने, उनकी आशंकाओं का निवारण एवं उनके उचित दावों का समर्थन करने में हमने ब्रिटेन और अमरीका के साथ अपने पत्र-व्यवहार में भी और राष्ट्रसंघ में भी कोई कसर नहीं रखी। यदि इसके बावजूद चीन को हमारी निस्स्वार्थता पर भरोसा नहीं है तो कम-से-कम बाहरी रूप में तो यह सारी मनोवृत्ति सन्देह और अविश्वास की है, जिसमें शायद विरोध भाव का भी पुट मिला हुआ है।

अपनी नेकनीयती, मित्रता और सद्भावना का विश्वास चीन को कराने के लिए हम अब तक जो कुछ कर सकेंगे, इसमें मुझे सन्देह है। पीकिंग स्थित हमारे राजदूत हमारे मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने के लिए नितान्त योग्य व्यक्ति हैं। पर ऐसा लगता है कि वे भी चीनियों का मन बदलने में

असफल रहे हैं।

चीनियों ने हमारे नाम अपने आखिरी तार में तिब्बत में चीनी सेनाओं के प्रवेश के प्रति हमारे विरोध को जिस प्रकार दो शब्दों में निपटा दिया है और परोक्ष रूप में हम पर यह जो निराधार आक्षेप किया है कि हमने अपना रुख विदेशी प्रभाव में आकर अपनाया है, उसे देखते हुए वह तार नितान्त असौजन्यपूर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मित्र की भाषा नहीं, भावी शत्रु की भाषा है।

हम तिब्बत को जिस रूप में जानते थे, उस रूप में उसका तिरोभाव हो जाने और चीन के लगभग हमारे द्वार तक आ पहुँचने से उत्पन्न नयी स्थिति पर हमें इस पृष्ठभूमि पर विचार करना होगा। अपने सम्पूर्ण इतिहास में हमने अपनी उत्तर-पूर्वी सीमा की चिन्ता बहुत कम की है। तिब्बत का हमारे साथ मैत्रीभाव था और उसने कभी सीमा की बात पर हमें कष्ट नहीं दिया। चीन विभक्त था। चीनी अपने ही प्रश्नों से जूझ रहे थे और सीमा को लेकर उन्होंने कभी हमें परेशान नहीं किया।

सन् १९१४ में हमने तिब्बत के साथ एक समझौता किया, जिसकी चीनियों ने पुष्टि नहीं की। ऐसा लगता है, हम यह मानते थे कि तिब्बतियों के स्वशासनाधिकार के अन्तर्गत विदेशों से स्वतन्त्र सन्धि-सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार भी आ जाता है। और शायद हम इतना ही चाहते थे कि चीनी उस सन्धिपत्र पर प्रतिहस्ताक्षर भर कर दें। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि आधिपत्य (सुज़ैरिनिटी) की चीनियों की व्याख्या कुछ और ही है। इसलिए हम निस्संकोच मान सकते हैं कि तिब्बत ने हमारे साथ अब तक जो-जो समझौते किये हैं, चीनी बहुत शीघ्र ही उन सबसे विमुख हो जावेंगे, इससे हमारी समूची सीमा और वे सब व्यापारिक समझौते, जिनके आधार पर हम पिछली आधी शताब्दी से व्यवहार करते आये हैं, खटाई में पड़ जावेंगे।

चीन अब विभक्त नहीं रह गया है। अब वह एक है और शक्तिशाली है। समूचे उत्तर-पूर्व में हिमालय के साथ-साथ सीमा के इस पार ऐसे लोग बसते हैं, जो नसल और संस्कृति की दृष्टि से तिब्बतियों या मंगोलों से भिन्न नहीं हैं। सीमा की अनिर्धारितता और सीमा के इस ओर तिब्बतियों या चीनियों से सम्बन्ध रखने वाली आबादी का अस्तित्व, यह ऐसी सामग्री है जो चीन और भारत के बीच विवाद का कारण बन सकती है।

हाल का अप्रिय इतिहास बताता है कि कम्युनिस्ट होने मात्र से ही कोई साम्राज्यवाद से मुक्त नहीं हो जाता और कम्युनिस्ट भी उतने ही भले

या बुरे साम्राज्यवादी हो सकते हैं जितने कि और लोग। हिमालय के हमारी ओर के ढाल पर ही नहीं, असम के महत्वपूर्ण हिस्सों पर भी चीन की कुदृष्टि है। बर्मा में भी उसकी महत्वकांक्षाएँ हैं। बर्मा की यह भी कठिनाई है कि उसके पास कोई मैकमोहन रेखा नहीं है, जिसके आधार पर वह समझौते का आभास ही पैदा कर सके। जो हिस्सा कभी चीन के हाथ में था, वह चीन को वापस मिलना चाहिए, यह चीनी दुराग्रह और कम्युनिस्टिक साम्राज्यवाद, पश्चिमी राष्ट्रों के विस्तारवाद या साम्राज्यवाद से भिन्न है। उसने सिद्धान्त-वाद का मुखौटा पहन रखा है, जिस कारण वह दसगुणा अधिक भयावह है। सिद्धान्त-प्रसार के वेश में चीनियों के जातीय, राष्ट्रीय और ऐतिहासिक दावे छिपे हुए हैं। इस तरह उत्तर और उत्तर पूर्व से उपस्थित खतरा कम्युनिस्ट-वादी और साम्राज्यवादी दोनों हैं।

पश्चिम और उत्तर-पश्चिम से हमारी सुरक्षा को जो खतरे थे, वे आज भी उतने ही गम्भीर हैं, जबकि अब उत्तर और उत्तर-पूर्व से नया खतरा पैदा हो गया है। इस प्रकार सदियों बाद भारत को एक साथ दो मोर्चों पर अपनी सुरक्षा-व्यवस्था केन्द्रित करनी पड़ेगी। अब तक हमारे सुरक्षा प्रबन्ध में पाकिस्तान से एक हाथ भारी रहने का ही विचार था। अब हमें अपने हिसाब-किताब में इसका भी लेखा रखना होगा कि हमारे उत्तर व उत्तर-पूर्व में चीन मौजूद है, वह कम्युनिस्ट चीन जो सुनिश्चित महत्त्वाकाँक्षाओं और ध्येयों वाला है और जिसका रुख हमारे प्रति मैत्रीपूर्ण नहीं दीख रहा है।

आगे चलकर कष्ट का कारण बन जाने वाली इस सीमा के राज-नीतिक पहलू पर भी विचार करलें। हमारे उत्तरी व उत्तर पूर्वी प्रदेश-मार्ग हैं—नेपाल, भूटान, सिक्किम दार्जिलिंग और असम के कबाइली क्षेत्र। संचार व्यवस्था की दृष्टि से ये सब स्थान कच्चे हैं। यहाँ पर अविच्छिन्न सुरक्षा पंक्तियाँ मौजूद नहीं हैं। घुसपैठ के लिए यहाँ लगभग अवसर है। पुलिस व्यवस्था केवल थोड़े से दर्रों में है, और उनमें भी चौकियों में पूरी गारद है, ऐसा नहीं लगता।

हमारे साथ इन क्षेत्रों का सम्पर्क निकट का और घनिष्ट नहीं है। इन अंचलों के निवासियों की भारत के प्रति कोई बद्धमूल वफादारी और भक्ति नहीं है। दार्जिलिंग और कालिंपौंग प्रदेश भी मंगोल-पक्ष-पाती पूर्वाग्रहोंसे मुक्त नहीं हैं। पिछले तीन वर्षों में नागाओं और असम के अन्य पहाड़ी कबीलों तक हमारी कोई उल्लेखनीय पहुँच नहीं हो पाई है। युरोपीय भिशनरियों और अन्य यात्रियों का उनके साथ सम्पर्क था, पर उनका प्रभाव भारत व भार-

तीयों के पक्ष में मैत्री पूर्ण तो किसी प्रकार नहीं था । कुछ समय पहले सिक्किम में राजनीतिक हलचल थी । बहुत सम्भव है असन्तोष की आग वहां छिपे-छिपे सुलग रही हो । भूटान अपेक्षाकृत शान्त है । किन्तु तिब्बतियों के साथ उसका सम्बन्ध एक अड़चन सिद्ध होगा । नेपाल में कुलीन-तन्त्रीय निर्बल शासन है, जो लगभग पूरी तरह बल प्रयोग पर आश्रित है । प्रजा के एक विक्षुब्ध अंग और आधुनिक विचारों से उसका संघर्ष चल रहा है ।

इन परिस्थितियों में जनता को इस नये खतरे के प्रति सजग करना और सुरक्षा की दृष्टि से सुदृढ़ करना सचमुच कठिन काम है और हम विवेक-पूर्ण दृढ़ता, शक्ति और सुनिश्चित नीति के बल पर ही इस कठिनाई से पार पा सकते हैं । मुझे विश्वास है कि चीनी और उनका प्रेरणा स्रोत रूस इन कमज़ोरियों का लाभ उठाने का कोई मौका नहीं चूकेंगे, कुछ तो अपने सिद्धान्तवाद की पुष्टि के लिए और कुछ अपनी महत्त्वाकाँक्षाओं की पूर्ति के लिए ।

इसलिए मेरे मत में इस स्थिति में न तो हम आत्मतुष्ट होकर बैठ सकते हैं और न ढुलमुल रह सकते हैं । हमें यह स्पष्ट मालूम होना चाहिए कि हम क्या करना चाहते हैं और किस रीति से उसे करेंगे । अपना ध्येय निश्चित करने में तथा उसकी पूर्ति के लिए अपनी नीति के कार्यान्वयन में तनिक भी लड़खड़ाना या अनिश्चय का भाव हमें दुर्बल बना देंगे और उन खतरों को जो बिल्कुल ही स्पष्ट है, बढ़ा देंगे ।

इन बाहरी खतरों के साथ-साथ हमें गम्भीर और आन्तरिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ेगा । गुप्तचर विभाग ने इन विषयों में परिस्थिति का जो मूल्याँकन किया है उसकी एक प्रति विदेश मन्त्रालय को भेजने के लिए मैंने श्री एच० वी० आर० अय्यंगर से कहा है ।

अब तक भारतीय कम्युनिस्टपार्टी को विदेशी कम्युनिटों से सम्पर्क स्थापित करने और उनसे शस्त्रास्त्र तथा प्रचार साहित्य प्राप्त करने में कठिनाई होती थी । पूर्व में उन्हें दुर्गम पाकिस्तानी और बर्मी सीमा से या दीर्घ सागर तट से जूझना पड़ता था । अब वे अधिक सुगमता से चीनी कम्युनिस्टों से और उनके द्वारा अन्य विदेशी कम्युनिस्टों से सम्पर्क कर सकेंगे । जासूसों, पंचमांगियों और कम्युनिस्टों के लिए घुसपैठ करना सरल हो जावेगा । तेलंगाना और वारंगल में इक्के-दुक्के कम्युनिस्ट गढ़ों से निबटने की अपेक्षा अब हमें कम्युनिस्ट खतरे का सामना उत्तरी व उत्तरपूर्वी सीमा पर भी करना पड़ेगा, जहाँ हथियारों व गोला-बारूद की सप्लाई के लिए वे आराम से चीनी

शस्त्रागारों पर निर्भर रह सकते हैं। (नक्सलवाड़ी का उदाहरण सम्मुख है-सं०)

इस प्रकार सारी स्थिति से कई समस्यायें उठती हैं जिन पर हमें शीघ्र निर्णय कर लेना चाहिए ताकि हम अपनी नीति के सुस्पष्ट लक्ष्य और उन तक पहुँचने के लिए मार्ग निर्धारित कर सकें। ये लक्ष्य और मार्ग इतने व्यापक होने चाहिएं कि उनमें हमारी सुरक्षा नीति और सैनिक तैयारी ही नहीं अपितु आँतरिक सुरक्षा की समस्याओं का भी समावेश हो जाय, जिन्हें निबटाने में हम एक क्षण का भी विलम्ब नहीं कर सकते।

सीमा के साथ जिन दुर्बल स्थलों का मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ उनकी प्रशासनिक और राजनीतिक समस्याओं से भी हमें निबटना पड़ेगा।

इन सब समस्याओं का समग्रता से यहाँ उल्लेख करना मेरे लिए सम्भव नहीं होगा। तथापि मैं कुछ समस्याएँ नीचे लिख रहा हूँ जो मेरे मत में तुरन्त सुलझाई जानी चाहिएं और जिनकी परिधि में हमें अपनी प्रशासनिक तथा सैनिक नीतियों और उन्हें लागू करने के कार्यक्रमों का निर्माण करना होगा।

क—भारत की सीमा और आँतरिक सुरक्षा के लिए चीन से उत्पन्न खतरे का सैनिक और गुप्तचरीय मूल्यांकन।

ख—हमारी सैनिक स्थिति का निरीक्षण और महत्वपूर्ण व्यापार पथों और विवाद का विषय बन सकने वाले प्रदेशों की रक्षा के लिए जैसा आवश्यक, उस तरह से सेना को पुन: तैनात करना।

ग—हमारी सेनाओं की शक्ति का मूल्यांकन और, आवश्यक हो तो, नये खतरों को दृष्टि में रखते हुए स्थल सेना में छटनी करने की योजनाओं पर पुनर्विचार।

घ—हमारी सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकता पर दीर्घकालीन विचार। मेरा तो विचार है कि यदि हम शस्त्रास्त्र, गोला-बारूद और अन्य उपकरणों के वितरण का सुदृढ़ प्रबन्ध नहीं कर लेंगे, तो अपनी सुरक्षा को स्थायी रूप से दुर्बल कर लेंगे और पश्चिम पश्चिमोत्तर तथा उत्तर व उत्तर-पूर्व से उठते हुए दोहरे खतरे से उत्पन्न कठिनाइयों का सामना नहीं कर सकेंगे।

ङ—राष्ट्रसंघ में चीन के सम्मिलित किये जाने का प्रश्न। चीन ने हमें जो झिड़की दी है और तिब्बत के साथ अपने व्यवहार में उसने जो मार्ग अपनाया है, उसे देखते हुए मुझे इसमें संदेह है कि क्या अब भी हम चीन के दावों का समर्थन करते रहेंगे! कोरिया-युद्ध में चीन के सक्रिय भाग लेने के

कारण, सम्भव है अब राष्ट्रसंघ में चीन को गैर कानूनी करार देने की धमकी दी जाये। हमें इस सवाल पर भी अपना रवैया सोच लेना चाहिए।

च—अपनी उत्तरी और उत्तर-पूर्वी सीमा को सुदृढ़ करने के लिए हमें कौन से राजनीतिक और प्रशासनिक कदम उठाने चाहिएं। इसमें समूची सीमा अर्थात् नेपाल, भूटान, सिक्किम, दार्जिलिंग और असम के कबाइली क्षेत्र सम्मिलित हैं।

छ—सीमावर्ती क्षेत्रों तथा उसके साथ लगे हुए उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल व असम आदि राज्यों में आन्तरिक सुरक्षा के कदम।

ज—इन प्रदेशों और चौकियों के साथ डाक-तार, सड़क, रेल, वायुमार्ग और बेतार सम्बन्धों को सुधारना।

झ—सीमा-चौकियों में आरक्षण और गुप्तचर व्यवस्था।

ञ—ल्हासा में हमारे मिशन और ग्यांत्से और यातुंग में हमारी व्यापारिक कोठियों और तिब्बत में व्यापार मार्गों की रक्षा के लिए तैनात हमारी सेनाओं का भविष्य।

ट—मैकमोहन-रेखा के विषय में हमारी नीति।

ये सवाल मुझे सूझ रहे हैं। हो सकता है, इन विषयों पर विचार-विमर्श करने पर चीन, रूस, अमरीका, ब्रिटेन और बर्मा के साथ हमारे आपसी सम्बन्धों के व्यापक प्रश्न भी उठें। और यह एक व्यापक चर्चा होगी, यद्यपि कुछ प्रश्न आधार भूत महत्व के भी हो सकते हैं। उदाहरणार्थ—हमें सोचना पड़ सकता है कि क्या हम बर्मा से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध न जोड़ें, ताकि चीन के साथ अपने व्यवहार में उसके हाथ सुदृढ़ हों। मुझे यह असम्भव नहीं लगता कि हम पर दबाव डालने के पूर्व, चीन बर्मा पर दबाव डाले। वर्मा के साथ चीन की सीमा सर्वथा अनिर्धारित है और वहाँ चीन के क्षेत्रीय दावे भी बहुत बड़े हैं। वर्तमान स्थिति में सम्भव है, चीन को बर्मा ज्यादा सरल समस्या प्रतीत हो। वह पहले उस पर ध्यान दे।

मेरा सुझाव है कि हम शीघ्र ही मिलें और इन विषयों पर व्यापक चर्चा करें और जो पग तुरन्त उठाने आवश्यक लगें, उन्हें तय करलें और अन्य समस्याओं के तुरन्त अध्ययन के आदेश जारी करें ताकि उनके निबटारे के लिए शीघ्र पग उठाये जा सकें।

आपका,
वल्लभ भाई पटेल

(जहाँ तक हमें ज्ञात है सरदार द्वारा प्रस्तावित यह भेंट हुई ही नहीं।
—सम्पादक)

हिन्दू धर्म : महर्षि दयानन्द की दृष्टि में

हिन्दू धर्म समुद्र के समान है। जैसे समुद्र में असंख्य लहरें उठती हैं, यही दशा इसकी है। इसमें ऐसे लोग भी हैं जो पानी को छानकर पीते हैं ताकि कोई अदृश्य जीव उनके उदर में न चला जावे। ऐसे लोग भी हैं जो दुग्धाहारी हैं, केवल दूध ही पीते हैं, अन्य कोई वस्तु नहीं खाते-पीते। और ऐसे लोग भी इसी में हैं जो वाममार्गी कहलाते हैं, जो पवित्र-अपवित्र और योग्य-अयोग्य का विचार किये बिना जो कुछ पाते हैं, खा जाते हैं। इसमें ऐसे लोग भी हैं जो आयु भर यति रहते हैं, न तो किसी स्त्री से विवाह करते हैं और न किसी को बुरी दृष्टि से देखते हैं। और ऐसे लोग भी इसमें हैं जो पराई स्त्रियों से अपना मुँह काला करते हैं। एक वह भी हैं जो केवल निराकार परमात्मा की उपासना करते हैं और उसी का ध्यान करते हैं और एक वे हैं जो अवतारों को पूजते हैं। एक वे हैं जो केवल ज्ञानी हैं और एक वे हैं जो केवल ध्यानी हैं। इसमें वे लोग भी हैं जो छूतछात का इतना बचाव करते हैं कि अन्य धर्मी तो एक ओर, शूद्रों के हाथ से न पानी पीते हैं और न उनके हाथ का भोजन करते हैं और वे लोग भी इसमें हैं जो शूद्रों के हाथ से पानी भी पीते हैं और उनसे भोजन बनवा कर भी खाते हैं। इन सब बातों के होते हुए भी ये सब-के-सब हिन्दू कहलाते हैं और वास्तव में हैं भी हिन्दू ही और कोई इनका हिन्दू धर्म से बहिष्कार नहीं करता। अतः समझना चाहिए कि हिन्दू धर्म बहुत पक्का है, कच्चा नहीं।

हम केवल यह चाहते हैं, लोग वेदों की आज्ञाओं का पालन करें, और केवल निराकार अद्वितीय परमेश्वर की पूजा और उपासना करें, शुभ गुणों को ग्रहण करें और अवगुणों को त्याग दें।

'जनज्ञान' से साभार

दशहरा—दिवाली के शुभ अवसर पर

हर वर्ष की भाँति इस वर्ष पुन: उपहार योजना चला रहे हैं। पाँच नये पा॰कों को पत्रिका एक वर्ष के लिये उपहार में दीजिये। आप चार सम्बन्धियों, मित्रों व परिचितों के पते लिख भेजिये, जिन्हें आप पत्रिका एक वर्ष के लिये उपहार में देना चाहते हैं। इनका शुल्क केवल रु० १५ (पन्द्रह रुपये) आप हमें भेजें और हम उन चार पाठकों को वर्ष भर पत्रिका आपकी ओर से भेजते रहेंगे तथा आपको अपनी ओर से—

एक अनुपम उपहार भेजेंगे।

१. २५ अक्तूबर तक प्राप्त होने वाले फार्म इस योजना में स्वीकार किये जाएँगे। इसके बाद पूर्वोक्त नियमों पर ही पत्रिका का शुल्क, आपका अथवा आपके मित्रों का स्वीकार किया जायेगा।

२. उपहार में आप श्री गुरुदत्त की कोई भी एक अथवा अधिक अथवा पत्रिका म विज्ञापित प्रकाशनों में से अपने पसन्द की चुनी हुई तीन रुपये मूल्य की पुस्तकें मँगवा सकेंगे। भेजने का व्यय लगभग १.०० भी हम देंगे। चार व्यक्तियों को शुल्क भेजने पर तीन रुपये तथा आठ व्यक्तियों का शुल्क भेजने पर ६ रुपये मूल्य की पुस्तकें उपहार में आप मंगवा सकते हैं।

३. नवम्बर-दिसम्बर १९६८ का अँक विशेषांक के रूप में होगा। इस अंक का मूल्य ५ रुपये मात्र है, परन्तु ग्राहकों को शुल्क के अन्तर्गत ही प्राप्त होगा।

४. शुल्क मनीआर्डर द्वारा भेजें; पाठकों के नाम तथा पते स्पष्ट लिखें, उपहार में जो पुस्तक आप मँगवाना चाहें, आप उसका नाम लिख भेजें। नाम न आने पर हम अपनी पसन्द की कोई पुस्तक भेज देंगे जो बाद में परिवर्तन नहीं की जा सकेगी।

नटराज पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
नकटी नानी	श्री माणिकचन्द्र	२.००
नलिनी	,,	२.००
अधूरा स्वप्न	श्री संजय	२.००
छोटे बड़े मनुष्य	,,	२.००
साम्यवाद से संघर्ष	च्यांग काई शेक	२.००
बदलती करवटें	श्री मनमोहन सगहल	१.००
टूटा टी सैट	भगवती प्रसाद वाजपेयी	२.००
दो मार्ग	प्रकाश भारती	२.००
मोपला-गोमान्तक	श्री सावरकर	३.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ताकुमार	१.००
शक्तिपुत्र शिवाजी		१.५०
सत्यकाम सोक्रातेज (प्लेटो के संवाद)		१.५०

पाकेट माला में श्री गुरुदत्त की रचनाएँ

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
अन्तिम यात्रा	१.००	नयी दृष्टि	३.००
एक और अनेक	३.००	निष्णात	२.००
एक मुँह दो हाथ	३.००	निर्मल	२.००
कामना	२.००	पाणिग्रहण	३.००
खेल और खिलौने	२.००	प्रेरणा	३.००
गुण्ठन	३.००	बहती रेता	३.००
चंचरीक	१.००	भाग्य का सम्बल	२.००
छलना	२.००	मानव	३.००
जमाना बदल गया—१	२.००	मायाजाल	३.००
,, ,, ,, —२	२.००	यह संसार	३.००
,, ,, ,, —३	२.००	यह सब झूठ है	२.००
,, ,, ,, —४	२.००	युद्ध और शान्ति—१	३.००
,, ,, ,, —५	२.००	,, ,, ,, —२	३.००
,, ,, ,, —६	२.००	लालसा	३.००
,, ,, ,, —७	२.००	लोक परलोक	२.००
,, ,, ,, —८	३.००	विडम्बना	३.००
,, ,, ,, —९	३.००	विद्यादान	२.००
जीवन ज्वार	३.००	वीर पूजा	१.००
देश की हत्या	३.००	संस्खलन	२.००
दो भद्र पुरुष	२.००	सम्भवामि युगे युगे—१	२.००
द्रष्टा	२.००	,, ,, —२	२.००
धरती और धन	३.००	साहित्यकार	२.००
धर्म तथा समाजवाद	३.००	सुमति	२.००

वेद, महाभारत और पुराण

○

श्री सचदेव

महाभारत में एक श्लोक है—

इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम् ।
श्राव्याणामुत्तमं चेदं पुराणमृषिसंस्तुतम् ।।

(महा भा० आदि० ६२-१६)

महाभारत ऋषियों द्वारा स्तुति किया हुआ, श्रवण करने योग्य श्रेष्ठ ग्रन्थ है। यह वेदों के समान ही पवित्र तथा उत्तम (कल्याणकारी) है।

श्लोक जिस किसी ने भी लिखा हो, उसने बहुत गहन अध्ययन और मनन के उपरान्त लिखा प्रतीत होता है। इसमें कारण है। वह कारण महाभारत के इसी अध्याय में आगे चलकर लिखा है—

धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम् ।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ।।

(महा भा० आदि० ६२-२३)

अर्थात्—यह (महाभारत) अमित बुद्धि व्यास जी ने धर्म शास्त्र जो उत्तम पुण्य अर्थों से युक्त है और जो मोक्ष शास्त्र भी है, लिखा है।

यह भी लिखा है :—

अस्मिन्नर्थश्च धर्मश्च निखिलेनोपदिश्यते ।
इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी ।।

(महा भा० आदि० ६२-१७)

अर्थात्—इसमें पूर्ण रूप से अर्थ का और धर्म का भी उपदेश है। इसमें इतिहास भी है और महा पवित्र मोक्ष दिलाने वाली बुद्धि का भी उपदेश है।

हिन्दू शास्त्रों के निन्दक महाभारत, पुराण और वेदों को भी अप्रामाणिक मानते हैं। ऐसा कहने वाले आज भारत अथवा भारत से बाहर कम नहीं, जो वेदों में गौ-माँस खाने की बात निकालते हैं और वे लोग भी हैं जो महाभारत और अन्य पुराण ग्रन्थों को गल्प भण्डार मानते हैं।

हम इन हिन्दु शास्त्र निन्दकों को मूर्ख, अशिक्षित और अल्पज्ञ मानते हैं। वास्तविक बात यह है कि वेदादि शास्त्रों और उपनिषद्, पुराणादि ग्रन्थों की अपनी अपनी शैली हैं।

जो इस शैली को समझते नहीं, उनको ही हर प्रकार की अनर्गल बात करते हुए सुना जाता है।

परन्तु वह शैली क्या है? यह प्रश्न उपस्थित होता है। इस लेख में हम वेदों के विषय में नहीं लिख रहे। इस पर भी वेद और पुराणादि का समन्वय वर्णन करेंगे।

यह बात हिन्दु जगत् में सर्वमान्य है कि वेद अपौरुषेय हैं। हम उन हिन्दुओं की बात नहीं लिख रहे जिन्होंने वेदों को मैक्समूलर इत्यादि ईसाई पक्षपात युक्त लेखकों की ऐनक से देखा है। न ही हमने सायणादि, उत्तर बौद्ध कालीन, हिन्दु अनुवादकों की दृष्टि से पढ़ा है। वेद को यास्काचार्य, व्यास वाल्मीकि इत्यादि की दृष्टि से देखने पर ही हम इसे अपौरुषेय मानने लगे हैं। वेद मानव ऋषियों को सृष्टि के आदि में मिले थे।

यदि यह बात है तो वेदों में मानव इतिहास नहीं हो सकता। यह बात युक्ति युक्त है, इस पर भी हम वेदों में इतिहास मानते हैं। यदि मानव इतिहास नहीं तो प्रश्न है कि वह कौन सा इतिहास है जो वेदों में मिलता है? यह वह इतिहास है जो पृथ्वी पर मनुष्य के उत्पन्न होने से पहले घटा था। दूसरे शब्दों में यह इतिहास है जगत् की उत्पत्ति का। इसे इतिहास भी नहीं कहा जा सकता। हम इसे उसी अर्थों में इतिहास मानते हैं जिन अर्थों में किसी उद्योग का, किसी कारखाने का अथवा किसी व्यवसाय का इतिहास होता है। जगत् की रचना एक महान् कार्य था। इसके इतिहास को वेदों में वर्णन किया गया है। जैसा कि हमने ऊपर लिखा है कि ये (वेद) वर्तमान रूप में सृष्टि के आदि में मनुष्य को मिल गये थे। अतः उस समय के उपरान्त की बात इसमें नहीं लिखी हो सकती।

हाँ, उन बातों का उल्लेख इनमें है, जिनको धर्म की बात कहते हैं। यह तो इसी प्रकार है, जैसे सन् १८६२ में भारत दण्ड विधान लिखा गया था और उसमें लिखा गया था कि जब कोई किसी दूसरे की वस्तु उठा कर ले जायेगा तो वह चोरी मानी जायेगी और ऐसा करने वाले को सात वर्ष तक का दण्ड दिया जा सकता है। इस कानून के अनुसार आज १०६ वर्ष के उपरान्त भी जब कोई किसी दूसरे की कोई वस्तु उठा लेता है तो उसी दण्ड विधान के अनुसार उसे चोरी का दण्ड मिलता है। अर्थात् धर्म की बात

आदि सृष्टि में कही जाने पर, पीछे भी लागू होती है।

उदाहरण के रूप में लिखा है कि पति-पत्नी जीवन भर इकट्ठे रह कर सन्तानोत्पत्ति करें और सन्तान को श्रेष्ठ बनाने में संलग्न रहें। आज से लाख वर्ष पहले कहा यह आदेश आज भी सत्य है।

अर्थात्—मानव इतिहास तो वेदों में नहीं, परन्तु मानव जीवन की धर्म व्यवस्था उसमें है। इस व्यवस्था को ही धर्म शास्त्र कहते हैं।

जब कहीं कोई ऐसा नाम अथवा घटना का उल्लेख वेदों में हो, जो घटना अथवा वैसा नाम इस धरती पर होता देखा जाता है अथवा देखा जा सकता है तो वह मानव इतिहास की घटना नहीं हो सकती। यदि उसे मानव इतिहास की घटना मानेंगे अथवा वह नाम पृथ्वी पर की किसी वस्तु अथवा प्राणी का नाम मानेंगे तो फिर वेदों को आदि सृष्टिका ग्रन्थ नहीं माना जा सकता और फिर उसको परमात्मा का दिया हुआ ज्ञान भी नहीं कहा जा सकता।

उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। यजुर्वेद के एक मन्त्र में लिखा है—

—पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ—

मन्त्र के इस भाग का अर्थ इस प्रकार किया जाता है कि एक गुट्ट बनाकर अप्सराओं से सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं।

अप्सराओं से अभिप्राय लिया जाता है कि वे स्त्रियाँ जो देव-लोक में वेश्याओं के रूप में प्रयोग की जाती हैं।

इस अर्थ को करने वाले अगले मन्त्र का एक पद ले लेते हैं।

—मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ—

मेनका और सहजन्य अपसराओं के समान। इसके आगे एक मन्त्र में—

—विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापौ......।

विश्वाची और घृताची अप्साओं के समान।

ये यजुर्वेद १५-१५, १६, १८ मन्त्रों के पद हैं। इनमें लिखी अप्सराओं के (मेनका, घृताची, विश्वाची इत्यादि) महाभारत इत्यादि में नाम आते हैं।

यदि पूर्ण मन्त्र के साथ इन पदों को मिलाया जाये तो पता लगेगा कि यह महाभारत इत्यादि पुराण ग्रन्थों में वर्णित अप्सराओं के नाम नहीं, वरंच सूर्य की रश्मियों के नाम हैं।

पूर्ण मन्त्र १५ को लें तो बात स्पस्ट हो जायेगी। मन्त्र इस प्रकार है—

ग्रयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ। पुञ्जिकस्थला च ऋतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेया वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽग्रस्तु ते नोऽवन्तु त नो मृडयन्त ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषाँ जम्भे दध्मः ।।१५।।

(१५-१५)

इसका ग्रर्थ इस प्रकार है—

इस मन्त्र का देवता हरिकेशो वसन्त ऋतुदेवता। विकृतिः। मध्यमः।। है। मन्त्रार्थ करने से पूर्व देवता को समझ लेना चाहिए। हरिकेश वसन्त ऋतु देवता है ग्रर्थात् इस मन्त्र का विषय है। ग्रर्थ है; हरे-भरे वसन्त का निर्माण करने वाला देवता। ग्रभिप्राय यह कि वह शक्ति जिससे वसन्त ऋतु में हरियाली हो जाती है। साथ ही लिखा है मध्यमः, ग्रर्थात् वह मध्यमस्थानीय ग्रप्सरायें हैं। वे पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ नहीं। ग्रप्सराग्रों से ग्रभिप्राय है कि वे जो ग्रप् सरण करती हैं। ग्रर्थात् जिनकी गति सीधी नहीं, टेढ़ी है।

अब ग्रर्थ देखिये—

जैसे (रथगृत्सः) रथों के संचालन में कुशल (रथौजाः च) ग्रौर रथों में बैठे हुए (सेनानी ग्रामण्यौ) योद्धा लोग ग्राम पर ग्राक्रमण करते हैं वैसे ही (सूर्यरश्मिः) सूर्य की किरणें (तस्य) उसके (हरिकेशः) हरे-भरे वसन्त पर (पुरः) पूर्व से ग्राती हैं।

(पुञ्जिकस्थला च ऋतुस्थला) ग्रौर इकट्ठी होकर कार्य करने वाली (अप्सरसौ) ग्रप्सराग्रों की भाँति (दंक्ष्णवः पशवः) डंक मारने वाले कीट-पतंग को (हेतिः) विनाश करती हैं। (पौरुषेयः वधः) पौरुष से वध करती हैं (प्रहेतिस्तेभ्यो नमः) उनके प्रहार के लिए हम उनको नमस्कार करें। (ते नः) वे हमारी (ग्रवन्तु) रक्षा करें। (यः च नः द्वेष्टि) ग्रौर जो हमसे द्वेष करें (तम्) उसको (एषाम् जम्भे) जम्भ ग्रर्थात बन्धन में (दध्मः) डालें।

इस मन्त्र में सूर्य की रश्मियों का उल्लेख है, जो टेढ़ी चलती हुई हरे-भरे उद्यानों में कीट-पतंगों को मार डालती हैं ग्रौर पुष्पादि की रक्षा करती हैं। वे किरणें दल के दल बान्ध कर उद्यानों में ऐसे ग्राती हैं, जैसे सेना के योद्धा लोग किसी बस्ती में जाते हैं। ये बहुत बहादुरी से उन विनाशकारी पशुग्रों को मार डालते हैं। हम उनको नमस्कार करते हैं।

सूर्य रश्मियाँ ग्रप्सरायें हैं। सब रश्मियाँ नहीं। कुछ हैं जो ग्रप् सरण करती हैं। वे ही वसन्त ऋतु में हरी-भरी फुलवारी में विषैले कीट-पतंगों को मार कर उद्यानों की रक्षा करती हैं। वे रश्मियाँ हमारी भी रक्षा करें।

किनसे ! विषैले कीटाणुओं से ।

इस और इसके आगे आने वाले मन्त्रों में पृथिवी पर विचरने वाली अप्सराओं का उल्लेख नहीं है । भूमण्डल पर अप्सरा उस स्त्री को कहते हैं जो स्त्रियों के स्वाभाविक व्यवहार से विलक्षण व्यवहार रखती हैं । उनका ऐसा नाम भी सूर्य की उन रश्मियों की नकल पर ही पड़ा है जो टेढ़ी चलती हैं।

मेनका, विश्वाची, घृताची भी सूर्य रश्मियाँ ही हैं । मानव-लोक में कुछ स्त्रियों के ऐसे नाम रखे प्रतीत होते हैं जो इन रश्मियों के हैं । परन्तु उनके नाम तो ऐसे ही हैं जैसे आज सूर्यदेव, मंगलेश्वर इत्यादि नाम लड़कों के रख दिये जाते हैं । आदि सृष्टि के समय से इस भू-तल पर प्राणियों के नाम वेद शब्दों पर रखे गये तो भूतल पर होने वाली घटनाओं का सम्बन्ध वेद में लिखे शब्दोंऔर नामों से प्रतीत होने लगा । महाभारत पुराण इत्यादि ग्रन्थों की अनेक कथाओं में भी वैदिक नाम और शब्द इसी कारण दिखाई देते हैं । वास्तव में वेद में लिखी घटनाओं का पुराणादि ग्रन्थों में लिखी घटनाओं से सम्बन्ध नहीं है । जैसे कि कलयुग में राम दाशरथीय राम नहीं माना जा सकता, इसी प्रकार भूतल पर होने वाले इन्द्र, वरुण इत्यादि पुरुष मध्यस्थानी देवता नहीं माने जा सकते । पुराणों की कथायें सर्वथा स्वतन्त्र हैं । वेद में लिखी घटनायें जगत् रचना से सम्बन्ध रखने वाली हैं और पुराणों में लिखी घटनायें मानवों से सम्बन्ध रखती हैं ।

इस पर भी हमारा यह मत है कि जिस शैली पर वेद लिखे गये हैं उसी शैली पर पुराणादि ग्रन्थ लिखने का प्रयास किया गया है । वेद, जैसा हमने ऊपर बताया है कि ये इतिहास (जगत् रचना) का वर्णन करते हैं । हमने यह भी बताया है कि ये धर्म ग्रंथ हैं । यह भी सत्य है कि धर्म ग्रन्थ के कारण ये अर्थशास्त्र का भी उल्लेख करते हैं । साथ ही वेद मोक्ष-मार्ग दिखाने वाले भी हैं । यही बात महाभारत के विषय में लिखी है । व्यासजी ने महाभारत ग्रंथ, इतिहास, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन करने के लिए लिखा है । उक्त श्लोक लिखने वाले के मत में महाभारत की महिमा उतनी ही है, जितनी वेद की है ।

हमारा यह मत है कि वेद की शैली ऐसी है कि वह मोक्ष का मार्ग दिखाने के लिए विद्या और अविद्या दोनों का ज्ञान कराता है । इसी प्रकार सम्भूति और असम्भूति दोनों का ज्ञान वेदों में वर्णन कर दिया है । सम्भूति अर्थात् विद्या का ज्ञान देने के लिए धर्म, अर्थ, काम तीनों का ज्ञान कराया है। साथ ही यह कह दिया है कि अविद्या और सम्भूति को तीर्त्वा (पार कर)

विद्या और असम्भूति को ग्रहण करने से मोक्ष मिलता है।

यही बात महाभारतादि ग्रंथों की है। उसमें इतिहास भी है। संक्षेप में वह इतिहास दिया है जो जगत् रचना का है और साथ ही प्राणी की, आदि सृष्टि से ग्रंथ लिखने के काल तक, मानव इतिहास की मुख्य-मुख्य घटननायें भी लिखी हैं। उन घटनाओं को लिखते हुए उनमें धर्म, अधर्म की व्याख्या भी की है। साथ ही घटनाओं में कारण भी वर्णन करने का यत्न किया है।

यही कारण है कि महाभारत ग्रंथ को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का ग्रंथ कहा है और इन सबका वर्णन मानव इतिहास का आश्रय लेकर किया गया है।

एक बात इसमें ध्यान देने योग्य है कि घटनाओं का कारण वर्णन करते हुए, उन सिद्धान्तों का आश्रय लिया गया है जो वेदादि शास्त्रों में सम्मानित किये गए हैं।

अपने अगले किसी लेख में हम महाभारत ग्रन्थ में से घटनाओं का उल्लेख कर उनमें धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति, उनका मोक्ष की प्राप्ति में सहायक होना साथ ही घटनाओं में कारण का वर्णन करेंगे। साथ यह बताने का यत्न करेंगे कि उनका वेदों से कहाँ और किस प्रकार भेद है? इसको समझाने के लिए वेद में लिखी कुछ घटनाओं का भी वर्णन करेंगे।

अस्तित्व की रक्षा

श्री विद्यानन्द 'विदेह'

आवश्यकता हिन्दुओं के तत्काल सुसंगठित किये जाने की है। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए जाति-पाँति को मिटाने के सफल प्रयास निष्फल सिद्ध हुए हैं और होंगे। आवश्यकता छुआछूत को मिटाने की है। रोटी और बेटी या भोजन और विवाह की जो रोक-टोक है, उसे मिटाया जा सकता है। उसके मिटने पर जाति-पाँति के रहते हुए भी हिन्दू जाति का विशाल तनु सुगठित और अभेद्य हो जायेगा। बाधक खान-पान और रहन-सहन के स्तर की असमानता है। इस असमानता की चिकित्सा हिन्दू मिशनरियों द्वारा शिक्षा तथा प्रशिक्षा से की जा सकती है। यदि हिंदुओं के सभी वर्गों के आहार और आचार का स्तर समान हो जाये, साथ ही स्वच्छता तथा सुसंस्कार सम्पूर्ण हिन्दू-तनु में सम्यक् समंकित हो जायें तो हिन्दू-संगठन सर्वथा दराररहित हो जाये।

सनातन धर्म और आर्यसमाज, ये दो ही वर्ग हैं, जिनके एवीभूत सहयोग से यह बहुवाञ्छनीय साध सिद्ध हो सकती है। दोनों की अभिन्न सम्मिलित शक्ति से ही यह साध पूर्ण होगी। इनके पारस्परिक कटाक्ष तथा टकराव से हिन्दू जाति की अपार हानि हुई है। मान्यताओं के भेद से मानसभेद तथा लक्ष्यभेद कदापि न होना चाहिए। एक ऐसे हिन्दू मिशन की सद्यः स्थापना होनी चाहिए, जिसमें हिन्दू जाति के सभी वर्ग समान रूप से साधन अर्पित करें और कन्धे-से-कन्धा मिलाकर कार्य करें। हिन्दू मिशन को अर्पित होने वाले देव और देवियों को क्षेत्रों में कार्य करने का पर्याप्त प्रशिक्षण देना होगा, जो साधना-शिविरों के द्वारा दिया जा सकता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इस दिशा में जो कार्य कर रहा है, उससे शहरी क्षेत्रों में कुछ भावात्मक कार्य हुआ है, किन्तु उन क्षेत्रों में, जहाँ पिछड़े हुए अथवा उपेक्षित लाखों-करोड़ों हिन्दू क्रिश्चियन मिशनरियों तथा मुस्लिम तब्लीग़ियों के अधार्मिक षड्यन्त्रों का शिकार हो रहे हैं, उनकी लेशमात्र पहुँच नहीं हुई है।

हिन्दू मिशन को उपेक्षित हिन्दू-क्षेत्रों में काम करने में अधिक कठिनाई न होगी, यदि वे वहाँ स्थायी रूप से निवास करके कार्य करें। ऐसा करने से

बहुत स्वल्प काल में हिन्दुओं का विधर्मीकरण बन्द हो जायेगा। तत्पश्चात् वह युग आयेगा, जिसमें सभी हिन्दू-रक्त विधर्मियों को विशुद्ध साधना से पुनः अपनी हिन्दू जाति में लाया जायेगा। हमें क्रिश्चियन मिशनरियों तथा मुस्लिम तब्लीगियों से न टकराने की आवश्यकता होगी, न उनके-से षड्यन्त्र करने की। हिन्दू मिशन का काम नितान्त श्रेष्ठ और शुद्ध नीतियों के साथ होगा। स्नेह, सेवा, शिक्षा और प्रचार—इस साधनचतुष्टय से हिन्दू मिशन देश में भी और विदेशों में भी सफलतापूर्वक निर्बाधता के साथ व्यापेगा।

हाल ही में यह जानकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ कि हिन्दू-विश्व परिषद् हिन्दू-रक्षण तथा हिन्दू-संगठन का अच्छा काम कर रही है। यह खेद की बात है कि वे अबोध लड़कों को बिना किसी विशेष प्रशिक्षण के कार्यक्षेत्रों में भेज रहे हैं और इसीलिए प्रगति तथा व्याप्ति उतनी तेज़ी से नहीं हो रही है जितनी तेज़ी से होनी चाहिए।

यह साध फ़ालतू-समय कार्यकर्ताओं तथा नेताओं के बूते की कदापि नहीं है। इसके लिए गृहस्थमुक्त अर्पित जीवनों की आवश्यकता होगी। कार्यालयों तथा केन्द्रों की व्यवस्था में गृहस्थियों के फ़ालतू समय का उपयोग हो सकता है। परन्तु जहाँ तक मिशन-कार्य का सम्बन्ध है, वह तो गृहस्थमुक्त अर्पित जीवनों द्वारा ही सुसम्पादित होगा। हिन्दुओं में लाखों की संख्या में अवकाश प्राप्त तथा पेंशनभोगी देव-देवियाँ विद्यमान हैं। उनमें से असंख्य देव-देवियाँ अपनी-अपनी मासिक पेंशिन के आश्रय से ही मिशन कार्य सुचारुता के साथ निर्वहन कर सकेंगे। वैसे हिन्दू जाति के पास अथाह धन है। काम को दाम और सलाम की कभी कमी नहीं रहती है।

हिन्दू मिशन को न किसी का विरोध करना है, न किसी का अहित करना है। उसे तो विरोध में निरोध करते हुए, विरोधियों के प्रति भी स्नेह और सद्व्यवहार करना है। हिन्दू एक धर्मनिष्ठ और धर्मप्राण जाति है। उसके मिशनरी सांसारिक प्रलोभनों और मक्कारियों से बचकर और मानवीय साधनों से सुसज्ज होकर कार्य करेंगे। सद्यः एक सर्वोपरि सार्वभौम हिन्दू मिशन की स्थापना की जानी चाहिए। हिन्दूहितकारिणी सभी संस्थाओं को उनकी व्यवस्था में संगठित होकर कार्य करना चाहिए। आर्यसमाज और सनातनधर्मियों के संन्यासियों तथा वानप्रस्थियों से इसका आरम्भ आसानी से हो सकता है। कठिनाई यह है कि हिन्दुओं का विरक्त वर्ग अधिकांशतः आराम-तलब और उद्यमहीन हो गया है।

क्रमशः

गाँधीजी और ईसाइयत

○

श्री ब्रह्मदत्त भारती

ईसाइयत का इस देश में यह मत रहा है कि जितने उच्चकोटि के हिन्दुओं को ईसाई बनाया जा सके, उतनी ही ईसाइयत के प्रचार में सहायता मिलेगी। इसी विचार के अन्तर्गत ईसाइयत ने राजा राममोहन राय को ईसाई बनाने का यथाशक्ति यत्न किया, परन्तु सफलता न मिल सकी। महात्मा गाँधी को भी ईसाई बनाने की बड़ी कोशिश की गई, परन्तु ईसाइयत एक बार फिर हारी।

इसी वर्ष २७ अप्रैल के दिन लाईट ऑफ लाईफ बाईबल कॉरसपौंडेंस स्कूल चालीसगाँव के नाम से कलकत्ता में ईसाई युवतियों द्वारा अंग्रेजी और बंगला में छपे पर्चे वितरित किये गये। अंग्रेज़ी के पर्चों में गाँधी जी के नाम से यह कहा गया है कि "मैं हिन्दुओं से कहना चाहूँगा कि यदि आप जीसस की शिक्षाओं का अध्ययन श्रद्धापूर्वक नहीं करते तो आपकी अपनी जीवनी अपूर्ण रह जायेगी।" (I shall say to the Hindus that your lives will be incomplete unless you reverently study the teachings of Jesus.) गाँधी जी के नाम से हिन्दुओं को आकर्षित करने की चेष्टा ईसाइयत यदा-कदा करती रहती है, चाहे इसके लिए उसे झूठ ही क्यों न बोलना पड़े। जन साधारण को गाँधी के नाम से पथ-भ्रष्ट करना ईसाइयत का एक राजनीतिक षड्यन्त्र रहा है।

गाँधी के विचार ईसाइयत के सम्बन्ध में क्या थे, इसकी जानकारी बहुत से हिन्दुओं को नहीं है। अपनी आत्मकथा में (पृ० ९८—९९, १९५८ संस्करण) उन्होंने स्पष्ट कहा है; मैं यह मानने के लिए तैयार हूँ कि जीसस ने अपने विचारों के लिये अपना बलिदान दिया और वह एक धर्म गुरु था। परन्तु मैं यह स्वीकार नहीं करता कि वह निर्दोष और पूर्ण मनुष्य था। उसका बलिदान संसार के लिए एक बड़ा दृष्टान्त है, परन्तु उसमें कोई चमत्कार छिपा था, यह मैं नहीं मानता।

(I could accept Jesus as a martyr, an embodiment ot sacrifice, and a divine teacher, but not as the most perfect man ever

born. His death on the cross was a great example to the world, but that there was anything like a mysterious or miraculous virtue in it, my heart could not accept.)गाँधी के कथन से यह भली-भाँति मालूम हो जाता है कि न तो वह जीसस का कंवारी माँ से पैदा होने की बात ही मानते थे और न ही उसकी मरने के पश्चात जीवित होने की कहानी को ही सत्य समझते थे ।

'यंग इंडिया' पत्रिका में लिखते हुए २२ दिसम्बर १९२७ को गाँधी जी ने कहा था कि बाईबल पढ़ते हुये मुझे सर्वदा निद्रा आ घेरती है । ('''invariably sent me to sleep.)

ईसाई पादरी लोग सरमन ऑन दी माऊन्ट का जब-जब व्याख्यान करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो इससे बढ़कर संसार में कोई विचार कभी किसी के मस्तिष्क में आये ही नहीं, और न भविष्य में कभी आयेंगे । इसी 'सर्मन ऑन दी माऊन्ट' के बारे में गाँधीजी ने ६ अगस्त १९२५ को यंग इंडिया' में लिखा कि मैं ईसाइयत की कई बातों का प्रशंसक हूँ परन्तु इसकी बहुत सी बातों से मैं सहमत नहीं । मैं यह कहते हुए किंचित् भी नहीं शर्माता और हिचिकचाता कि हिन्दुधर्म से मुझे वह सब पूरी तरह मिलता है, जिसकी कभी भी मेरी आत्मा इच्छुक होती है । भगवद्गीता और उपनिषद् मुझे जो शान्ति देते हैं, वह 'सरमन ऑन दी माऊन्ट' मुझे नहीं दे पाता । (Though I admire much in Christianity, Iam unable to identify myself with orthodox Christianity. I must tell you with humility that Hinduism, as I know it, entirely satisfies my soul, fills my whole being, and I find a solace tn the Bhagwadgita and Upnishads that I miss even in the Sermon on the Mount.)

ईसाइयत सोते जागते इस बात का ढिंढोरा पीटते नहीं थकती कि केवल जीसस ही खुदा का एकमात्र पुत्र है । इसी के इर्द-गिर्द ईसाइयत ने समस्त प्रचार का जाल-सूत्र बना रखा है । यदि ऐसा न माना जाये तो ईसाइयत कण-कण और खण्ड-खण्ड हो जाती है । इसके बारे में भी गाँधी ने अपने विचार प्रगट किये थे । उन्होंने 'हरिजन पत्रिका' में लिखते हुए ६ मार्च १९३१ को कहा था कि मैं जीसस को मानवता का एक बड़ा गुरु तो मानता हूँ परन्तु मैं यह नहीं मानता कि केवल वह ही परमात्मा का एकमात्र पुत्र था । (I regard Jesus as a great teacher of humanity, but I do not regard him as the only begotten son of God.) अपने इस कथन से तो मानो

गाँधी ने ईसाइयत की जड़ें ही उखाड़ कर बाहर फेंक दी हों।

जिस जीसस की जीवनी का श्रद्धापूर्वक अध्ययन करने की योजना हिन्दुओं के सामने ईसाई बार-बार रखते हैं, उस जीवनी में शायद जीसस के चमत्कार ही उसकी जीवनी का वह अँग हैं, जिसके बल पर ईसाइयत दूसरे धर्म वालों को प्रभावित करने की आशा बनाये हुए है। इन चमत्कारों के बारे में भी गाँधी ने कुछ लिखा है। हरिजन पत्रिका में १७ अप्रैल १९३१ को उन्होंने लिखा था, जीसस ने कुछ रोटियों से एक जनसमूह को खाना खिला दिया, इसमें कोई चमत्कार नहीं है। एक मदारी भी यह भ्रान्ति पैदा कर सकता है। जीसस ने मरे हुए व्यक्ति को जीवित कर दिया, इसमें भी मुझे संदेह है। वह व्यक्ति शायद मरा ही नहीं था।

(There is no miracle in the story of the multitude being fed (by Jesus) on a handful of loaves. A magician can create that illusion......As far the Jesus raising the dead to life, well I doubt if the men he raised were really dead.)

गाँधी के विचारों से यह अच्छी प्रकार विदित हो जाता है कि ईसाइयत का खोखलापन उनसे छिपा न था। जैसे "थोथा चना बाजे घना" इसी प्रकार ईसाइयत गाँधी के नाम पर हिन्दुओं को आमंत्रित करती ही रहती है। उनसे बार-बार यह कहते लज्जाती नहीं कि जीसस की जीवनी का अध्ययन करो।

जब ये पर्चे कलकत्ता में वितरित किये गये तो लेखक भी वहाँ था। उसके हाथ में भी एक युवती ने एक पर्चा थमा दिया था। उसे पढ़कर उसे ऐसा महसूस हुआ था, जैसे कि यह वाक्य कभी गाँधी ने कहे ही नहीं। उन्होंने ईसाइयत के बारे में क्या-क्या कहा है, वह लेखक ने पढ़ा है। जब उत्सुकता चर्मसीमा पर आ गई तो लेखक ने जानकारी के लिए एक पत्र 'लाईट ऑफ लाइफ बाईबल कॉरसपोंडेंस स्कूल' के प्रिंसीपल को लिखा और पूछा कि गाँधी के ये वाक्य कहाँ से उद्धृत किये गये हैं? उत्तर नहीं मिला। एक सप्ताह पश्चात फिर एक पत्र रजिस्ट्री द्वारा भेजा। उसमें लिखा:—

मेरे विचार में गाँधी जी के मुँह में शब्द ठोंसने का प्रयास किया गया है। भाषा भी गाँधी जी की नहीं जान पड़ती। मैं शंकित हूँ कि शायद यह पर्चेबाज़ी भी उसी थोथे ईसाई प्रचार का एक अँग ही है जिसमें ईसाइयत हिन्दुओं के मस्तिष्क को भ्रांत करने के लिये सदा इस देश में संलग्न है। (I have a feeling that the Mahatma has been misquoted. The language of the sentence ascribed to him looks unGandhian,

and I have a lurking suspicion, this is yet another instance of hecap pamphleteering in which Christianity continues to indulge in this country with the sole aim of subverting the minds wf non Christians and the Hindus in particular.

वहाँ से १८ मई १९६८ को उत्तर में एक पोस्टकार्ड आया। उसमें लिखा था : आपके पत्र मिले। उत्तर देने में देरी हुई, इसका खेद है। हमारे बहुत से कर्मचारी छुट्टी पर हैं। इसी कारण आपके पत्र का उत्तर न दे सके। जैसे ही हो सकेगा आपको शीघ्र उत्तर देंगे। ("We are in receipt of your letters. We are sorry for the delay in answering your question. Many of our staff are on leave. So we could not take your question. We shall give you the answer as early as posssible .....We shall try to give you answer as early as possb[s—C. G. Philip.)

वहाँ से क्या उत्तर आयेगा और कब आयेगा, यह विश्वास के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना हम जानते हैं कि गाँधी न तो जीसस को खुदा का एकमात्र पुत्र ही मानते थे और न यही मानते थे कि जीसस कुँवारी माँ से पैदा हुआ था; वह मर कर फिर जीवित हुआ और न ही उसने कोई चमत्कार दिखाये। वह हिन्दुओं को यह उपदेश नहीं दे सकते थे कि जीसस के उपदेशों का श्रद्धापूर्वक अध्ययन करो, नहीं तो हिन्दुओं की अपनी जीवनी अपूर्ण रह जायेगी। जिस जीवन से वह स्वयँ प्रभावित नहीं हुए, उसी को वह हिन्दुओं के माथे क्यों मढ़ने लगे ? गाँधी ऐसे कपटी और कुटिल नहीं थे। पहला पत्थर ईसाइयत ने ही फेंका है, ऐसा जान पड़ता है।

पृष्ठ ४३ का शेष

ये सब देश के रहने वाले हैं। देश सबका है। यदि यह कहा जाये कि श्रेणी (ब), (स) के लोग अधिक प्रतिष्ठा के पात्र हैं तो ठीक होगा। ऐसा मानने वाले दक्षिण-पंथी हैं।

(३) जो आत्मतत्त्व के अस्तित्त्व में विश्वास रखते हैं, शरीर को, आत्मतत्त्व का करण मात्र (instrument) समझते हैं, जो जीवन को जन्म से मरण पर्यन्त ही नहीं मानते, वरंच इससे पहले और उपरान्त चल रहा देखते हैं, वह दक्षिण-पंथी हैं।

हमारा यह कहना है कि उक्त विचारों वाले एकत्रित हो जायें। वे ही वाम-पंथियों को देश के सिर पर चढ़ने से रोक सकते हैं।

संयुक्त विधायक दल

○

श्री अश्लेष

मनुष्य के प्रत्येक कार्य में ईमानदारी का बहुत बड़ा महत्व है। सत्य भाषण ईमानदारी का बाहरी रूप है। ईमानदारी मन की भावना है जिसमें मनुष्य कार्य सिद्धि के लिए मन, वचन और कर्म को एक रूप कर देता है। इसी को प्रकट करने के लिए सत्य व्यवहार शब्द का निर्माण हुआ है।

राजनीति में सत्य व्यवहार को गौण माना जाता है, परन्तु इससे कभी भी ध्येय की सिद्धि नहीं होती। शास्त्र में जैसे ऋषियों के लिये सत्य बोलने की व्यवस्था है, वैसे ही राजा के लिये भी है। कारण स्पष्ट है कि राजा बिना प्रजा और सेना के सहयोग के राज्य नहीं कर सकता और प्रजा तथा सेना के साथ वचन भंग करने वाला राजा राज्य करना तो दूर रहा, जीवित भी नहीं रह सकता।

वर्तमान युग की दल गत राजनीति में नेता ही राजा है और दल के सदस्य प्रजा हैं। अतः नेता का अपने दल के साथियों और कार्य-कर्त्ताओं के साथ वचन भंग वही स्थिति उत्पन्न कर देता है, जो मिथ्याभाषी राजा की है। जो नेता अपने दल के लोगों को अपने व्यवहार का ठीक ज्ञान नहीं कराता और उसकी दल की नीति से सामञ्जस्य नहीं बताता, वह अपने साथियों का विश्वास खो कर स्वयं अपमानित होता है और फिर दल को भी विनष्ट करने वाला सिद्ध होता है।

इस पर भी भारत की राजनीति इस व्यापक सिद्धान्त की अवहेलना पर चल रही है। कांग्रेस ने राम-राज्य स्थापना की घोषणा की, परन्तु आरम्भ से ही असत्य भाषण आरम्भ किया। नेहरू सरकार ने अपना समाजवाद, चोर बाजारी करने वालों को दिल्ली घण्टा घर के सामने फाँसी लटकाने के आश्वासन के साथ आरम्भ किया था। वेतन कम करने और बेकारी दूर करने का एक अन्य आश्वासन भी दिया गया था। ये और अन्य अनेकों आश्वासन काँग्रेस और नेहरू सरकार ने दिये थे और इस सरकार ने किया इसके सर्वथा विपरीत।

काँग्रेस सरकार ने वचन भंग किया और परिणाम यह है कि काँग्रेस पर

से जनता का विश्वास उठ गया है। यह ठीक है कि काँग्रेस अपने बलपूर्वक वचन भंगों को और अधिक असत्य भाषण और धोखा-धड़ी से छिपाने का यत्न कर रही है। इसमें उसे सामयिक सफलता मिल भी रही है। परन्तु क्या यह अनन्त काल तक चल सकेगा ?

गत वर्ष से देश में एक अन्य स्थिति उत्पन्न हो गयी है। देश के राज्यों में काँग्रेस दुर्बल पड़ गयी है और उन राज्यों में विपक्षी दलों ने संयुक्त विधायक दल बना कर कांग्रेस को पदच्युत कर दिया। परन्तु एक वर्ष के भीतर ही प्राय: सब राज्यों में संयुक्त विधायक दल असफल हो गये हैं और वहाँ अब नये निर्वाचन हो रहे हैं।

सबसे पहले बंगाल का संयुक्त विधायक दल असफल हुआ और वहाँ राज्य-पाल का शासन स्थापित हुआ। इसके साथ ही हरियाणा में हुआ। उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब की बारी उसके उपरान्त आयी। अब एक अन्य राज्य में यही कुछ होने वाला है। मध्य प्रदेश में। अभी तक काँग्रेस को स्थाई रूप में पदच्युत करने का श्रेय दिल्ली और मद्रास को प्राप्त हुआ है। केरल में भी काँग्रेस की चल नहीं सकी, परन्तु वहाँ का सत्तारूढ़ दल भी डांवाडोल ही है और वहाँ गड़बड़ मच रही है।

दिल्ली और मद्रास में काँग्रेस के प्रमुख विपक्षी दल का राज्य है तो इस कारण कि वहाँ पर एक एक दल का पूर्ण बहुमत बना था और उस बहु-मत के भरोसे वह अभी तक काँग्रेस को समीप फटकने नहीं देता।

संयुक्त विधायक दलों में कई सैद्धान्तिक दोष थे और उन सैद्धान्तिक दोषों के कारण उनका चल सकना सर्वथा असम्भव था। यही हुआ है। संयुक्त विधायक दल ने अपने अपने दलों से विश्वासघात किया था। यही कारण था कि वे चल नहीं सके।

यह इस प्रकार है। संयुक्त दल उन दलों के संयोग से बन सकते थे, जिनमें कुछ सिद्धान्त समान होते। जनसंघ, काँग्रेस दल को छोड़े लोग, कम्यु-निस्ट, सोशलिस्ट, रिपब्लिकन दल इत्यादि थे जिन्होंने मिलकर ये संयुक्त विधायक दल बनाये थे। ये सबके सब दल सैद्धान्तिक रूप में एक दूसरे के सर्वथा विरोधी हैं।

इन दल वालों का विचार था कि देश-भक्ति एक सांझी बात है और जनता की भलाई सबके मन में है। अत: ये संयुक्त मोर्चे चल सकेंगे, परन्तु देश-भक्ति और जनता की भलाई एक अपूर्ण भावना मात्र है। इस अपूर्ण भावना को रूप, प्रत्येक दल वाले अपने अपने विचारों से, देते थे और वे रूप

एक दूसरे से भिन्न थे।

उदाहरण के रूप में कम्युनिस्ट यह मानते हैं कि समाज में एक ही वर्ग रहना चाहिए और दूसरे वर्गों को निःशेष कराना चाहिए। यदि वे स्वेच्छा से अथवा सुगमता से निःशेष न हों तो उनको बल-पूर्वक रक्त रंजित क्रांति से निःशेष कर दिया जाए। वे इसी को देश-भक्ति, समाज-सेवा और लोक-हित मानते हैं। इसके विपरीत स्वतन्त्र दल वाले समाज में मजदूर वर्ग, व्यापारी वर्ग, विद्वान वर्ग और फिर सरमायादार और मध्यम वर्ग (Middle Class) की कल्पना रखते हैं। ये लोग यह मानते हैं कि सब वर्गों के फलने-फूलने से समाज फले-फूलेगा। फिर समाजवादी दल है। ये चाहते तो वही हैं जो कम्युनिस्ट चाहते हैं, परन्तु न तो वे रक्त रंजित क्रान्ति की आवश्यकता समझते हैं, न ही सम्भव। वे लोक-कल्याण और देश-भक्ति इसी में समझते हैं कि मज़दूर वर्ग के अतिरिक्त वर्गों की हत्या न की जाये, परन्तु उनके शरीर में तपेदिक के कीटाणु डाल दिये जायें और धीरे धीरे उन वर्गों की हत्या हो जाये। जन-संघ है जो प्राचीन सस्कृति और धर्म को आधार बनाकर राज्य चलाना चाहता है और इसीमें देश-भक्ति तथा लोक-कल्याण मानता है।

देश में जितने भी दल बने हैं, वे प्रत्यक्ष रूप में तो समाज सेवा के विचार से बने हैं, परन्तु समाज सेवा का रूप सबका अपना अपना है।

इस विभिन्नता के अतिरिक्त एक बात और है जिसके कारण इन दलों का संयुक्त मोर्चा टिका नहीं रह सका। यह बात है दलगत स्वार्थ। अभिप्राय यह कि प्रत्येक दल अपने अस्तित्व को देश, जाति और कभी कभी तो परमात्मा से भी ऊपर समझने लगता है। दल के अस्तित्व को दल के सिद्धान्तों से भी अधिक महत्व दिया जाता है।

इस स्थिति में दलों का संयुक्त मोर्चा बना रह नहीं सकता था। इन सब बातों से भी अधिक विघटनात्मक स्थिति तब बनी, जब प्रायः सब राज्यों में जहाँ संयुक्त विधायक दल बने, वहाँ मुख्य मन्त्री काँग्रेस दल से निकाले गये अथवा निकले हुए काँग्रेसी बने। काँग्रेसी से हमारा अभिप्राय यह है कि वे लोग काँग्रेस से इस कारण नहीं निकले थे कि उनका काँग्रेस की मूल नीति से मत भेद हो गया था, वरंच वे बाहर इस कारण हुए कि उनके स्वहित काँग्रेस में रहते हुए सिद्ध नहीं हो सके थे।

ये मुख्य मन्त्री अपने विचार और ढंग से काँग्रेस की मूल नीति को, संयुक्त विधायक दल के कंधों पर बैठ कर चलाना चाहते थे।

पूर्ण समस्या को समझने के लिए भारत में वस्तु स्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है। वह स्थिति यह है।

(१) स्वराज्य के पूर्व काँग्रेस ही एक राजनीतिक दल था। यह नहीं कि देश के सब लोग काँग्रेस की मूल भूत नीति, जो उस समय कुछ भी नहीं थी, को स्वीकार करते थे। काँग्रेस की नीति नकारात्मक अर्थात् अंग्रेज़ी सरकार विरोधी थी। यह कुछ भी नीति न होने के तुल्य थी और इसको सब देशवासी स्वीकार नहीं करते थे। काँग्रेस के भीतर और बाहर भी लोग स्वराज्य का अपना अपना एक चित्र मन में रखते थे, परन्तु काँग्रेस का कोई चित्र नहीं था।

हुआ यह कि जवाहर लाल नेहरू सर्वेसर्वा बन गये और वे अपने मन की चलाने लगे। काँग्रेस के नाम, जिसको विख्यात करने में करोड़ों रुपये व्यय किये गये थे और लाखों लोगों ने त्याग और तपस्या की थी, के कारण काँग्रेस को जनता का मत मिला, परन्तु जो रूप स्वराज्य का निकला, वह श्री जवाहर लाल जी के मन का था। परिणाम यह हुआ कि असन्तुष्ट लोग अपना अपना दल बनाने लगे।

(२) ये दल सबके सब एक साथ नहीं बने। ज्यों ज्यों लोगों के मन में प्रकाश होता गया कि जिस स्वराज्य के लिये वे त्याग-तपस्या कर रहे थे और धन दे रहे थे, वह यह स्वराज्य नहीं था। अतः वे सत्ताधारी दल (नेहरू दल) से असन्तुष्ट हो, नये दल बनाते गये।

समाजवादी दल, जन-संघ, स्वतन्त्र दल, रिपब्लिकन दल इत्यादि इसी प्रकार बने। सन् १९६२ के उपरान्त नेहरू नीतियों से असन्तुष्ट डैमोक्रेटिक दल, क्रान्तिकारी दल इत्यादि बने।

क्योंकि ये दल एक साथ नहीं बने। इस कारण ये इकट्ठे होकर कभी विचार ही नहीं कर सके कि उनमें एक होने की आवश्यकता भी है और उनके कुछ ऐसे साँझे सिद्धान्त हो भी सकते हैं अथवा नहीं, जिसके अनुसार मिल कर नेहरू दल का विरोध किया जा सके।

दल बन गये और फिर दल की भक्ति इतनी प्रबल हुई कि देशभक्ति मात हो गई।

(३) सब कांग्रेस विरोधी दल न केवल कांग्रेस के विरुद्ध थे, वरंच परस्पर भी विरोध करते थे। यही कारण है कि देश में नेहरू का व्यापक विरोध होते हुए भी नेहरू दल को कोई पदच्युत नहीं कर सका। सन् १९६२ के निर्वाचनों में तो गांधी और कांग्रेस की पुरानी प्रतिष्ठा कांग्रेस को विजयी

बना गई। सन् १९५७ के निर्वाचनों में जितनी नेहरू दल की प्रतिष्ठा कम हुई उतना उनके पास धन अधिक होने से वे मतों का क्रय कर सके। राज्य-सत्ता हाथ में होने के कारण नेहरू दल अपनी बदनामी को शराब की बोतलों, ठेकों, परमिटों और अन्य सुविधाओं से धो सका। सन् १९६२ के निर्वाचनों में धन, शराब, ठेके और परमिट और भी जोरों से चले।

धीरे-धीरे इन साधनों का प्रभाव भी कम होने लगा और नेहरू दल सन् १९६७ में पहले से अधिक धन का व्यय करने पर भी वह बहुमत प्राप्त नहीं कर सका, जो पहले करता रहा था।

(४) पूर्ण बहुमत तो नेहरू दल का सन् १९५२ में भी नहीं था। नेहरू को सदा आधे से कम मत मिलते रहे, परन्तु शेष आधे से अधिक मत कई दलों में विभक्त होते रहे। इसमें कारण नेहरू दल की चतुराई तो है ही, परन्तु विपक्षी दलों की मूर्खता भी कम नहीं।

विपक्षी दल कभी भी अपना कोई सांझा कार्य-क्रम और नीति बना नहीं सके। इसका स्पष्ट उदाहरण स्वतन्त्र दल और जन-संघ का है। कई बार इन दोनों दलों में बुद्धिमत्ता की पराकाष्ठा उपस्थित थी और वे एकत्रित नहीं हो सके। स्वतन्त्र दल के वयोवृद्ध नेता श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य मद्रास को ही पूर्ण देश समझते रहे और श्री रंगा और श्री मसानी स्वतन्त्र दल को कांग्रेस की एक शाखा मात्र मानते रहे। जन-संघ पण्डित जवाहरलाल की भाँति अपने को किसानों और मज़दूरों का प्रतिनिधि मानता रहा। सुलह करने के लिए कोई सामान्य आधार नहीं मिल सका।

संयुक्त विधायक दलों की असफलता ने नेहरू दल की प्रतिष्ठा को ऊँचा किया है। इन दलों ने यह सिद्ध कर दिया है कि इनमें कोई भी बुद्धिमान नेता नहीं है। ये बेचारे मुख्य मन्त्री पद के लिए अपने में से कोई योग्य व्यक्ति उपस्थित नहीं कर सके।

अब समस्या का सुझाव यह है कि देश में दो विचारधाराओं का स्पष्टीकरण हो जाये। ये दो विचारधारायें भारत के राजनीतिक चित्र पर सन् १९२६ से विद्यमान हैं। तब जवाहरलाल नेहरू रूस की तीन दिन की सैर कर आये थे और खुले आम कांग्रेस के भीतर और बाहर कम्युनिज्म का प्रचार करने लगे थे। यह वामपंथी विचारधारा थी। दक्षिण-पंथी विचारधारा भी थी। इसके प्रतिनिधि लाला लाजपतराय, मदन मोहन मालवीय, सरदार पटेल, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, बाबू श्री प्रकाश, श्री पुरुषोत्तम दास जी टण्डन तो कांग्रेस के भीतर थे और श्री सावरकर, भाई परमानन्द, डाक्टर श्यामा

प्रसाद मुखर्जी कांग्रेस के बाहर थे। महात्मा गांधी स्वयं क्या थे, कहना कठिन है। वे मुख से तो दक्षिण-पंथी विचारधारा की माला जपते थे, परन्तु अपने कर्मों से वाम-पंथी विचारधारा के पोषक थे।

उस समय भी दक्षिण-पंथी विचारधारा के लोग संगठित नहीं हो सके। जहाँ कांग्रेस के भीतर नेहरू दल के लोग अर्थात् वामपंथी संगठित थे, वहाँ कांग्रेस के भीतर वाले दक्षिण-पंथी मूर्खों की भाँति मुख देखा करते थे।

इसमें एक कारण था। प्रायः सब दक्षिण-पंथी ईमानदार और देश-भक्त थे। उनके मस्तिष्क में यह बात बैठा दी गई थी कि ऐक्य एक महान् गुण है और प्रायः वाम-पंथी गुंडे थे। वे सदा अपने विरुद्ध किसी भी गतिविधि को देख, देश का ही अहित करने पर उतारू हो जाते थे। दक्षिण-पंथी देश में ऐक्य के नाम पर वाम-पंथियों को सिर पर बैठाने के लिए उद्यत हो जाते थे।

स्वराज्य के उपरान्त नेहरू दल से असन्तुष्ट होने वाले दोनों प्रकार के लोग थे। वाम-पंथी और दक्षिण-पंथी भी। इस समय भी नेहरू दल में दोनों विचार के लोग हैं। दक्षिण-पंथी भी और वाम-पंथी भी। परन्तु नेहरू स्वयं वाम-पंथी होते हुए अपने दल से दक्षिण-पंथियों की छटनी करते गये। सन् १९६७ में कांग्रेस के दक्षिण-पंथी वाम-पंथियों के दक्षिण छोर को पकड़े हुए जीवित थे। अतः नेहरू दल एक दक्षिण-पंथी दल है।

हमारा सुझाव है कि दक्षिण-पंथियों को अपनी स्थिति को स्पष्ट करना चाहिए। दक्षिण पंथ क्या है यह इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—

(१) हिन्दू, भारतीय, राष्ट्रीय और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के उपासक। हम समझते हैं कि ये शब्द पर्यायवाचक हैं। इसको स्पष्ट करना चाहिए।

२. (अ) देश में केवल नौकरी पेशा, मज़दूर, प्रोलिटेरिएट, दास लोग ही नहीं बसते। इस श्रेणी में वे सब लोग आते हैं जो अपनी जीविका उपार्जन के लिए किसी व्यक्ति, किसी कम्पनी, सरकारी विभाग अथवा किसी मज़हबी संस्थान की नौकरी करते हैं।

(ब) देश में स्वतन्त्र रह कर अपने परिश्रम और उद्योग के बल पर जीवन-यापन करने वाले भी रहते हैं।

(स) देश में एक ऐसी श्रेणी भी रहती है जो बुद्धि जीवी है। इनको ब्राह्मण प्रवृत्ति अर्थात् (Intelligencia) कहते हैं। ये स्वतन्त्र रहना चाहते हैं। जो दूसरे की सेवा करता है वह न तो ब्राह्मण रह जाता है, न बुद्धि जीवी। उसकी बुद्धि बिकी हुई होती है।

(शेष पृष्ठ ३७ पर)

चीन का मुखड़ा—माओ के बाद

डिक विल्सन

(पंचशील को कम्युनिज्म की कठोर शिला पर पटक कर निश्शेष करने वाले चीन और उसके अधिनायक माओ तथा भारतीय कम्युनिस्टों की देश-द्रोहिता से सम्बन्धित सरदार पटेल का प्रेरणा दायक पत्र इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित है। चीन की आन्तरिक गतिविधियों से सम्बन्धित प्रस्तुत लेख सहयोगी 'नवनीत' से साभार उद्धृत किया जा रहा है।) —सम्पादक

माओ विरोधियों पर जो आक्षेप लगाये जाते हैं, उन्हें ध्यान से पढ़ने पर ऐसा लगता है, जैसे वह किसी दल के नीति-विषयक घोषणा-पत्र का खण्डन हो। इस नीति का सार यह है कि माओ के कट्टर सैद्धान्तिक मार्क्सवाद के स्थान पर व्यावहारिक दृष्टि अपनाई जाय और सोवियत रूस से सहयोग किया जाय ताकि उस देश को आर्थिक और सैनिक सहायता प्राप्त होती रहे। माओ के समर्थक माओ विरोधियों पर खुल्लम खुल्ला आक्षेप लगा रहे हैं कि वे रूस से मिले हुए हैं।

पश्चिम के अनेक राजनेताओं का विश्वास है कि सांस्कृतिक क्रान्ति का बीज १९५९ में इस कारण पड़ा कि तत्कालीन सेनाध्यक्ष ने (जो अब पदच्युत किये जा चुके हैं) माओ को अपने जनरलों का यह विचार ज्यों-का त्यों पहुँचा दिया था कि साम्यवादी चीन की अपार धन-साधन राशि खर्च करके सैनिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की अपेक्षा रूस के आणविक संरक्षण में रहना चाहिए।

इसी सेनाध्यक्ष ने पदच्युत होने से पहले, अपने एक लेख में वियतनाम के समझौते के लिये कुछ ऐसी शर्तों का उल्लेख किया था जो पीकिंग की नीति से मेल नहीं खाती थीं।

ल्यू पर एक आरोप यह भी है कि वे पर्याप्त रूप से अमरीका विरोधी नहीं हैं। ल्यू ने कहा था कि यदि अमरीका फारमोसा से हट जाये, तो चीनी-अमरीकी संघर्ष समाप्त हो सकेगा। माओवादियों की नजरों में यह बात अन्तर्राष्टीय मार्क्सवाद को बलिदान कर देने के समान है। ल्यू ने समाजवाद

के लिए "जनतान्त्रिक मार्ग" को उचित ठहराया था और यह सिफारिश की थी कि चीन विदेशों में क्रान्ति के आन्दोलनों के लिये पैसा बहाने में कमी करे।

माओ विरोधियों पर यह आरोप भी लगाया जाता है कि वे चीन के अन्दर अल्पसंख्यकों के पृथक राष्ट्रीयता के दावे तथा प्रादेशिक आन्तरिक स्वराज्य की माँग को उकसा रहे हैं। मंगोलिया का मुखिया उलानफ पहले कम्युनिस्ट पार्टी के हाथ में कठपुतली था, परन्तु अब वह कहने लगा है कि जो चीनी मंगोलिया में बसाये गये हैं, उन्हें सम्भालना मंगोलों के वर्ग सघर्ष के निपटाने से कहीं ज्यादा कठिन है। शेचुआन और दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र के भूतपूर्व अध्यक्ष ल्यू-चाञ्-जुआन पर यह आरोप है कि वे देश के अल्पसंख्यकों के प्रति नेहरू की नीति अपनाना चाहते हैं तथा केन्द्र को अपने प्रदेश का अनाज एवं अन्य उत्पादन नहीं देना चाहते।

यह ध्यान रखने योग्य है कि माओवादियों को जो भी सफलता मिली है, वह उन्हीं क्षेत्रों में मिली है जिनमें अनाज का उत्पादनअ पर्याप्त है और जो अनाज की पूर्ति के लिये केन्द्र पर निर्भर हैं। इसी तरह माओवादियों को सबसे अधिक कठिनाइयाँ उन्हीं क्षेत्रों में उठानी पड़ रही हैं जिनमें अनाज का उत्पादन अपनी आवश्यकता से अधिक है।

सबसे तीव्र मतभेद आर्थिक नीति के विषय में है। माओ विरोधी मानसिक जागरण की अपेक्षा आर्थिक प्रगति पर अधिक जोर देते हैं। कैंटन क्षेत्र के भूतपूर्व अध्यक्ष ताओ चू ने कहा था—"कम्युनिज्म का तात्पर्य यह है कि हर साधन को तेजी से औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने में लगाया जाय।" चिङ्-चुआन ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा था—"राजनीति को प्रधानता नहीं। प्रधानता देनी होगी उर्वरक को। उर्वरक समस्यायें हल करते हैं।"

"आगे छलाँग" कार्यक्रम की असफलता के बाद (ल्यू के मतानुसार इस असफलता में ७० प्रतिशत हाथ मनुष्य का था और केवल ३० प्रतिशत प्रकृति का) पार्टी में बहुमत सामूहिक खेती का परित्याग करने के पक्ष में था। कहते हैं कि ल्यू ने सामूहिक खेती की बहुत कटु आलोचना कर आग्रह किया था कि किसानों को व्याज पर धन उधार लेने और देने की, उपकरण किराये पर प्राप्त करने की, तथा व्यापार करने की स्वतन्त्रता रहनी चाहिए।

कुछ अन्य विरोधियों के साथ उन्होंने माँग की थी कि निजी खेती की भूमि का विस्तार होना चाहिये तथा उपज की बिक्री बेरोक होनी चाहिए। १९६२ में एक प्रान्त की सामूहिक खेती की अपेक्षा निजी खेती से खाद्यान्न की अधिक पैदावार हुई थी। १९६४ में शेचुआन और क्वाइचाउ प्रान्तों में

सामूहिक की अपेक्षा निजी खेती अधिक हुई। क्वांग तुंग प्रान्त में ताओ चू ने सामूहिक भूमि को कार्यक्षमता के आधार पर परिवारोंमें बांट कर प्रयोग किया था। ल्यू ने ऐसा ही प्रयोग शांघाई में किया था। शाँतुंग प्रान्त में एक मुक्त बाजार भी रखा गया था। ये प्रयोग ऐसी व्यवस्था के प्रारम्भिक पग थे जो निजी उत्पादन के लाभों को स्वीकार कर के खेती का सारा काम हानि और लाभ की पूरी जिम्मेदारी के साथ किसानों के हाथ में दे दे।

माओ-विरोधियों का मत था कि उद्योगों को भी उत्पादन का एक निश्चय कोटा पूरा कर लेने के बाद पूंजी लगाने, विस्तार करने, उत्पादन बढ़ाने तथा व्यापार करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। शांघाई और सेचूआन में इसके प्रयोग भी किये गये। आर्थिक विभागों को राजनीतिक विभागों पर प्रमुखता देने, तकनीकी विश्वास करने, मजदूरों को प्रवन्ध व्यवस्था से अलग रखने तथा व्यवस्थापक एवं तकनीकी कर्मचारियों को अधिक वेतन देने की भी माँगें रखीं गई थीं।

इन सब बातों को स्वीकार करना किसी न किसी सीमा तक पूंजीवाद को अँगीकार करने के समान है। ल्यू ने १९५९ में चीन के एक कपड़ा उद्योगपति से कहा था—"तुम जितने ही ज्यादा कारखाने खोलो और मजदूरों का शोषण करो, उतना ही अच्छा। पुंजीपतियों के शोषण ने ऐतिहासिक सेवा की है और कोई भी कम्युनिस्ट पूंजीपतियों की सेवाओं को मिटा नहीं सकता। निश्चय ही उन्होंने अपराध भी किया है। लेकिन सेवा महान् की है और अपराध छोटा। आज चीन में पूंजीवाद किशोरावस्था में है. और उसके ऐतिहासिक कार्य को विकसित करने का यही समय है।"

तात्पर्य यह कि समाजवाद का समय तब आता है, जब माल पक कर तैयार हो जाय। इसमें भी सन्देह नहीं कि चीन में पूंजीवाद जीवित है। वहाँ कई कारखाने निजी लाभ कमाने के लिये माओ के बिल्ले बनाते हैं। गैरकानूनी काम धन्धे भी चलते हैं,जो कम्युनिस्ट अधिकारियों की नाक के नीचे मजदूर भाड़े पर लेते हैं। यहाँ तक कि सोने का सट्टा भी होता है। स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों के विषय में भी माओ विरोधियों का रुख नर्म है। माओवादी ल्यू के इस कथन को लज्जाजनक मानते हैं कि समाजवादी समाज में भी प्रेम अनिवार्य है।

यह माओ-विरोधियों की नीति का घोषणा-पत्र नहीं है। किसी संगठित राजनीतिक दल ने इसे तैयार नहीं किया है। परन्तु माओ के हटाने के बाद सम्भवतया ये विचार जोर पकड़ेंगे और कोई इन्हें दबा नहीं सकेगा। यही शायद चीन का नया चेहरा होगा। ●

समाचार समीक्षा

○

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी :

केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के प्रयत्न से उन्नीस सितम्बर को देशव्यापी हड़ताल का आयोजन किया गया। हड़ताल की सफलता अथवा विफलता सर्वविदित है, अत: उस पर अधिक लिखना प्रयोजनीय नहीं।

इसमें सन्देह नहीं महंगाई निरंतर इस प्रकार बढ़ती जा रही है जिस प्रकार रावण के दरबार में हनुमान की पूंछ बढ़ती ही चली गई थी। उसका परिणाम निकला था लंका का दहन। आज हमारे देश की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की बनती जा रही है। जन-जन में त्राहि-त्राहि मची हुई है। किन्तु किसी समस्या का समाधान हड़ताल नहीं मानी जा सकती और न ही यह व्यावहारिकरूपेण सिद्ध हो पाया है। हड़ताल से स्थिति बिगड़ी ही है सुधरी नहीं। सरकारी कर्मचारियों ने हड़ताल के अपने अधिकार को पेशा ही बना लिया है। स्वातन्त्र्योत्तरकाल में इस देश के कर्मचारियों ने जितने आन्दोलन किये हैं वे संसार के इतिहास में उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। भारत का सरकारी कर्मचारी अपने कर्तव्य पालन में कितना निष्क्रिय एवं अकर्मण्य रहा है, यह उदाहरण भी उसका अनुपमेय ही है। अत: जनसाधारण की इस हड़ताल के प्रति विशेष सहानुभूति न होना स्वाभाविक है।

हड़ताल को निष्क्रिय और निष्फल करने के लिए सरकार ने जो सावधानी का पग उठाया, वह पर्याप्त कठोर था। किन्तु चुनौतियों के समय सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि जनहित विरोधी प्रत्येक आशंका के उन्मूलन की प्रतीति वह जनता को दे। वैसे हड़तालों का औचित्य भी, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, वहीं तक बेदाग है जहां तक कि वे लोकसहानुभूति से विच्छिन्न न हो जावें।

उचित तो यही होता कि हड़ताल की अपेक्षा सार्वजनिक हित का ध्यान रखते हुए, महंगाई को कम करने के उपाय पर विचार-विमर्श होता। आवश्यकता होती तो उसके लिए आन्दोलन भी किया जा सकता था। बहती गंगा में स्नान कर स्वयं को सन्त सिद्ध करने वाले सभी राजनैतिक दल उस स्थिति में भी अपने स्वार्थ-साधन का अवसर पा ही सकते थे। जाने अथवा

अनजाने कम्युनिज्म एवं कम्युनिस्टों के हाथ की कठपुतली बन कर किस दल अथवा विभाग विशेष के सरकारी कर्मचारियों को क्या लाभ हुआ है, यह तो उनके अपने विचार करने की बात है। इन पंक्तियों के लिखे जाने तक तो सर्वत्र हानि और हा-हाकार कर्णगोचर हो रहा है।

इस हड़ताल ने एक और समस्या को फिर से सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है। इस देश के ही एक प्रदेश केरल ने, जहाँ कम्युनिस्ट-बहुल शासन है, केन्द्रीय अध्यादेश को मानने से इन्कार कर दिया और उसने हड़तालियों का समग्र रूपेण समर्थन किया है। इस प्रकार एक ऐसी विकट और विषम स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसका निबटारा यदि शीघ्र न किया गया तो इससे मिलते-जुलते अनेक अवसरों पर ऐसे अन्य राज्यों में भी केन्द्रीय अध्यादेश और आदेशों के विरुद्ध एक मोर्चा बन सकता है। केरल का रुख स्पष्ट ही नकारात्मक और विध्वसक था, उसे रचनात्मक नहीं कहा जा सकता, तथा उन सभी लोकतन्त्र-वादियों को सोचना पड़ेगा कि कब तक उन दलों और व्यक्तियों को छूट दी जा सकती है, जो ऐसी क्रान्ति लाना चाहते हैं, जिसमें लोकतन्त्र और संसदीय प्रणाली डूब जावेगी। केवल अध्यादेशों से इसका सामना नहीं किया जा सकता। इसके लिए सरकार को जनता में विश्वास उत्पन्न करना होगा।

सुकर्णप्रिय आकाशवाणी

आकाशवाणी के तत्त्वाधान में प्रसारित विविध भारती कार्यक्रम के श्रोताओं को विदित होगा कि प्रातःकाल पौने आठ बजे इस कार्यक्रम के अन्तर्गत "जीवन ज्योति कथा" प्रसारित की जाती है। इसका उद्देश्य तो कदाचित् यही होगा कि श्रोता इससे जीवन के लिए कुछ प्रेरणा का पाथेय प्राप्त कर सकें। कार्यक्रम की महत्ता पर न किसी को आपत्ति हो सकती है और न सन्देह। किन्तु राम, कृष्ण, वशिष्ठ, विश्वामित्र, व्यास, कपिल, कणाद, गौतम, महावीर प्रभृति पुरुषोत्तम, महर्षि, मुनि, योगी, तीर्थंकर, और तुलसी, सूर, मीरा, कबीर, चैतन्य, त्यागराज, कम्मन प्रभृति सन्त, महन्त, भक्त सदृश दिव्यात्मायें जिस पावन पृथ्वी पर प्रेरणा प्रसून के रूप में शिरोधार्य हों उसी पावन पृथ्वी पर आकाशवाणी से इण्डोनेशिया के पथच्युत् एवं पदच्युत् सुकर्ण को जब प्रेरणा स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो मनको सहसा आभास होता है—और साथ ही साथ आघात भी पहुँचता है—कि यह मही महर्षियों एवं मुनिकों की मही न रह कर, मार्क्स एवं माओ की मही-मात्र रह गई है। निश्चित ही इस उपलब्धि के लिए समाजवाद के मूल प्रेरक और भारत-भू में

इसके प्रसारक बधाई (?) के पात्र हैं।

क्या आश्चर्य कि आकाशवाणी के आकाशाचारी अधिकारी, कर्मचारी और कलाकार कल हमारे सम्मुख माओ और चाऊ तथा मार्क्स को प्रेरणा-प्रदायक के रूप में प्रस्तुत कर दें। यह इस लिए भी असम्भव नहीं, क्योंकि कि औरंगज़ेब और अकबर को राष्ट्रपुरुष तथा शिवाजी एवं प्रताप को पहाड़ी चूहा और पथभ्रान्त की संज्ञा देने वाले व्यक्ति को इस देश के वर्तमान कर्णधारों ने युग स्रष्टा, युगपुरुष प्रवर्तक और भी न जाने किन-किन अगणित विशेषणों से विभूषित किया है।

भारत-पाक सीमा पर नापाक हलचल

एक ओर जहाँ इस्लामाद में कच्छ के रन क्षेत्र में सीमानिर्धारण की कार्यविधि पर भारत और पाकिस्तान के अधिकारियों में वार्त्तालाप के दौर चल रहे हैं तथा कार्यविधि रूप में अंकित शब्दों की स्याही सूख भी न पाई कि यहाँ विश्वस्तसूत्रों से यह ज्ञात हुआ है कि पाकिस्तान ने कश्मीर से कच्छ के रन तक की भारत-पाक सीमा में सैनिक और अर्द्ध-सैनिक गतिविधियों में वृद्धि कर दी है। पाकिस्तान सरकार कश्मीर, पंजाब, और से सीमा से सटे अन्य भारतीय प्रदेशों में तोड़-फोड़ के लिए जासूस भी भेज रहा है। उनमें से काफी लोगों को भारतीय प्रदेशों में सेना ने बन्दी भी बना लिया है। भारतीय अधिकारियों को इस बात की पूरी-पूरी जानकारी मिल गई है कि पाकिस्तान, सीमा के दूसरी ओर क्या-क्या तैयारी कर रहा है। यह भी विदित हुआ है कि पाकिस्तान ने जो जासूस भेजे हैं और उनमें से जो पकड़े गये हैं, बहुत से लोग हिन्दू और सिक्ख बने हुये थे। वे वेद, गीता और अन्य अनेकों ग्रन्थों की पर्याप्त जानकारी रखते हैं। इतना ही नहीं, वे धाराप्रवाह हिन्दी और संस्कृत भी बोल सकते हैं। कई जासूस तो ज्योतिषियों के रूप में भी पकड़े गये हैं। यह भी पता चला है कि पाकिस्तान में बड़ी संख्या में युवतियों को जासूसी का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

आये दिन प्रसारित होने वाले इन समाचारों के परिपेक्ष्य में हमारी सरकार क्या कर रही है, उसका यदि खुलासा नहीं तो तनिक आभास भारतवासियों को मिलना ही चाहिए जिससे कुछ सान्त्वना मिले।

हिंदी साहित्य सम्मेलन, देशहित और हिंदी प्रेम

कुछ मास पूर्व यह समाचार पढ़कर कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रयागस्थ मुद्रणालय में भारत विरोधी चीनी साहित्य प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुआ है, देशवासियों को जहाँ एक ओर आश्चर्य हुआ, वहाँ दुःख भी बहुत हुआ।

वर्तमान युग के दधीचि राजर्षि टण्डन द्वारा पोषित पालित संस्था द्वारा देश भक्ति की पीठ पर पदाघात सदृश इस जघन्यकृत्य की किन शब्दों में निन्दा की जाय। क्या इसी दिन के लिए उस राजर्षि ने अपने रक्त का कण-कण इस संस्था के लिए होम दिया था ? किन्तु नपुंसकों के इस देश में साहित्य सम्मेलन के वे कर्मचारी जिन्होंने वह जघन्यकृत सम्पन्न किया, राजधानी की यात्रा से पवित्र होकर प्रयाग में प्रवाहमान त्रिपथगा को विपथगा सिद्ध करते हुए आज भी शान से अपने 'कर्तव्य' पथ पर अग्रसर हैं।

यह तो हुआ सम्मेलन द्वारा 'देश हित' साधन।

सम्मेलन के वर्तमान अध्यक्ष सेठ गोविन्द दास काँग्रेस के वरिष्ठ सदस्यों में से हैं। काँग्रेससियों के साथ हिन्दी के पक्षपाती होने के नाते देश के कुछ अन्य जनों के मन में भी उनके प्रति सम्मान विद्यमान था। कुछ दिन पूर्व यह भी समाचार पढ़ा था कि सेठ जी ने किसी कार्यक्रम का इसलिए बहिष्कार कर दिया क्यों कि उसका निमन्त्रण पत्र अग्रेजी में छपा था। इसमें समाचार से उनके श्रद्धालुओं के मन में उनके प्रति सम्मान में वृद्धि ही हुई होगी।

उन्हीं सेठ जी ने "गाँधी युग पुराण" नाम से एक पोथा लिखा है। उस पोथे में क्या लिखा है, इस समय यह हमारा विवेच्य विषय नहीं है। उस पर अगले किन्हीं अंकों में टिप्पणी की जावेगी। इस प्रसंग में उल्लेखनीय यह है कि सेठ जी ने उस पोथे का जब ग्रन्थ-विमोचन समारोह किया तो उसके लिए अंग्रेजी में भी निमंत्रण पत्र बंटवाये। और तब उनके निवासस्थान पर आयोजित पत्रकार-सम्मेलन में जब पत्रकारों ने उनके इस अंग्रेजी मोह का कारण जानना चाहा तो उनके मुख से निःसृत हुआ कि उनका अंग्रेजी भाषा से कोई विरोध नहीं और अंग्रेजी जानने वालों की सुविधा के लिए उन्होंने अंग्रेज़ी में निमन्त्रण पत्र छपवाये।

परिणामस्वरूप अंग्रेजी मोहाभिभूत इन कलियुगी व्यास जी के उस ग्रन्थविमोचन समारोह का कतिपय कर्मठ देशभक्तों ने बहिष्कार कर दिया।

यह हुआ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सरकारी अध्यक्ष का हिन्दी प्रेम।

यदि यही हिन्दी साहित्य सम्मेलन का रूप है तो ऐसी संस्था को चिरकाल तक बनाये रखना और वह भी सरकारी संरक्षण में, देश के लिए और राष्ट्र-भाषा के लिए भी घातक होगा। हिन्दी के हित को ध्यान में रखते हुए सेठ जी को अध्यक्षता से अपदस्थ और देशद्रोही सम्मेलन के कर्मचारियों को नौकरी से निलंबित किया जाना नितान्त आवश्यक है। —समीक्षक

आपका पुस्तकालय और हमारा सहयोग

१. हमारी पुस्तकालय योजना के सदस्य बनिये। केवल दो रुपये मनी-आर्डर द्वारा भेजकर आप हमारे सदस्य बन सकते हैं।

२. हमारी नटराज पाकेट बुक्स में से (सूची पृष्ठ २५ पर) आप अपनी पसन्द की १५ रुपये की चुनी हुई पुस्तकें मंगवाइये और हम केवल १३ रुपये में ये पुस्तकें आपको भेजेंगे। डाक व्यय लगभग दो रुपये हम देंगे। इसके साथ ही—

३. एक लोहे की तार का बना हुआ सुन्दर रैक जिसमें आप अपनी पुस्तकें लगा सकते हैं, बिना मूल्य हम अपनी ओर से आपको भेंट में देंगे।

४. प्रति दो मास बाद जब हमारी नयी पुस्तकें प्रकाशित होंगीं, हम आपको सूचना भेजेंगे। तथा आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें सात रुपये में आपको भेजी जायंगी। यदि नवीन प्रकाशनों में से कोई पुस्तक आप नहीं लेना चाहेंगे तो आप उसके स्थान पर कोई अन्य उसी मूल्य की पुस्तक मंगवा सकेंगे।

५. बीच की अवधि में कभी भी आप आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें केवल सात रुपये में मंगवा सकेंगे।

भारती साहित्य सदन,

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

३०।९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे) नई दिल्ली-१
भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं राष्ट्र भारती प्रेस, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनॉट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

नवम्बर १६६८ वर्ष ८—अंक ११ रजि० क्र० ६६८९/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥

ऋ०-१०-१२३-३

विषय सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत संस्कृति परिषद् के प्रकाशन

१— धर्म संस्कृति और राज्य—ले० श्री गुरुदत्त

तीनों विषयों की व्याख्या, इनका परस्पर सम्बन्ध तथा आज के युग की समस्याओं से इनका समन्वय इस पुस्तक का विषय है। अत्यन्त ही सरल भाषा में युक्तियुक्त विवेचना इसकी विशेषता है।

मूल्य आठ रुपये

२—धर्म तथा समाजवाद—ले० श्री गुरुदत्त

समाजवाद की युक्तियुक्त विवेचना, तथा धर्म के साथ इसका 'सम्बन्ध' इस पुस्तक का विषय है। समाजवाद के विषय में बहुत-सी भ्रामक धारणाओं का स्पष्टीकरण इस पुस्तक में है। राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी तथा समाजवाद व धर्म में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए पठनीय ग्रन्थ।

मूल्य सजिल्द पुस्तकालय संस्करण ६ : रुपये
सम्पूर्ण पाकेट ,, ३ : रुपये

३—भारत—गांधी-नेहरू की साया में—ले० श्री गुरुदत्त

'जवाहरलाल नेहरू एक विवेचनात्मक वृत्त' का संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण। यह पुस्तक पिछले एक वर्ष से भारत भर में चर्चा का विषय रही है। नया संशोधित संस्करण नवम्बर १५ तक छप जायगा।

मूल्य सजिल्द पुस्तकालय संस्करण आठ रुपये
सम्पूर्ण पाकेट ,, तीन रुपये

४—श्रीमद्भगवद्गीता—एक अध्ययन—ले० श्री गुरुदत्त

अत्यन्त ही सरल बोधगम्य भाषा में यह अध्ययन एकदम अनुठी रचना है। गीता के विषयों का क्रमवार विस्तृत एवं युक्तियुक्त विश्लेषण।

मूल्य (कपड़े की जिल्द सहित) १५ रुपये

प्राप्ति स्थान

भारती साहित्य सदन

बिक्री विभाग

३०/९० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
पं० भगवद्दत्त
प्रा० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

देश में अव्यवस्था: कारण और निवारण

विगत अंक में हमने देश में व्याप्त अव्यवस्था की मुख्य-मुख्य बातों पर प्रकाश डालने का यत्न किया था। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि देश में अव्यवस्था है। यह भी कहा जाता है कि इस अव्यवस्था के कारण सरकार में मूर्ख लोगों का भरा होना है तथा उनको हटा देने से सब प्रबन्ध ठीक हो जायेगा और फिर देश की गाड़ी भली भाँति चलने लगेगी। इन लोगों का कहना सिद्धान्त रूप में तो ठीक है। अव्यवस्था सदा मूर्खता की ही उपज होती है, परन्तु वे मूर्ख सरकार में ही भरे हुए हैं और अन्य कहीं नहीं, हम यह मानने के लिये तैयार नहीं।

हमारे पास एक पुस्तक समालोचनार्थ आई है। पुस्तक की समालोचना तो समय पर की जायगी। यहाँ पुस्तक के नाम की समालोचना कर देना ठीक प्रतीत होता है। पुस्तक का नाम है मूर्खों के देश में, धूर्तों के राज्य में'। हमारा यह कहना है कि देश की अव्यवस्था इस कारण नहीं कि यहाँ धूर्तों का

राज्य है, वरन् इस कारण है कि यह मूर्खों का देश है ।

हम मानते हैं कि सत्ताधीश दल में मूर्ख भरे पड़े हैं, परन्तु उसका कारण यह है कि सत्ताधीश दल में मूर्खों के भर जाने से पूर्व देश में मूर्ख भरे पड़े थे । यदि देश में मूर्ख भर रहे हैं तो कोई भी दल सत्ता ग्रहण करे, उसमें देश के मूर्ख ही तो आयेंगे और अव्यवस्था दूर नहीं होगी ।

देश में कांग्रेस तो है ही । कांग्रेस ने अपने में से अच्छे से अच्छे लोग छांट कर राज्य कार्य चलाने के लिये आगे लाकर बैठा दिये । कांग्रेस भारत वर्ष की जनता में अति विख्यात एवं अति व्यापक संस्था है । यदि कांग्रेस में अच्छे लोग धूर्त्त हैं अथवा मूर्ख हैं तो वे इस कारण ही हैं कि देश में मूर्ख भरे हुए हैं ।

अतः यदि उन लोगों की बात मान लें जो यह कहते हैं कि कांग्रेस सरकार में मूर्ख भरे हुए हैं, तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि मूर्खों का कांग्रेस में एकत्रीकरण कैसे हो गया ? साथ ही यदि इस मूर्खों के देश में कोई अन्य दल सत्ताधारी बनेगा तो वह क्या उन्ही मूर्खों में से नहीं बनेगा, जो देश में भर रहे हैं ?

भारत की वर्तमान दुरव्यवस्था इस कारण है कि इस देश में मूर्खों की खेती होती है और कोई भी दल सत्ता हथियायेगा, उसमें मूर्खों के अतिरिक्त किसी बुद्धिमान का आ सकना सम्भव नहीं ।

कुछ एक दल अथवा व्यक्ति यह अनुभव तो करते हैं कि भारत में मूर्ख भरे हुए हैं । कदाचित् उक्त पुस्तक का लेखक भी उसी श्रेणी में है । परन्तु कांग्रेस दल और देश के अधिकांश राजनीतिक दल तो यह भी नहीं समझते कि देश में मूर्ख भर रहे हैं और शासन का सुधार एवं अव्यवस्था का निराकरण देश की मूर्खता दूर करने से होगी । वे तो "अन्धेन नीयमाना यथान्धा" अन्धे के पीछे अन्धे की भान्ति अथवा भेड़िया धसान की तरह चले जा रहे हैं । जो एक-आध दल देश में व्याप्त मूर्खता को देखता है, वह भी इस को दूर करने का उपाय नहीं जानता । इस कारण हमारा यह मत है कि देश में व्यवस्था स्थापित करने में वह भी सफल नहीं हो सकेगा ।

देश के विचारशील लोगों के लिये यह विचारणीय है कि देश में व्याप्त मूर्खता दूर हो । बहुत बड़ी संख्या में यहां ऐसे लोग हैं, जो युरोप को बुद्धिमत्ता का स्रोत मान, युरोप की प्रत्येक बात को मान लेने से बुद्धिमत्ता के व्यापक प्रसार की आशा करते हैं ।

पिछले तीन-चार-सौ वर्षों में युरोप के लोग उत्कर्ष को प्राप्त हुए

हैं। उस उत्कर्ष का परिणाम यह हुआ कि भूमण्डल पर उनका साम्राज्य हो गया। उस उत्कर्ष का कुछ कारण था। वह कारण ही वहाँ पर हुई उन्नति अथवा विकार का सूचक है। यह समझ लेना चाहिये कि प्रत्येक उत्कर्ष शुभ का ही सूचक नहीं होता। विकारों का भी उत्कर्ष होता है। अतः इस बात को अभी छोड़ दें कि युरोपियन उत्कर्ष जिसे युरोप का पुनरुत्थान (Renaiscence) कहते हैं, शुभ की ओर है अथवा अशुभ की ओर। इतना तो विचार करना होगा कि उस उत्कर्ष का परिणाम क्या हुआ है?

वर्तमान विज्ञान की उन्नति, वर्तमान अनीश्वरवाद का व्यापक प्रचार और वर्तमान सामाजिक उथल पुथल का प्रलयकारी रूप पुनरुत्थान-रूपी उत्कर्ष का परिणाम है। तनिक इन परिणामों पर विचार करेंगे तो समझ में आ जायेगा कि युरोप की बुद्धिमत्ता अनुकरणीय है अथवा नहीं? उस बुद्धिमत्ता से कहीं मूर्खता में वृद्धि तो नहीं हो जायेगी?

युरोप की बुद्धिमत्ता की एक दिशा विज्ञान है। इसने प्राकृतिक शक्तियों को मनुष्य की सेवा के लिये प्रस्तुत कर दिया है। परन्तु प्रश्न है कि एक इतने बड़े देव (प्रकृति) को सेवा के लिये उपस्थित देख मानव को क्या कम परिश्रम, अधिक शान्ति और सुख तथा भूख, अभाव एवं मृत्यु से निर्भयता मिली है? हमारा तो यह दावा है कि भूख और अभाव का भय पहले से अधिक बढ़ गया है। यदि यह कम होता तो कम परिश्रम से पेट भर कर सुख की नींद सोने वालों की संख्या में वृद्धि होती। किंचित् मात्र भड़काने पर देशव्यापी हड़तालें न होतीं और दनादन युद्ध की सामग्री बनाने के विश्व में सहस्रों कारखाने दिन-रात चल न रहे होते। विज्ञान की उन्नति से रूस जैसे बलशाली देश को चैकोस्लोवाकिया, रूमानियां और अल्बानियां के भय से नाक में दम न होता। एक देश में कुछ ही गुण्डे मिलकर देश की पूर्ण जनता को आतंकित न कर सकते। क्या ऐटम बम के बन जाने से संसार निश्चिन्त हो शान्ति की नींद सोता है? विज्ञान की उन्नति तो हुई, परन्तु इससे सुख और शान्ति में वृद्धि नहीं हुई। डनलोपिलो के गद्दों पर सोने वालों को भूमि पर सोने वालों से कम गहरी नींद आती है। विज्ञान की उन्नति मानवोन्नति, मानव के सुख एवं शान्ति और कल्याण के लिये नहीं।

युरोप की बुद्धिमत्ता की दूसरी दिशा है अनीश्वरवाद। कहते हैं कि विज्ञान इस अनीश्वरवाद का समर्थन करता है परन्तु हमें तो ऐसा दिखाई देता नहीं। क्षण भर के लिये मान भी लें कि विज्ञान अनीश्वरवाद का समर्थन करता है। परन्तु इस अनीश्वरवाद का परिणाम भी तो देखना होगा। परि-

णाम हुआ है हिटलर के "कन्सैन्ट्रेशन कैम्पों" में असंख्य यहूदियों को दोष सिद्ध किये बिना तड़प-तड़प कर मरना; स्टालिन गार्दमें करोड़ों किसानों की हत्या और लाखों का साइबेरिया इत्यादि के 'लेबर कैम्पों में तड़प-तड़प कर मरना। इस अनीश्वरवाद का परिणाम यह हुआ है कि सत्य और न्याय की रक्षा के लिये कोई भी साहस कर खड़ा नहीं हो पाता। बड़े-बड़े राज्य भी भयभीत हो अन्याय को सहन कर लेते हैं। किसी आततायी के विरुद्ध इस कारण मोर्चा नहीं लिया जाता कि युद्ध होगा और सब कुछ विनष्ट हो जायेगा। दो टुकड़े रोटी के लिये बड़े-बड़े विद्वानों को अपना धर्म-ईमान बेचना पड़ता है। तथा इसी प्रकार की अन्य अगणित बातें हैं। निश्चय ही अनीश्वरवाद से भीरुता और अन्याय की वृद्धि हुई है, कमी नहीं। शक्तिशाली और चतुर इसी जीवन में अधिक से अधिक भोग-विलास प्राप्त करना चाहते हैं। बल और धूर्तता ही उनकी समझ में न्याय और धर्म है। ये सब चमत्कार अनीश्वरवाद के हैं। इससे संसार में असन्तोष, अधीरता, छीना-झपटी, धोखा-धड़ी में वृद्धि हुई है। "जिसकी लाठी उस का भैंस" वाली बात न्याययुक्त हो गयी है। इससे आज न शाश्वत धर्म रहे हैं, न न्याय और न सत्य। यह परिस्थिति शुभ की शुचक नहीं है।

युरोप की बुद्धिमत्ता की तीसरी दिशा है सामाजिक व्यवस्था में उथल पुथल। इस उथल-पुथल में प्रथम हत्या हुई है स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की। स्त्री जाति को स्वतन्त्रता प्रदान करने के बहाने पुरुष ने भोग में अबाधता प्राप्त करने का प्रयास किया है। प्राचीन काल में जब स्त्रियाँ वर्तमान युग की भाँति सर्वथा स्वतन्त्र एवं स्वच्छन्द नहीं थीं, भोग-विलास करने वालों को इतनी सुगम्य भी नहीं थीं जितनी कि आज कल के स्त्री-स्वातन्त्र्य के युग में हैं। यदि इसका ज्ञान प्राप्त करना हो तो पैरिस, रोम, लन्दन और अन्य बड़े बड़े नगरों में जेब में कुछ सिक्कों को लेकर सड़कों पर घूम जाइये। वहाँ नाईट क्लब हैं, पार्क हैं, होटल हैं और कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ स्त्री प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई हो। मशीन-युग से पहले किसी राजा-रईस को भी किसी स्त्री को पथच्युत करने के लिये जो छल-प्रपंच करने पड़ते थे, उन सब की आज आवश्यकता नहीं रही। "सर्वे गुणा कांचनमाश्रयन्ति" की भाँति आज तो बस आवश्यकता है जेब में रुपयों की। सब कुछ आपके सम्मुख उपस्थित हो जावेगा।

बात इस सीमा तक पहुँच गयी है कि स्त्रियों के भोग से सन्तुष्ट न हो पुरुष पुरुषों का भोग करने के लिये छूट चाहते हैं। "आर्च बिशप ऑफ़

कैन्टरबरी" पुरुष पुरुष के सम्बन्ध में अवैधानिकता को दूर कराने का प्रचार कर रहे हैं। इस प्रकार के कानूनों की माँग होने लगी है कि समलैंगिक विवाह को वैधानिक घोषित किया जाये। मिस मेरी की पत्नी मिस इरानी होगी और मिस्टर विलियम स्मिथ के पति मिस्टर जोन। क्या युरोप की बुद्धिमत्ता की यह दिशा सुखकारक है।

हमने पिछले अंक में भारत में अव्यवस्था की व्यापकता की उपस्थिति का वर्णन किया था। इस अव्यवस्था का कारण देश में व्यापक मूर्खता है। यदि यह मूर्खता न होती तो श्रमिकों के वर्तमान कानून न होते। हम यह नहीं कहते कि श्रमिक वर्ग की रक्षा और सुविधा में वृद्धि नहीं होनी चाहिए। हम तो यह कहते हैं कि इस प्रयोजन से जो कानून बनाये गये हैं, वे व्यर्थ हैं। इसी प्रकार हमारा यह आशय भी नहीं है कि देश में औद्योगिक उन्नति नहीं होनी चाहिये। हमारा तो यह कहना है कि उद्योग और व्यापार संबंधी कानून जो बन रहे हैं वे गलत और अन्यायपूर्ण हैं।

हम विद्या प्रसार के विपरीत भी नहीं हैं। न ही हम ज्ञान-विज्ञान के विकास के विरुद्ध हैं। हमारा कहना तो यह है कि जो कुछ हमारे विश्व-विद्यालयों में पढ़ाया जा रहा है, वह न विज्ञान है और न ज्ञान ही।

हम प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के विरुद्ध भी नहीं। परन्तु भारत का ससदीय प्रजातन्त्र तो प्रजातन्त्र कहा ही नहीं जा सकता। यह चतुर लोगों का, तानाशाही स्थापित करने का एक ढंग है।

यह सब क्यों हो रहा है ? यह इस कारण कि देश में मूर्खता व्यापक रूप में विद्यमान है और उस मूर्खता को हमारी सरकार इस कारण दूर नहीं कर सकी, क्योंकि मूर्खों की प्रतिनिधि होने से यह स्वयं मूर्खों और महा धर्त्तों से बनी हुई है। धूर्त्त भी बुद्धिमान हो सकता है। धूर्त्त ऐसी स्थिति बनाना चाहता है जिससे कि दूसरे तो धूर्त्त न बनें और उसकी धूर्त्तता छिपी रह सके। परन्तु वर्तमान धूर्त सरकार तो मूर्ख भी है। इस कारण हमारी सरकार धूर्तता तो करती है, परन्तु नंगी होकर। और फिर अपने जैसे धूर्त और मूर्ख निर्माण करने के लिये देश में असंख्य विश्व-विद्यालय खोल रखे हैं।

देश में अव्यवस्था है। कारण यह कि मूर्खता व्यापक रूप में विद्यमान है। मूर्खता बढ़ रही है। वह इस कारण कि मूर्ख निर्माण करने के कारखाने अर्थात् विश्व-विद्यालय जोरों से काम कर रहे हैं।

इस लेख-शृंखला की अन्तिम कड़ी में हम यह बताने का यत्न करेंगे कि मूर्खता-निवारण का श्रीगणेश कहाँ से और किस प्रकार किया जाये।

ब्रह्मवाद की स्थापना

श्री गुरुदत्त

○

आर्य ब्रह्मवादी थे। वे परमात्मा को मानते थे। यूरोपियन इतिहासकार मानते हैं कि प्राचीन आर्य प्राकृतिक घटनाओं, बिजली, पानी, वर्षा, उल्कापात, भूचाल इत्यादि को देखकर भयभीत हो पहले इन प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करने लगे थे और पीछे उन प्राकृतिक शक्तियों का संचालन करने वाले की कल्पना कर उसका नाम परमात्मा रख कर उसकी पूजा में लग गये।

ऐसा है नहीं। भारतीय परम्पराओं के अनुसार पृथ्वी पर प्रथम-सृष्टि अति बुद्धिशील मनुष्यों की हुई थी। उस मानव-सृष्टि को परमात्मा द्वारा वेद ज्ञान मिला था। उस वेद ज्ञान में यह प्रकट किया गया है कि इस जगत की रचना करने वाला अति महान शक्ति का स्वामी परमात्मा है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥ ३॥

(ऋ:०-१०-८१-३)

इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि वह परमेश्वर (विश्वतः चक्षुः) पूर्ण विश्व को देखने वाला (उत) और विश्वतः मुखः) सर्वत्र मुख वाला है। अभिप्राय यह कि पूर्ण विश्व उसका ही उपदेश करता है। (विश्वतः बाहुः) पूर्ण विश्व के कार्य उसके बाहुबल से होते हैं, (विश्वतः पातः) पूर्ण विश्व ही उसके पाँव हैं। अभिप्राय यह कि विश्व चलता है उसी के पाँव पर। (एकः देवः) वह एक है, अद्वितीय दिव्य गुणों वाला है। (बाहुभ्यां) अपने दोनों हाथों से (द्यावा भूमी) अन्तरिक्ष और भूमि (जनयन्) उत्पन्न करता है। (सं धमति सं पतत्रैः) सम्पूर्ण जगत् को पक्षी के समान चलाता है।

हमारा यह कहना है कि यदि सृष्टि के प्रारम्भ से ही आर्य लोग यह मानते थे कि इस जगत् के रचने वाला, इसको चलाने और पालन करने वाला एक अति बलवान, सर्वव्यापक, अति ज्ञानवान परमात्मा है तो

विदेशियों का यह लाँछन गलत है कि वे प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थे।

आर्य और वेद निन्दक कहते हैं कि वेद बनने से पहले मनुष्य भीरु था और डरता था। इसी कारण वह देवी-देवताओं की पूजा करता था। इसका कोई प्रमाण नहीं। यह कल्पना मात्र है।

उपर्युक्त उदाहरण परमात्मा के विषय में वेद में से दिया गया है। इस प्रकार अन्य अनेकों ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिससे कि यह सिद्ध होता है कि आदि मनुष्य (आर्य) परमात्मा को मानते थे।

विपक्षी कहते हैं कि वेद में इन्द्र, वरुण इत्यादि को भी परमात्मा माना है। यह ठीक है। परन्तु इन्द्र, वरुण इत्यादि भी परमात्मा के नाम ही हैं। परमात्मा अनेकानेक गुणों का स्वामी होने से अनेकानेक नाम वाला एक ही है। वेद का एक अन्य मंत्र है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातारिश्वानमाहुः ॥४६॥
(ऋ०-१-१६४-४६)

इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि इत्यादि उस दिव्य महान आत्मा को ही कहते हैं। विद्वान लोग उस परमात्मा को कई प्रकार से वर्णन करते हैं। यम, अग्नि, मातरिश्वा भी उसी को कहा जाता है।

अतः यह सिद्ध करना कठिन नहीं कि वेद में एक सर्वव्यापक, सर्व शक्तिमान परमात्मा को स्मरण किया है। मूर्ख अथवा धूर्त यूरोपियन लेखक ही अर्थ के अनर्थ करते हुए कहते हैं कि भयभीत आर्यों द्वारा प्राकृतिक शक्तियों की पूजा की बात वेदों में लिखी है।

परन्तु आर्य विद्वानों ने केवल इतने पर ही सन्तोष नहीं किया कि वे वेद मन्त्रों में बता दें कि परमात्मा का होना वहाँ लिखा है। वे जानते थे कि ऐसे बुद्धि के कोहलू उत्पन्न होने वाले हैं जो यह कहेंगे कि वेद में लिखे को वे नहीं मानते। संसार भर के लोग तो वैदिक परम्पराओं में पले नहीं। इस कारण उनको सत्य ज्ञान कराने के लिए दर्शन शास्त्र लिखे गये। उन दर्शन शास्त्रों में ब्रह्म के निरूपण के लिए महर्षि बादरायण द्वारा लिखे ब्रह्म सूत्रों में जिनको भ्रम से वेदान्त दर्शन भी कहा जाता है, लिख दिया।

महर्षि बादरायण ने ब्रह्म के विचार की स्थापना युक्ति से भी की है। कई युक्तियाँ दी हैं। उदाहरण के रूप में लिखा है, 'जन्माद्यस्त यतः॥ (ब्र० सूत्र) १-१-२ ॥ अर्थात् जिससे जगत की उत्पत्ति हुई, वह

परमात्मा है ।

इसी प्रकार—शास्त्रयोनित्वात् ॥१-१-३ ॥ वह (ब्र० सू०)

अर्थात् जिसने शास्त्र (वेदों) को जन्म दिया, वह परमात्मा है।

और भी लिखा है—तत्तु समन्वयात् (ब्र०सू०-१-१-४)

अर्थात् जिसके करने से तत्वों के समन्वय होकर अनेकानेक पदार्थ बने ।

परन्तु आज हम महर्षि की सबसे प्रबल युक्ति जिससे उन्होंने परमात्मा की सत्ता का निरूपण किया है, लिखना चाहते हैं । वह इस प्रकार है—

ईक्षतेर्नाशब्दम् ॥ (ब्र० सू०-१-१-५)

इसका अन्वय है । ईक्षतेः-न- अशब्दम् । ईक्षण करने से वह अप्रमाणित नहीं है । अर्थात सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि परमात्मा ईक्षण करता है ।

ईक्षण के अर्थ हैं प्रारम्भिक प्रेरणा । इसको अंग्रेजी में (Intelligent initiative) कहते हैं । इसे ही ज्ञानपूर्ण प्रेरणा का नाम दिया जाता है ।

नास्तिक अर्थात् अनीश्वरवादी कहते हैं कि प्रकृति स्वयं ही अपने धर्म से बनती-बिगड़ती है । यह अयुक्तिसंगत एवं असिद्ध वक्तव्य है । अयुक्तिसंगत इस कारण है कि प्रकृति जड़ है । उसमें चेतना नहीं है । कोई जड़ पदार्थ ईक्षण (किसी कार्य के आरम्भ करने की प्रेरणा) नहीं दे सकता । संसार में कोई भी पदार्थ नहीं, जिसमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन किसी चेतन के प्रयत्न के बिना, कुछ भी हो सके । कोई वस्तु जहाँ रख दो, वैसी ही वहाँ पड़ी रहती है । वह हिल-डुल नहीं सकती । उसमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन नहीं हो सकता ।

अर्थात् जड़ पदार्थों में गति लाने के लिए अथवा उनमें परिवर्तन करने के लिए चेतन के प्रयास की आवश्यकता देखी जाती है । सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि का निर्माण करने और उनको गतिशील करने के लिए किसी महान् शक्ति की आवश्यकता है । उसे ही परमात्मा कहते हैं ।

महर्षि बादरायण कहते हैं कि ईक्षण होने से वह (ब्रह्म) अप्रमाणित नहीं है ।

यह विज्ञान के विद्वान मानते हैं कि जो कुछ अचल, है वह चलायमान नहीं हो सकता और जो कुछ चल रहा है वह चलता-चलता ठहर नहीं सकता, जब तक कि कोई अचल को चलायमान करने वाला अथवा चलायमान को रोकने वाला न हो । सृष्टि के आरम्भ में कौन था, जिसने प्रकृति में यह चलायमान् स्थिति उत्पन्न की ? वह परमात्मा (ब्रह्म) है ।

हमने बताया है कि ईक्षण का अर्थ अंग्रेजी के शब्द "इन्टैलिजैन्ट इनीशिएटिव" से प्रकट होता है। जगत् का आरम्भ करने के लिये जिसने "इनीशिएटिव" लिया (प्रारम्भिक कल्पना अथवा कार्य किया) वह परमात्मा ही है।

सृष्टि बनी है। इस कारण इसके बनाने वाला कोई है। यह चल रही है। अतः इसको चालना देने वाला कोई है।

ब्रह्म सूत्र के टीकाकार इस तथा अन्य अनेक सूत्रों के प्रयोजन को न समझते हुए एक भ्रम में फँस गये हैं। उन्होंने सूत्र का अर्थ समझने के लिये उपनिषदादि से उद्धरणों को देना आरम्भ कर दिया। उदाहरण के रूप में एक टीकाकार लिखते हैं कि ऐतरेय उपनिषद् में कहा है—

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत् स ईक्षत
लोकान्नु सृजा इति ॥ १-१-१॥

(आत्मा ने ईक्षण किया और लोकों की सृष्टि बनी। यह कथन तो ठीक है। परन्तु यह सूत्र के अर्थ को प्रकट नहीं करता, वरंच सूत्र इसके अर्थों को प्रकट करता है। अर्थात् जहाँ-जहाँ ईक्षण शब्द आया है वहाँ सृष्टि आरम्भ करने के लिये जो कार्य किया, वह अभिप्रेत है। इससे परमात्मा की उपस्थिति प्रमाणित होती है।

ईक्षण के अर्थ ज्ञान पूर्ण प्रेरणा के हैं। इस जगत् रचना के समय यही हुआ था। इस कारण किसी ज्ञानवान्, महान् प्रेरणात्मक शक्ति की उपस्थिति को मानना पड़ता है। वह ही परमात्मा है।

स्वामी शंकराचार्य प्रभृति कुछ भाष्यकारों ने एक अन्य भ्रान्त बात भी की है। उन्होंने इस सूत्र के अर्थ इस प्रकार किये हैं:—

ईक्षतेः=श्रुति में "ईक्ष" धातु का प्रयोग होने के कारण; अशब्दम्=शब्द=प्रमाण-शून्य प्रधान (त्रिगुणात्मिका जड़ प्रकृति); न=जगत् का कारण नहीं है।

तनिक ध्यान से पढ़ने पर यहाँ खींचातानी की गयी स्पष्ट हो जाती है। न अशब्दम्=शब्द है अर्थात् प्रमाण है। दो नकार एक हुँकारात्मक अर्थ देते हैं। परन्तु प्रधान बीच में कहाँ से टपक पड़ा?

अशब्दम् के अर्थ में खींचातानी की गयी है। यह बताने के लिए कि प्रकृति नाम का कोई पदार्थ नहीं। अशब्दम् के अर्थ शून्य कर दिया और न के साथ प्रधान अपने पास से लगा दिया। अर्थ प्रधान के नहीं हैं। यह श्री स्वामी शंकराचार्य की शैली है अपने मन-गढ़न्त शब्द लगा अर्थों में घुसेड़ कर बे अर्थ

को विकृत कर देते हैं।

शब्द प्रमाण है। यह सर्वविदित है। इसका अर्थ है कि वेद शास्त्र भी प्रमाण की श्रेणी में आते हैं। अशब्दम् का अर्थ है "अप्रमाण"। इतनी सी सरल बात को तोड़-मरोड़ कर बीच में से प्रकृति को लाने का यत्न किया गया है। साथ ही "अ" का अर्थ शून्य कर दिया है।

स्पष्ट सरल अर्थ वही हैं जो हमने आरम्भ में किये हैं। ब्रह्मवाद की स्थापना के लिये यह युक्ति दी गयी है कि ईक्षण होता है। अर्थात् निश्चल में गति उत्पन्न होती है। ऐसा किसी ज्ञानवान्, चेतन शक्ति के बिना हो नहीं सकता। इस कारण ब्रह्म प्रमाणित है।

प्राचीन आर्य ब्रह्मवादी थे। उनकी पूर्ण मीमाँसा ब्रह्म की उपस्थिति पर आधारित है। संसार के दो महान् वर्गों में मूल अन्तर यही है। ये दो वर्ग हैं। ब्रह्मवादी और अनात्मवादी। ब्रह्मवादी आत्म तत्त्व की उपस्थिति मानते हैं, जिससे जगत् की रचना, जगत् का चलन और जगत् का विनाश होता है।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ (भ०-गी०—८। १९)

पृष्ठ १५ का शेषांश

बनवाने की होती थी ? जब उनके मकबरे की उनके रहने के महलों से तुलना की जाती है तो महलों से मकबरे अधिक सुन्दर बने मिलते हैं।

मैंने अपनी पुस्तक 'ताज महल एक हिन्दू महल है' में यह भली भाँति स्पष्ट कर दिया है कि यह सिद्ध नहीं होता कि ताज महल शाहजहाँ ने बनवाया था। इसके विपरीत इस बात के प्रमाण हैं कि इस स्थान पर एक आलीशान महल पहले ही विद्यमान था।

मध्यकालीन मुसलमान लेखकों से लिखे इतिहास तोता-मैना के किस्से, कहानियाँ ही हैं।

अतः इतिहास के विद्वान, अध्यापक और विद्यार्थियों के लिए अब समय आ गया है कि वे तनिक रुककर विचार करें कि उनको पढ़ने के लिए क्या रद्दी की टोकरी में फकने के योग्य सामग्री दी जाती है। ये इतिहास भारत के शत्रुओं और पक्षपातियों के लिखे हुए हैं। झूठे और पक्षपाती होने के साथ ही वे असभ्य, तथा पक्षपात से दीवाने भी थे। उन्होंने सत्य की हत्या की है और उद्देश्य विशेष से मन-घड़न्त किस्से, कहानियाँ लिखी हैं। इन्होंने जान-बूझ कर हिन्दुस्तान के वास्तविक इतिहास को दबाने का यत्न किया है।

भारत का इतिहास भारत के शत्रुओं ने लिखा है

श्री पी० एन० ओक, एम ० ए० एलएल०बी०,

O

चिरकाल से यह अनुभव किया जा रहा है कि भारत का इतिहास जैसा कि भारत के स्कूलों तथा कालिजों में पढ़ाया जाता है और जैसा यह विश्व में उपस्थित किया जा रहा है, वास्तविक इतिहास का एक मिथ्या रूप है। वास्तविक इतिहास विनष्ट हो गया हैं अथवा छिपा कर रखा गया है।

यह अनुभूति ठीक है। कारण यह कि आधारभूत बात जिसने भारतीय इतिहास को दूषित किया है, वह यह है कि भारत का इतिहास उनके लेखों पर आधारित है जो भारत और इसकी संस्कृति से अत्यंत घृणा करते थे।

यह इस कारण हुआ कि पिछले १२०० वर्ष के यहाँ पर शत्रु राज्य होने के कारण, भारत का अपना लिखा इतिहास जो भोज-पत्रों, कपड़ों, ताम्र-पत्रों अथवा पत्थरों पर लिखा हुआ था, वह आक्रान्ताओं और शासकों ने योजना बद्ध रूप से छिपा दिया था ।

इससे भी बुरी बात यह हुई कि प्रचारार्थ सहस्रों लेख और भूठे शिला-लेख विरोधी शत्रु ने असल के स्थान पर लगा दिये।

सहस्रों ऐसे भूठे लेखों के नमूने जो अफ़गान, अरब, बलोच इरानियों, कज्जाक तुर्क उजबक, मुगल और ऐबिसीनियनों ने लिखे एक अति सतर्क और विद्वान ब्रिटिश लेखक स्वर्गीय सर एच० एम० इलियट ने अपनी आठ भागों में लिखी पुस्तक में दिये हैं।

इनको प्रोफेसर John Dowson ने सम्पादित किया है और ये 'इलियट और डाउसन के नाम से स्मरण किये जाते हैं।

इसके प्रथम भाग के प्राक्कथन में सर एच० एम० इलियट ने उन लेखों के विषय में बुद्धिमत्ता पूर्ण तथा स्पष्टतः एवं सारगर्भिता रूप में उचित ही लिखा है कि ये लज्जारहित और स्वार्थ के लिए किया गया एक धोखा है।

परन्तु इतनी दूरदर्शित करते हुए भी सर एच०एम० इलियट एक बात के अपराधी हैं। उन्होंने लिखा है कि ये धोखा भारत के अपने ही लेखकों ने किया है। उन्होंने अपनी आठ भागों वाली पुस्तक का नाम रखा है 'भारत का

इतिहास उसके अपने इतिहासज्ञों की लेखनी से'। यह एक बहुत बड़ी भूल हो गई है। कारण यह कि किसी भी खींचातानी से ये शमस-ऐ शिराज अफीफ, बदायुनी, खाफी खाँ, फारिश्ता, अब्बुल फजल, बाबर, जहाँगीर, गुल-बदन बेगम तथा तैमूर लंग जैसे लेखक भारतीय नहीं कहे जा सकते। ये न केवल दृष्टि, शिक्षा, सम्पर्क, भाषा, भेष, मजहब जाति और संस्कृति से विदेशीय थे, वरंच भारत के रहने वाले हिन्दुओं के घोर शत्रु थे। ये और इनके साथियों ने लाखों भारतीयों को मरवाया, बचे हुओं को दासता का चिह्न पहनाया, हिन्दुस्तानी स्त्रियों से बलात्कार किया, मन्दिरों को तुड़वाया और भारत के धन-सम्पद को लूट कर विदेशों में ले गये। साथ ही इन लेखकों ने कभी भी अपने को हिन्दुस्तानी नहीं लिखा। वे सदा अपने को तुर्क, अरब, मुगल और ऐबिसीनियन कहते रहे हैं। यहाँ के रहने वालों को, उनको भी, जो इस्लाम स्वीकार कर चुके थे घृणा से ये 'हिन्दुस्तानी' कहकर पुकारते थे। अतः सर एच० एम इलियट इनको हिन्दुस्तानी इतिहास लिखने वाले कहने में कोई कारण नहीं रखते।

यह बात कि इस प्रकार के इतिहास लिखने वाले यहां के रहने वालों को हिन्दूस्तानी अथवा हिन्दु नहीं लिखते, वरंच वे यहाँ के स्त्री पुरुषों को अविश्वासी, चोर, डाकू, गुलाम, नर्तकी, वेश्या, साँप, कुत्ते और बदमाश इत्यादि विशेषणों से स्मरण करते हैं। क्या वे जो हिन्दुस्तानियों को सदा इस प्रकार गाली और घृणा के शब्दों में लिखते हैं, वे हिन्दुस्तानी कहे जा सकते हैं? विस्मय करने की बात नहीं कि उनके सब लेख हिन्दुस्तानी संस्कृति और सभ्यता की इस प्रकार निन्दा करते हैं और इस्लाम की प्रशंसा के पुल बाँधते हैं। वास्तव में इनको हिन्दुस्तान का इतिहास लिखने वाले हिन्दुस्तानी नहीं कहा जा सकता। कहना तो यह चाहिए कि ये लोग हिन्दुस्तान के घोर शत्रु थे और इनके द्वारा लिखा गया हिन्दुस्तान का इतिहास है।

मध्यकाल के मुसलमान लेखकों के लेख कितने अयुक्त, शत्रुता और द्वेष पूर्ण हैं, यह बताने के लिये एक उदाहरण बदायुनी की मुन्तखबत तवारीख के दूसरे भाग (अंग्रेजी अनुवाद) के पृष्ठ-३८३ पर टोडर मल्ल और राजा भगवान दास के लाहौर में एक दूसरे के पाँच दिन के भीतर देहावसान का उल्लेख है। बदायुनी लिखता है—

'हिजरी सन् ९९८ में राजा टोडर मल्ल और राजा भगवान दास, अमीर उल उमरा जो पीछे लाहौर में रह गये थे, वे दण्ड भोगने के लिये नरक कुण्ड के गहरे गड्डे में साँपों और बिच्छुओं की खुराक बनने के लिए चले

गये । अल्लाह उनको जला डाले ।

English translation of Badauni,s writing is as follows:

In the year 998 A. H. Raja Todar Mall and Raja Bhagwandas, Amir-ul-Umara who remained behind at Lahore, hastened to the abode of hell and torment and in the lowest pit became the food of serpants and scorpions. May Allah scorch them both.

बदायुनी पूर्ण लेख में जहाँ जहाँ उसने किसी हिन्दू की मृत्यु का उल्लेख किया है, वह लिखता है—'The scoundrel went to Hell'। (बदमाश नरकमें गया है) । अथवा 'The infidel went to Hell'। वह अविश्वासी नरक को गया) । ऐसा प्रतीत होता है कि उसके पास नरक में जाने वालों की सूची बनती थी । या वह नरक का द्वारपाल था जिसे शैतान ने वहाँ जाने वालों की सूची बनाने के लिए नियुक्त किया हुआ था ।

बदायुनी और उसी के विचार के लोग जो मध्यकालीन मुस्लिम शासकों के विषय में एक सहस्र वर्ष तक लिखते रहे हैं और जो हिन्दुओं के लिए इस प्रकार के अपशब्द प्रयोग करते हैं, उनसे कब आशा की जा सकती है कि वे सत्य इतिहास लिखते रहे होंगे । इस पर भी वर्तमान युग में लिखा गया इतिहास ऐसे ही लेखकों के शत्रुता पूर्ण और घृणित लेखों पर आधारित है ।

अत: यह स्वाभाविक है कि आजकल के इतिहास जो हिन्दुस्तास के शत्रुओं ने लिखे हैं, वे काल्पनिक, विकृत और घटनाओं को तोड़-मोड़ कर लिखे गये । जिससे सच्चाई मिल हीं नहीं सकती । यह स्पष्ट ही है कि प्रत्येक मुसलमान हाकिम हिन्दुस्तान में लूट-खसूट और मार-काट मचाता रहा है । इस पर भी उसका राज्य न्यायप्रिय, दया पूर्ण प्रौर उदारता से भरा हुआ लिखा गया है ।

इतिहास की एक विकृति यह भी है कि यद्यपि वर्तमान युग में उपस्थित मध्यकालीन इमारत पुराने हिन्दू-मन्दिर, महल हैं उसे विजय करने वालों ने मकबरा, मस्जिद घोषित कर उसे किसी मुसलमान शासक की बनाई हुई बताया है । उनसे बनवाने के प्रमाण बहुत ही विचित्र दिए जाते हैं । यहां तक कि कई इमारतों को कुछ शासकों ने अपने मकबरे के रूप में मरने वालों को अपने जीवन-काल में रहने से भी अधिक चिन्ता अपनी मकबरे अपने मरने के पहले ही बनवा दिया, कहा जाता है । इस प्रकार की बेहूदा बातों का खण्डन तो सहज ही एक प्रश्न से किया जाता है कि क्या उन

शेष पृष्ठ १२ पर देखें

राजा राममोहन राय और ईसाइयत

○

श्री ब्रह्मदत्त भारती

जब १९६४ में बम्बई में ३८वीं अन्तर्राष्ट्रीय यूकरिस्टिक कांग्रेस की बैठक हुई तो भारत सरकार ने अपनी धर्मनिरपेक्षता का ढिंढोरा पीटने के लिए एक जैसुइट पादरी से अंग्रेजी भाषा में एक पुस्तिका लिखाई। इसे भारत सरकार के प्रसार और प्रचार विभाग ने अपने खर्चे पर मुद्रित करवाकर भारत-भर में बिकवाया। इस पुस्तिका में कितनी ही आपत्तिजनक बातें इस ईसाई ने ईसाइयत के नशे में आकर लिख डालीं किन्तु भारत सरकार ने यह जानने का भी कभी प्रयत्न नहीं किया कि कहीं उसने जो ईसाइयत के गान इस पुस्तिका में गाये हैं, वे मूल में असत्य ही तो नहीं? इसी पुस्तक में यह भी लिखा है कि यदपि महात्मा गांधी अपनी आयु के अन्तिम दिन तक पूरी तरह हिन्दू ही रहे परन्तु उनके जीवन पर ईसाइयत का विशेष प्रभाव था। यदि यह लम्पट झूठ नहीं तो चतुर असत्य अवश्य ही है। इसी तरह एक और ईसाई भारत और पाकिस्तान में ईसाइयत का इतिहास लिखते हुए लिखता है कि राजा राममोहन राय खुले तौर पर ईसाइयत को उच्चतम मानते थे और सर्वदा गिर्जाघर में जाते थे और तब समझा जाता था कि वह भी ईसाई मत स्वीकार करेंगे।

("Ram Mohan Roy while publicly maintaining the greatness of Christianity and even regularly attending Christian services...as a possible convert to Christianity")

अपना उल्लू सीधा करने के लिए ईसाइयत कभी झूठ बोलते शर्माति नहीं है और राजा राममोहन राय के बारे में जो तोड़-फोड़ कर ईसाई वर्ग में कहा जाता रहा है उससे यह भली-भाँति समझ आता है कि ईसाइयत की सेवा में असत्य बोलना कुछ दोष नहीं है।

हम यह स्वीकार करते हैं कि राजा राममोहन राय को ईसाई बनाने-

की ईसाइयत ने सिरतोड़ कोशिश की थी। परन्तु ईसाइयत इस बात को सर्वदा छिपाने की कोशिश करती है कि इस अनार्य कार्य में उसे मुंह की खानी पड़ी थी। भारत में जो ईसाई पादरी हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए भारत आये हैं उनमें विलियम केरी का नाम विशेषकर उल्लेखनीय है। यह पादरी १७९३ में ११ नवम्बर के दिन भारत में आया था। उसने नील के खेतों में भी काम किया है। छः साल पश्चात् कुछ और पादरी भारत आये। इसमें जोशुआ मारशमैन और विलियम वार्ड भी थे। ये लोग कलकत्ते के निकट श्रीरामपुर में आकर टिके और यहीं से उन्होंने अपना कार्य शुरू किया और इन्हीं में केरी भी आकर सम्मिलित हो गया। इन लोगों ने राजा राममोहन राय को ईसाई बनाने की खूब चेष्टा की। यह इस काम में अभी लगे ही थे कि १९ मार्च १८१८ के दिन एक और पादरी विलियम आदम भी भारत आ पहुँचा। यह नया आदम राजा राममोहन राय के सम्पर्क में बराबर आता रहा। विगत इतिहास से ऐसा जान पड़ता है कि श्रीरामपुर के ईसाइयों ने इस आदम को विशेष कर यह कार्य सौंपा था कि वह राजा राममोहन राय को ईसाई बनाये।

राजा राममोहन राय अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान थे। वह वेद और उपनिषदों के पंडित थे। वह एकीश्वरवादी थे। बाईबल में लिखी कितनी ही बातों की वह खिल्ली उड़ाया करते थे। वह गिर्जाघर भी जाते थे और इन पादरियों से वार्तालाप भी करते थे। ईसाइयत की कहावत पर कि खुदा, ईसा और होली घोस्ट तीनों ही ईश्वर हैं और तीनों ही बराबर शक्तिवान हैं वह सर्वदा हँसा करते थे। विलियम आदम उनके सम्पर्क में बराबर आने के कारण राजा राममोहन राय के विचारों से बहुत प्रभावित हुए थे और धीरे-धीरे उन्होंने भी तीन खुदा वाली बाईबल की कहानी से मुँह मोड़ लिया और राजा राममोहन राय के बताये हुए एकीश्वरवाद पर विश्वास ले आये थे। यह पादरी आदम ऊन लेने गये थे, परन्तु मुंड़वा कर वापिस लौटे। राजा राममोहन राय को ईसाई बनाते-बनाते स्वयं ही वेदान्ती बन गये। इसकी प्रतिक्रिया अच्छी न हुई और जिस पादरी संस्था से आदम सम्बन्धित थे, उसने आदम को अपनी संस्था से निकाल बाहर कर दिया। उस पर यह आरोप लगा कि वह ईसाइयत से मुँह फेर चुके हैं अथवा तीन खुदा न मान कर वेदों के एकीश्वरवाद में विश्वा सरखते हैं।

ईसाइयत आज यह कहते शर्माती नहीं कि राजा राममोहन राय ईसाइयत को उच्चतम मत मानते थे। सत्य को छिपाने के लिए ईसाइयत भारत में ईसाइयत का लम्बा-लम्बा इतिहास लिखते हुए भी इस विलियम

आदम पादरी की कहानी को सूखा ही निगल जाती है। केरी की जीवनी लिखते भी कहीं इस पादरी का नाम नहीं लेती। वह तो ईसाइयत से निकाल बाहर कर दिया गया था, क्योंकि वह राममोहन राय के बताये हुए सत्य को मानता था कि ईश्वर एक है और केवल एक है। इसका प्रमाण हमें ऐंग्लो इंडिया (Anglo India. voe III) में मिलता है। आदभ अब एकीश्वर वाद का प्रचार भी करने लगा था। मिशनरी सोसायटी की वार्षिक रिपोर्ट (२०-जून १६२२) में आदम के बारे में हमें लिखा हुआ यह मिलता है, परन्तु ईसाइयत इसकी कहानी कभी मुँह खोल कर नहीं कहती। ('We mention with deep regret that mr. Adam late one of their number (i. e. of the workers in Calcutta,) had embraced opinions derogatory to the honour of thc Saviour, denying the proper dignity of "our Lord Jesus Christ" in consequence of which the connec tion between him and the Soceity has been dissolved.")

हमें यह कहते हुए खेद होता है कि पादरी विलियम आदम जो कलकत्ता क्षेत्र में ईसाइयत का कार्य करते थे, ईसाइयत के सिद्धान्तों के विरुद्ध विचार रखने लगे हैं जो ईसा मसीह की शान के विरुद्ध हैं क्योंकि यह विचार ईसा को खुदा नहीं मानते। इसीलिए आदम को सोसायटी से निकाल बाहर कर दिया गया है। बेचारा विलियम आदम! सत्य बोलने और सत्य को मानने के लिये उसे ईसाइयत से निकाल बाहर कर दिया गया। शायद सत्य बोलना और सत्य की पूजा करना ईसाइयत में ऐसा जरूरी नहीं है।

जब ये पादरी लोग भारत आकर श्रीरामपुर में बसे तो इन्होंने अपने प्रचार के हेतु एक पत्र भी निकालना आरम्भ किया था जिसका नाम इन्होंने फ्रेण्ड ऑफ इंडिया (Friend of India) अर्थात भारत का मित्र रखा। यह भारत का मित्र बना अथवा शत्रु यह तो एक दूसरी लम्बी कथा है परन्तु आज कलकत्ता और नई दिल्ली से एक साथ छपने वाला पत्र स्टेटसमैन इसी फ्रैंड ऑफ इंडिया के वंश से ही है। इसी फ्रैंड ऑफ इण्डिया के सम्पादकों ने भी इस पत्र में लम्बे-२ लेख लिख कर राजा राममनोहर राय को प्रभावित करके ईसाई बनाना चाहा था। राममोहन राय बहुत वर्ष तक इन पादरियों से शास्त्रार्थ करते रहे। इसी बारे में १८२३ ई० में उन्होंने फाईनल अपील टू दी क्रिश्चयन पब्लिक इन डिफेंस ऑफ प्रीसैप्टस ऑफ जीसस (Final Appeal to the Christian Public in Defence of "The precepts of Jesus) लिखी।

इस पुस्तक के निकलते ही भारत में काम कर रहे ईसाई पादरियों में खलबली मच गई और उनके प्रचार की जड़े हिलने लगीं। इसमें राजा राममोहन राय ने लिखा :—

अन्त में मैं फ्रैंड ऑफ इंडिया के सम्पादक का धन्यवाद करता हूँ जो उसने मुझे ईसाई मत के तीन खुदा वाले सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिये आमंत्रित किया। मुझे खेद है कि मैं उनकी सलाह का लाभ नहीं उठा सकता हूँ ....मैं तो बहुत देर हुई कि इस विचार को तिलांजलि दे चुका हूँ कि ईश्वर या एक से अधिक ईश्वरशक्ति, कुछ भी कहा जाये सब का अर्थ एक ही है। यदि ऐसा मान लिया जाये तो यह मानने में कोई आपत्ति नहीं रहेगी कि ईश्वर एक से अधिक कई हैं। ("Lastly, I tender my humble thanks for the Editor's (of the Friend of India) kind suggestion in inviting me to adopt the doctrine of the Holy Trinity; but I am sorry to find that I am unable to benefit by this ad vice......I have long relinquished every idea of a plurality of Gods or of the persons of the Godhead...Whatever arguments can be adduced against a plurality of Gods strike wtih equal force against the doctrine of a plurality of persons of the Godhead; and on the other hand, whatever excuse may be pleaded in favour of a plurality of the Deity can be offered with equal propriety in defence of Polytheism.")

राजा राममोहन राय के इस कथन से भली भाँति पता चलता है कि वह वेदों के एकीश्वर वाद में पूरी तरह विश्वास रखते थे और उन्हें ईसाइयत की तीन खुदाई से कुछ भी सहानुभूति अथवा लगाव नहीं था।

राजा राममोहन राय के वैदिक सिद्धान्तों ने ईसाई पादरियों में हलचल मचा दी थी। ईसाई पादरी बगलें झांकते और झल्लाते थे। राजा राममोहन राय ने इसी पुस्तक के पृष्ठ ६१२ पर जो लिखा उसने तो ईसा की रही सही मर्यादा पर भी ऐसा कठोर अघात किया कि पादरी लोग तिलमिला उठे। उन्होंने कहा, मैं यह विश्वास पूर्वक कहता हूँ, साधारण बुद्धि भी यही मानती है कि एक बेटा और एक सेवक दोनों ही पिता और मालिक से नीचे दर्जे पर होते हैं। हम यह भी देखते हैं कि बाईबल में ही डेविड, सोलोमन, आदम और इजराइल के सब लोग भी खुदा के पुत्र कहे गये हैं। इस पर भी उन सबको खुदा से नीचा ही माना गया है। जीसस ने भी तो यही कहा है कि

वह खुदा से नीचे दर्जे पर है।

("I answer, because commonsense tells us that a son, as well as a servant, must be acknowledged to be inferior to his father or master. Again, we find David called the son of God, Solomon the son of God, Adam the son of God, and in short the whole children of Israel denominated sons of God; yet represented in scriptures as inferior to God their father; nay, moreover, Jesus the son of God positively declares himself to be inferior to his father..."My father is greater than I".

राजा राममोहन राय के इन सत्य विचारों ने भारत में ईसाई प्रचार को ऐसी चोट पहुँचाई कि आज तक ईसाइयत संभल नही पा रही हैं। गाँधी जी ने भी कहा था कि मैं यह मानने के लिए तैयार नही हूँ कि ईसा ही केवल मात्र परमात्मा का एक पुत्र था। ऐसा ही राजा राममोहन राय के विचारों ने सिद्ध कर दिया। इस पर भी हिन्दुओं के मस्तिष्क को भ्रांत करने के लिये ईसाइयत बेधड़क यह शोर मचाये ही जाती है कि राजा राममोहन राय ईसाइयत को उच्च मत मानते थे। यह ईसाइयत का पुराना विचार है कि यदि जनता को झूठ का विश्वास दिलाना हो तो झूठ बार-बार बोलना चाहिये और हर बार अधिक शोर से बोलना चाहिये, सत्य चाहे कुछ भी हो ! ○

शाश्वत वाणी के विशेषांक के रूप में

भारतीय राजनीति

रामायण काल से आधुनिक काल तक

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि दिसम्बर अंक उपर्युक्त विषय पर विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जायगा। इस विशेषांक में विद्वान पुरुषों के लेख प्रकाशित किये जाएँगे। हमारे कुछ लेखक हैं—पं० रामगोपाल शास्त्री, वैद्य गुरुदत्त, श्री सचदेव विशेषांक का मूल्य होगा पाँच रुपये, परन्तु शाश्वत वाणी के वार्षिक ग्राहकों को बिना मूल्य भेजा जायेगा। पाठकों से निवेदन है कि वे ध्यान रखें, शुल्क समाप्त होने से पूर्व ही वे आगामी वर्ष का शुल्क भेजना न भूलें।

वार्षिक ग्राहकों के अतिरिक्त पाठकों तथा रुचि रखने वालों के लिये यह विशेषांक पाँच रुपये में ही प्राप्त हो सकेगा। अतः पाठकों से निवेदन है कि अधिकाधिक संख्या में अपने मित्रों तथा रुचि रखने वालों को शाश्वत वाणी का वार्षिक ग्राहक बनाएँ।

शाश्वत वाणी

बन्दा बैरागी की जीवन-मीमांसा

○

श्री अश्लेष

कुछ दिन पूर्व एक पुस्तक देखने को मिली थी। पुस्तक का नाम था, 'मूर्खों के देश में, धूर्त्तों के राज में'। इस पुस्तक में लिखी एक बात की ओर ध्यान गया। वह यह कि भगवान् कृष्ण बहुत ही बुरा आदमी था। उसने व्यर्थ साठ-सत्तर लाख वीर सैनिकों की हत्या करा दी थी। जब मैंने यह बात उस पुस्तक में पढ़ी तो पुस्तक का आधा नाम 'अर्थात् मूर्खों के देश में 'सार्थक प्रतीत होने लगा। वैसे पुस्तक में धूर्त्तों के राज के विषय में भी लिखा था। उसका हमारे इस लेख से सम्बन्ध नहीं। हमारा सन्बन्ध पुस्तक के नाम के पहले भाग से है। लेखक ने सत्य ही लिखा है कि भारत मूर्खों का देश है और लेखक भी उनमें एक है।

यदि कृष्ण ने साठ-सत्तार लाख वीर सैनिक व्यर्थ ही मरवा डाले थे और वह इस देश के एक प्रतिभाशाली लेखक को बुरा प्रतीत हुआ है तो सत्य ही भारत मूर्खों का देश है। लोगों के मर जाने से यदि किसी कार्य के बुरा होने का अनुमान लगाने लगें तो, निस्सन्देह यह देश मूर्खों का है।

वे साठ-सत्तर लाख क्यों मारे गये ? इसकी चिन्ता नहीं और यदि वे न मरते तो क्या होता ? यह भी चिन्तनीय नहीं है। साथ ही श्री कृष्ण ने और क्या किया था ? उसको छोड़ केवल मात्र लोगों के मरने की बात पकड़ कर बैठ जाना ही मूर्खतापूर्ण बात है।

जिस देश में भगवान् कृष्ण को बुरा माना जाता है, वहाँ यदि बन्दा बैरागी को दुष्ट कहा जाये तो विस्मय करने की बात नहीं। और ऐसा कहा भी जाता है। इस मूर्खों के देश में ऐसा होना ही चाहिये।

सन् १९२४-२५ की बात है। पंजाब के एक नेता डाक्टर सत्यपाल ने बन्दा बैरागी को हिन्दू धर्म का शत्रु कहा था।

डाक्टर सत्यपाल ने 'रौलेट ऐक्ट' आन्दोलन में विशेष भाग लिया और उसमें इतने विख्यात हुए कि लाला लाजपत राय के बराबर के नेता समझे जाने लगे। भाई परमानन्द जी ने 'बन्दा बैरागी' के नाम से एक पुस्तक' लिखी

थी। उस पुस्तक में उन्होंने बन्दा बैरागी को हिन्दू धर्म के रक्षक की उपाधि से विभूषित किया था। उसी पुस्तक पर विचार करते हुए डाक्टर साहब ने यह कहा था कि बन्दा बैरागी हिन्दू धर्म का शत्रु था।

यह विचार डाक्टर साहब के ही नहीं थे, वरंच देश में अन्य कोटि-कोटि हिन्दू, मुसलमानों और सिक्खों के भी थे। यह इसलिये कि बन्दा बैरागी ने मुसलमानों को अति निर्दयता से मरवाया था, ऐसा कहा जाता है।

बन्दा ने क्या किया था? इसका मूल्यांकन करने के लिये उस काल की देश की अवस्था का अनुमान लगाना पड़ेगा। हिन्दुस्तान में मुगलों का राज्य स्थापित हुए पौने दो सौ वर्ष हो चुके थे और इस पौने दो सौ वर्षों के काल में कुछ ही वर्षों के काल को छोड़कर, हिन्दुओं के साथ मुगलों का व्यवहार ऐसा रहा था, मानो हिन्दू उनके क्रीत दास हों।

यह इस मूर्खों के देश का ही चमत्कार था कि कोटि-कोटि हिन्दू पर कुछ सहस्र मुसलमानों ने ऐसे शासन किया, जैसे ये हिन्दू गाय, भैंसोंके झुण्ड हों और मुगल सैनिक लाठी लिये गवाल उनको हांकते हुए ले जाते हों। इस पौने दो सौ वर्ष के मुगल राज्य में जब जब मुगल राज्य दृढ़ता से स्थापित हुआ तब तब मुगलों का हिन्दुओं पर अत्याचार भी बढ़ा। जहांगीर और शाहजहाँ के राज्य मुगलों के भली-भाँति स्थापित राज्य माने जाते हैं और इन दिनों में पंजाब, महाराष्ट्र और राजस्थान में मुल्ला-मौलानाओं के अत्याचार असीमित रहे हैं।

अपने राज्य के प्रारम्भिक काल में, जब अकबर अपने राज्य को विस्तार देने में संलग्न था, उस समय हिन्दुओं से कुछ सीमा तक सहयोग चलता रहा। उसी काल में हिन्दुओं से जजिया उठाया गया था। तीर्थ यात्रा का कर भी हटा लिया गया था और कहा जाता है कि अकबर नगर कोट के देवी के मन्दिर में सोने का छत्र चढ़ा आया था। परन्तु ज्यों-ज्यों राज्य सुदृढ़ होता गया और यह दूर-दूर तक विस्तार पाता गया, हिन्दुओं का उत्पीड़न बढ़ता गया।

जहाँगीर का राज्य गुरु अर्जुन देव के बलिदान से आरम्भ हुआ। फिर गुरु हर गोविन्द को बन्दी बनाकर रखा गया। शाहजहां के काल में भी यह ज़ोर-जुल्म जारी रहा।

शाहजहाँ के विषय में स्कूलों में पढ़ाने वाले इतिहास में भी लिखा मिलता है :—

'शाहजहाँ पक्का सुन्नी मुसलमान था। वह धार्मिक पक्षपात करता था

और कभी-कभी हिन्दुओं के साथ कठोर व्यवहार करता था। कहीं-कहीं औदार्य भी दिखाता था। युरोपीय यात्री डैलावैली लिखता है कि खम्भात के हिन्दुओं से रुपया पाने पर उसने वहाँ गौ-हत्या बन्द करा दी।'

इतिहास लेखक ने शाहजहाँ के रुपया लेकर गौ-हत्या बन्द करने को, उसकी उदारता बतायी है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जब और जहाँ वह उदार नहीं होता था, तो वहाँ क्या करता होगा ?

शाहजहाँ की बीवी मुमताज महल के विषय में कहा जाता है कि वह क्रूर थी और विधर्मियों की निर्मम हत्या कराती रहती थी। यहाँ तक कि शाहजहाँ की हिन्दुओं और ईसाईयों के प्रति अनिर्दयता में कारण वह ही मानी है।

शाहजहाँ के उपरान्त तो औरंगज़ेब का राज्य आया। इस राज्य काल में क्या हुआ ? उसके विषय में इतिहास लेखक डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव लिखते हैं—

औरंगज़ेब, राज्य के सम्बन्ध में इस्लामी सिद्धान्त पर विश्वास रखता था। वह ऐसे शासन में विश्वास रखता था जिसमें शासक कुरान का कानून शासन में चलाये और वह देश को दारा-उल-हरब से दारा-उल-इस्लाम बना सके। वह इस्लाम को राज्य धर्म बनाना चाहता था और राज्य की पूर्ण शक्ति को अपने मज़हब के प्रचार के लिए लगाता था।...

उसने पुराने मन्दिरों की मुरम्मत करने से मना कर दिया था। कुछ ही काल उपरान्त सब प्रान्तों के हाकिमों को उसने यह आज्ञा दी कि काफ़िरों के सब विद्यालय और मन्दिर गिरा दिये जायें और दृढ़ता से उनकी शिक्षा और पूजा-पाठ बन्द कराया जाये। 'मुतअस्सिब' घूमते रहते थे और वे हिन्दू-मन्दिर और मूर्तियाँ विनष्ट करते रहते थे। सरकारी मन्दिर गिराने वालों की संख्या इतनी अधिक थी कि उन पर एक दारोगा नियुक्त होता था और वह उनके कार्यों को दिशा देता था। यहाँ तक कि बनारस का विश्वनाथ का मन्दिर, मथुरा का केशव देव का मन्दिर और पाटन का सोमनाथ का मन्दिर गिराकर भूमि से मिला दिये गए थे। मित्र हिन्दू राजाओं के राज्यों में भी जैसे कि जयपुर में, मन्दिर छोड़े नहीं गये और मन्दिर और मूर्तियों का तोड़ना प्रायः चलता था और उसके साथ उनको भ्रष्ट और अपमानित भी किया जाता था। प्रायः वहाँ गो-हत्या की जाती थी और मूर्तियों को सड़कों पर दमूसों से कूट दिया जाता था।

...सन् १६७८ में पुनः हिन्दुओं पर जजिया लगा दिया गया, जिससे

इस्लाम फैले और काफ़िरों को पराजित किया जाये···हिन्दुओं ने चीख-पुकार की, परन्तु सुना नहीं गया। उसने तीर्थ-यात्रा कर भी लगा दिया। तीर्थ-यात्री को स्नान करने पर छः रुपये चार आने कर देना पड़ता था। वस्तुओं पर कर मुसलमानों से नहीं लिया जाता था और हिन्दुओं से पाँच प्रतिशत वसूल किया जाता था।

'औरंगज़ेब के मृत्यु काल (१७०७) तक और उसके पीछे बहादुरशाह और फ़रुखसीयर के राज्य में हिन्दुओं को किसी प्रकार की राहत नहीं दी गई।'

इस काल में बन्दा बैरागी पञ्जाब में आया। उसके आने से पूर्व गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्द सिंह के अल्प-वयस्क बच्चों का बलिदान हो चुका था। पञ्जाब में औरंगज़ेबी धांधली मची हुई थी। इस पृष्ठ भूमि पर बन्दा बैरागी ने क्या किया, यह विचारणीय रह ही नहीं जाता।

विचारणीय यह रह जाता है कि इस मूर्खों के देश में बन्दा बैरागी का अन्त कैसे हुआ ? इसमें दो मुख्य कारण बताये जाते हैं। प्रथम कारण यह था कि पंजाब में हिन्दुओं के वे तत्त्व, जिनका संगठन हुआ था, सिक्ख थे। आदि गुरु नानक से लेकर दशम गुरु गोविन्द सिंह तक के व्यवहार को सिक्ख अपना पथ-प्रदर्शक मानते थे। उन दिनों हिन्दुस्तान में गुरूडम की बहुत महिमा थी और जो एक बार किसी समुदाय का गुरु बन गया, वह उस समुदाय में परमात्मा का स्वरूप ही माना जाता था।

ऐसी स्थिति में यदि गुरु गोविन्द सिंह यह न कह जाते कि उनके पीछे अब कोई नया गुरु नहीं होगा, तो बन्दा बैरागी गुरुपद पर सुशोभित माना जाता। गुरु गोविन्द सिंह बन्दे को अपना आशीर्वाद और तलवार दे गये थे। तब बन्दा बैरागी गुरुपद पर आसीन सिक्खों को अपने व्यवहार के अनुकूल बना लेता।

हुआ यह कि युद्ध की स्थिति में और राज्य स्थापित होने के काल में वह त्याग और तपस्या रह नहीं सकती थी, जो गुरुओं में केवल धर्म प्रचार के समय थी। अतः सिक्खों की दृष्टि में बन्दा की वह मान-प्रतिष्ठा नहीं थी जो गुरुओं की थी। यदि वह गुरु गद्दी पर आसीन होता तो नयी व्यवस्था देकर अपने साथियों में वह श्रद्धा, भक्ति उत्पन्न कर सकता जो गुरुओं के प्रति अपेक्षित थी।

बन्दा ने सिक्खों के अतिरिक्त भी हिन्दुओं की सेना बनाने का यत्न किया था, परन्तु उसमें वह अभी सफल नहीं हो सका था।

दूसरा कारण था हिन्दुओं का और सिक्खों का राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ होना। फ़रुख़सीयर इसमें सिक्खों को चकमा दे गया। उसके गुप्तचरों ने सिक्खों में बन्दा के प्रति अश्रद्धा देख, सिक्खों को बन्दा के विरुद्ध भड़काने का यत्न किया। गुरु गोविन्द सिंह की पत्नियों को भड़काया गया और सिक्खों के उस तत्त्व को, जो बन्दा के लिये श्रद्धा नहीं रखते थे, एक पत्र लिखवाकर बन्दा और सिक्खों में फूट डलवा दी गई। वे सिक्ख तत्त्व खालसा कहलाते थे।

दिल्ली के शहंशाह ने उन सिक्खों को, जो बन्दा की सेना छोड़कर शाही सेना में आये, एक रुपया प्रति दिन के वेतन पर नौकर रख लिया। बहुत से सिक्ख शाही सेना में भरती हो गये।

दिल्ली के शहंशाह ने पाँच हज़ार रुपये अमृतसर दरबार साहब को दिये और सिक्खों से निम्न शर्तों पर सन्धि कर ली—

(१) खालसा देश में लूट-मार नहीं करेंगे;

(२) खालसा बन्दा की सहायता नहीं करेंगे;

(३) विदेशी आक्रमण के समय खालसा शहंशाह दिल्ली के लिए लड़ेंगे;

(४) खालसाओं की जागीरें छीनी नहीं जायेंगी;

(५) हिन्दुओं को विवश कर इस्लाम स्वीकार नहीं कराया जायेगा;

(६) हिन्दुओं के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जायेगा और उनकी मज़हबी बातों में दख़ल नहीं दिया जायेगा।

यह सन्धि दरबार साहब के अधिकारियों के साथ ही हुई। वे धोखे में आ गये और बन्दा के विरुद्ध प्रचार करने लगे।

बन्दा पकड़ा गया। सात सौ साथियों के साथ बन्दा को चाँदनी चौक, दिल्ली में अनेक प्रकार के कष्ट देकर मार डाला गया।

इसके कुछ ही पीछे सिक्खों के साथ हुई सन्धि भंग हो गई और दो-दो रुपये पर सिक्खों के सिर बिकने लगे।

अतः बात ठीक ही है, 'हम हैं मूर्खों के देश में'।

———

क्या ताजमहल एक हिन्दू महल था ?

श्री पी० एन० ओक की पुस्तक पर एक समीक्षा

○

ओक साहब की पुस्तक का प्रथम संस्करण मैंने सन् १९६५ में पढ़ा था। पढ़ने पर मुझे विस्मय हुआ था कि संसार भर में विख्यात बात को झुठलाने वाले ये ओक साहब कौन हैं ? उस संस्करण में उन सब लेखकों के लेखों पर संशय उत्पन्न किया गया था, जिन्होंने शाहजहाँ के अपनी पत्नी के प्रति प्रेम की गाथाओं के पुल बाँध रखे थे। एक बार तो मन में यह विचार आया था कि ओक साहब कोई कल्पनामय कहानी लिख रहे हैं, परन्तु पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ने पर मैं भी सन्देह करने लगा था कि दाल में कुछ काला अवश्य है। इस विचार के आते ही मैं इतना तो समझ गया था कि ओक साहब एक महान् साहसी व्यक्ति हैं जो संसार में प्रचलित कथा को चुनौती दे रहे हैं।

ओक साहब का एक लेख दिल्ली के अंग्रेजी साप्ताहिक 'ऑर्गनाईजर' में छपा था। उस लेख पर भारत के एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक डाक्टर मजुमदार की एक टिप्पणी छपी। उस टिप्पणी में उस प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ने केवल यह लिखा था, "मुझे विस्मय होता है कि आपका प्रसिद्ध पत्र इस प्रकार की बेहूदा (absurd) बात को कैसे स्थान देता है ?" पूर्ण टिप्पणी पाँच छः पंक्तियों में थी। इस टिप्पणी को पढ़कर मुझे अपने सन्देह की पुष्टि मिली थी कि भीतर-ही-भीतर कुछ घिनौना अवश्य है।

ओक साहब की पुस्तक बेहूदा तो थी नहीं। इतना तो कहा जा सकता था कि उन्होंने ताज महल के विषय में पूर्व लिखे लेखों पर सन्देह उत्पन्न किया था। उनके सन्देह के आधार ये थे—

(१) शाहजहाँ के अपने दरबारी लेखक ने इस आलीशान इमारत के विषय में कुछ नहीं लिखा।

(२) दूसरे लेखकों ने भी इस विषय में जो कुछ लिखा है, वह परस्पर विरोधी है।

(३) शाहजहाँ इतना वासनामय जीवन व्यतीत करता रहा था, कि उससे यह आशा करनी कि एक बीवी के प्रेम में इतनी आलीशान इमारत बन-

वाई होगी जितनी कि उसने अपने रहने के लिए भी नहीं बनवायी, विस्मय करने की बात है।

(४) मुमताज़ महल का शव उसकी मृत्यु के छः महीने के भीतर बुरहानपुर में कब्र से निकलवाकर मँगवा लिया गया था। परन्तु ताज जैसी इमारत को बनते, कहा जाता है कि बीस वर्ष लगे। उसका शव क्या उतनी देर तक मज़दूरों, महमारों और कारीगरों के पाँवों में रौंदता हुआ पड़ा रहा था अथवा ताज महल कई किस्तों में बना था? इसका लिखा कोई प्रमाण नहीं है।

(५) सबसे बड़ी बात जिससे सन्देह उत्पन्न होता है, वह है इस पर व्यय का उल्लेख। व्यय हुए धन की लिखत-पढ़त तो कहीं है नहीं। भिन्न-भिन्न रकमें लिखी मिलती हैं। चालीस लाख रुपये से लेकर डेढ़ करोड़ रुपये तक व्यय की बात लिखी है।

एक इतिहास के लेखक को (श्री मजूमदार को) इन सन्देहों को दूर करने का यत्न करना चाहिए था। केवल यह लिखना कि बेहूदा बातों को समाचार-पत्र न छापे, इससे समाचार-पत्र पढ़ने वालों को सन्तोष नहीं हो सकता था। मेरे तो सन्देह को पुष्टि ही मिली थी।

इन मजूमदारजी के विषय में यह लिख दिया जाये तो अधिक ठीक होगा कि आप भी वेदों में गो-मांस खाने की बात लिखते हैं। पिछले वर्ष एक आर्य-समाजी विद्वान ने श्री के० एम० मुंशी को एक पत्र लिखा था। इसमें श्री मुंशी के विद्या भवन से छपी 'वैदिक काल की संस्कृति का इतिहास' में छपी बात पर आपत्ति की गई थी और मुंशी साहब को चुनौती दी थी कि वे सिद्ध करें कि ऐसा वेदों में लिखा है। इस पर मुंशीजी ने उनको पत्र लिखा था कि पुस्तक डाक्टर मजूमदार साहब ने लिखी थी। अतः उनकी चुनौती उनको भेज दी गई है। उस विद्वान ने डाक्टर साहब को भी पत्र लिखा और डाक्टर साहब ने उत्तर देने का कष्ट नहीं किया।

यह डाक्टर साहब का ही व्यवहार नहीं है। इनसे पहले स्वामी दयानन्द ने मैक्समुल्लर को यह लिखा था कि वह आकर बतायें कि उन्होंने वेदों के इतने भ्रान्त अर्थ कैसे कर दिये हैं? मैक्समुल्लर ने इसका उत्तर दिया था कि उन्होंने युरोपियन लेखकों को लिखा है दयानन्द महा झूठा व्यक्ति है। उसकी बात किसी को सुननी नहीं चाहिए।

ठीक यही बात डाक्टर मजूमदारजी की प्रतीत होती है। अपने अल्प-ज्ञान को छिपाने के लिए दूसरे को अपशब्द कह कर सन्तोष कर लेना यह युरो-

पियन लेखकों का तथा उनकी परिपाटी में पढ़े हिन्दुस्तानी अन्धानुकरण करने वालों का स्वभाव बन गया है।

यदि तो वे उन संशयों का निवारण नहीं कर सकते थे अथवा नहीं करना चाहते थे, तो किसी दूसरे लेखक को अपशब्द कहने का उनका अधिकार नहीं था। 'ऑर्गनाइज़र' का नियमित पाठक होने से मुझे विस्मय हुआ कि यह डाक्टर हमको मूर्ख समझता है अथवा अपने को विद्वान समझता है। उस जितना विद्वान तो मैं हूं नहीं जो वेदों में गो-मांस भक्षण की बात को मानता। इस कारण निश्चय ही वह हमको मूर्ख मान अपनी विद्वत्ता का प्रकाश हमारे योग्य नहीं समझता।

ओक साहब की पुस्तक का द्वितीय संस्करण अब छपा है और इस बार ओक साहब ने उन लोगों के वक्तव्यों का, जो ताज महल को शाहजहाँ का बना मानते हैं, केवल युक्तियों से झूठा ही नहीं बताया, वरं उसके साथ कुछ ठोस प्रमाण भी उपस्थित किये हैं जिनसे ओक साहब का पक्ष सिद्ध होता है।

इस बार ओक साहब ने दो प्रमाण बहुत ही प्रबल दिये हैं। एक तो यह कि शाहजहाँ के दरबारी अब्दुल हमीद लाहौरी के लिखे 'बादशाह नामा' का हवाला ऐसा है कि उसे झुठलाया नहीं जा सकता।

अब्दुल हमीद लाहौरी के विषय में 'इलियट और डाउसन' ने इस प्रकार लिखा है :—

Badshahnama of Abdul Hamid Lahori is a history of the first twenty years of the reign of Shahjahan······ Abdul Hamid himself says in his preface that the Emperor desired to find an author who could write memoirs of his reign in the style of Abdul Fazal's Akbarnama······ He was recommended to the Emperor for the work, and was called from Patna, where he was living in retirement, to undertake the composition.

इससे यह स्पष्ट है कि अब्दुल हमीद सरकारी इतिहास लेखक था। स्वभाविक रूप में वह सब दूसरे लेखकों से अधिक प्रामाणिक होना चाहिए। यह भी सिद्ध होता हैं कि वह उन दिनों शाहजहाँ के दरबारियों में था, जब कहा जाने वाला मुमताज महल का मकबरा बन रहा था। अतः उसने इस मकबरे के विषय में लिखा भी है।

ओक साहब ने उसके हस्त-लिखित 'बादशाह नामे' के फ़ोटो प्लेट अपनी पुस्तक में छपवाये हैं। लेख फ़ारसी भाषा में है और उसका 'इलियट

और डाउसन' में किया अनुवाद भी साथ छपा है। हम उस बादशाह नामे की वे पंक्तियाँ जिनसे ओक साहब के कथन का समर्थन मिलता है, नीचे दे रहे हैं।

(१) रोज़े-जुम्मा हफ़दहम जमादिल अवाल नाशे मुकद्दस मुसाफ़िरे अक्लीम।

(२) तकद्दस हज़रत मेहद आलिया मुमताज़ुज्जमानी रा केह ब तारीकिये अ अमानत मुदफ़ून।

(३) बूद मसाहूबे बादशाहज़ादे नामदार मुहम्मद शाह शुजा बहादुर ए वजीर खाँ।

(४) व सति उन्निसा खानुम केह ब मिजाज़ शनासी न कारदानी ब दर्जे औलाई पेश।

(५) दासती व वकालत ऐलान मालिके जहान मलिकाये जहानियान रसीदे बूद खानी-ए।

(६) दारुल खलाफ़े अकबरा बाद नामूदन्द बहुक्म शुद केह हर रोज़ दर राह आश-ए-बिसियार।

(७) व दरहिम व दनानीरे बे शुमार ब फुकरा व न्याज़मंदान बीबीहन्द व ज़मीन दार।

(८) निहायत रिफ़ात व निज़ाहत केह जुनूबरूए आन मिस्र जामा अस्तवा।

(९) पेश अज़ ईन मन्ज़िल-ए-राजा मानसिंह बूद वदारी वक्त ब राजा जयसिंह।

(१०) नबीरे ताल्लुक दश्त बरा-ए-मदफ़न ए आन बहिश्त मुवतन बर गज़ीदन्द।

(११) अगरचे राजा जयसिंह हसूले ईन दौलतरा फ़ोज अजोम दानिश्त अन्माब।

(१२) अज़ रूह एहतीयात केह दर जामीये शेवां खुसुसन अमूरे दीनियेह नगज़ीर अस्त।

(१३) दर आवाज़ आन आली मन्ज़िल-ए-खालिस ए शरीफ़ाह बाद मुरम्मत फ़रमूदन्द।

(१४) बाद अज़ रसीदन नाश ब आन शहर ए करमत बाहर पंज दहुन जमादि उस्सानीह।

(१५) साले आयन्देह पैकारे नूरानी-ए-आन आसमानी जोहर ब खाके पाक सपुर्द आमद।

(१६) ब मुतसद्दियान-ए-दारुल खिलाफ़ा ब हुक्म मुअल्ले अजालतुल व क्तुरबत-ए-फ़लक मर्तबते।

(१७) आन जहान इफ़रता अज़ नज़र पोशीदन्द व इमारत-ए-आली शान व गुम्बज़।

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :—

(१) जुम्मे के दिन १५ जमादिल अवाल को उस मुसाफिर का पवित्र शव जो पवित्र राज्य की यात्रा कर गया था ;

(२) हजरत मुमताज्जुल ज़पानी जो अस्थायी रूम में दफनाई गयी थी, लायी गई ;

(३) शहज़ादा मुहम्मद शाह शुजा बहादुर वज़ीर ख़ान साथ थे ;

(४) और साथ थीं सतीयन निस्सा ख़ानम जो मृत के स्वभाव को भली-भाँति जानती थी।

(५) ये रानियों की रानी के विचारों को भली-भाँति जानती थी और अपने काम में बहुत कुशल थी।

(६) (शव) राजधानी अकबराबाद (आगरा) में लाया गया और यह हुक्म हुआ कि प्रतिदिन यात्रा में

(७) अनगिनित रुपये और मुहरें फकीरों में और ज़रूरतमन्दों में बांटे जायें।

(८) और (शव) अति ऊँची (इमारत) हरी-भरी भूमि वाली में नगर के दक्षिण में रखा जाये।

(९) इससे पहले महल (मन्ज़िल) जो राजा मानसिंह का था और अब वर्त्तमान में राजा जयसिंह का था ;

((१०) जो राजा मानसिंह का पोता है। यह स्थान उस रानी के लिये जो अब स्वर्ग में है, दफ़नाने के लिये चुना गया।

(११) यद्यपि राजा जयसिंह अपने पूर्वजों की सम्पत्ति को बहुत मूल्यवान् मानता था।

(१२) परन्तु इस बात का विचार कर और आवश्यक समझ कि शोक का और मज़हबी प्रथाओं का समय (मृत्यु समय) था, वह मान गया ;

(१३) इस श्रेष्ठ मंज़िल (महल) के बदले में राजा जयसिंह को सरकारी जमीन दी गयी।

(१४) शव के उस बड़े नगर (आगरे) में पहुँचने पर १५ जमादुल सानिया को।

(१५) अगले वर्ष वह सम्मानित उस स्वर्गीय रानी का शव सदा के लिये दफ़ना दिया गया ;

(१६) शाही हुक्म से नगर के अधिकारियों द्वारा गगन चुम्बी मकबरे (dome) के नीचे रख दिया गया।

(१७) इतनी ऊँची और शानदार थी यह मन्ज़िल (महल) और इस पर बहुत बड़ा गुम्बज था जो कि आकाश को छूता था। उस पवित्र स्त्री का शव संसार की दृष्टि से ओझल कर दिया गया।

इस लेख को पढ़ने पर यह पता चलता है कि शव बुरहानपुर से आगरा लाया गया और लाते ही यह एक आलीशान बहुत ऊँचे गुम्बज वाले महल में रख दिया गया।

वहाँ लिखा है कि अगले वर्ष, इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि अधिक से अधिक एक वर्ष के भीतर-भीतर शव दफ़ना दिया गया।

अब श्री ओक के वक्तव्य को बेहूदा कहने वालों के लिये कोई स्थान नहीं रहा था। बादशाह नामा तो पहले भी उपलब्ध था, परन्तु हमारे इतिहास लिखने और पढ़ने वाले अपने पूर्वग्रहों से इतने ग्रसित हैं कि उनको जो कुछ उनके उस्तादों ने पढ़ाया था, उससे आगे कुछ देखने का साहस ही नहीं होता।

यदि कोई उनकी भूल की ओर संकेत करे तो उसे अपशब्द कहने लगते हैं। हमारा विचार था कि ओक साहब की पुस्तक के दूसरा संस्करण छपने पर उन्हें कम से कम बेहूदा (absurd) कहने वाला कोई नहीं होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। मेरा विचार ग़लत निकला है।

विद्या भवन की पाक्षिक अंग्रेजी पत्रिका ९ सितम्बर सन् १९६८ के अंक में ओक साहब की पुस्तक के दूसरे संस्करण पर समालोचना छपी है। समालोचना करने वाले हैं श्री डा० ए० के० मजुमदार। सम्भवतः आप डाक्टर आर० सी० मजुमदार के कोई सम्बन्धी हैं। अन्य भले ही कोई सम्बन्ध न हो, परन्तु ओक साहब को बेहूदा कहने का सम्बन्ध तो है। आप भी ओक साहब को निम्न शब्दों में स्मरण करते हैं—

Comments are superfluous and we refrain from doing so for the extracts quoted above will show the worthless basis or the theory that the Taj Mahal was a Hindu palace.

अर्थ हैं :—समालोचना व्यर्थ है और यह हम नहीं कर रहे, क्योंकि जो उद्धरण ऊपर दिया है वह ही प्रकट कर देगा कि यह आधार कितना बेहूदा है कि ताजमहल एक हिन्दू महल था।

वर्तमान युग के पढ़-लिखे विद्वानों का अभिमान देखिये। अभिमान किसी युक्ति पर आधारित होता तब भी बात थी। हमारा इन डाक्टर साहब से यह कहना है कि कोई आदमी वह उद्धरण पढ़कर इस परिणाम पर नहीं पहुंच सकता जिस पर कि ये पहुंचे हैं।

अब तनिक उस उद्धरण को भी पढ़ लें। यह डाक्टर साहब ने ओक साहब की पुस्तक का एक उद्धरण दिया है।

बाबर ने अपने जीवन चरित्र (बाबरनामे) में लिखा है कि उसने एक बड़ी दावत खाई। एक बहुत बड़े भवन में जिस पर एक बहुत बड़ा गुम्बज था और जिसके पत्थर के खम्भे थे।

इस लेख को डाक्टर मजूमदार साहब ने व्यर्थ की बेहूदा बात लिख दी है। यदि इस कटु आलोचना के नीचे एक शब्द और लिख देते तो कदाचित् ठीक बात होती। वे लिख देते कि यह भवन अमुक था और साहब ने व्यर्थ में इसे ताज महल होने में सन्देह किया है। डाक्टर साहब बता नहीं सके कि बाबर ने किस बड़े भवन में दावत खाई थी जिस पर बहुत बड़ा गुम्बज था और जिसके पत्थर के खम्भे थे।

यह तो ठीक है कि यदि केवल यही उद्धरण होता तब तो ओक साहब की खींचातानी समझी जाती, परन्तु बादशाह नामे की साक्षी के उपरान्त उक्त बाबर वाला कथन ओक साहब की बात का समर्थन ही करता है।

अब ओक साहब की पुस्तक का सारांश इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

(१) बादशाह नामा में लिखा है कि मुमताज महल का शव एक वर्ष के भीतर एक बहुत ही ऊँचे गुम्बद के नीचे सदा के लिये दफ़ना दिया गया।

ताज महल का गुम्बद एक वर्ष में बन गया होगा क्या ? यह सम्भव प्रतीत नहीं होता।

(२) बादशाह नामे में लिखा है कि जय सिंह की आलीशान मंज़िल जो कि बहुत ऊँची थी, आकाश को छूती थी, मुमताज का मकबरा बनाने के लिये ली गयी।

(३) शव बुरहानपुर से आते ही जयसिंह के आलीशान मन्ज़िल में रख दिया गया।

(४) जय सिंह अपनी आलीशान बुजुर्गों (पूर्वजों) की मन्जिल को देना नहीं चाहता था, परन्तु शोक का असवर विचार कर वह चुप कर रहा।

(५) जब मुमताज महल का शव सदा के लिये दफ़ना दिया गया, तब कारीगर बुलाये गये जो इमारत में परिवर्तन करने लगे।

(६) बरनियर ने लिखा है कि इन परिवर्तनों में पाड़ बाँधने का व्यय इमारत के व्यय से अधिक आया था।

(७) ताज महल पर सजावट में कमल फूल, पक्षियों की चित्रकारी और दरवाज़ों में पत्थर के बने घण्टों के आकार में लटकन यह प्रकट करते हैं कि इमारत किसी हिन्दू ने हिन्दू कारीगरों से बनवायी है।

(८) 'बादशाह नामा' में इमारत पर चालीस लाख रुपया व्यय हुआ लिखा है। यह रकम ताज महल जैसी इमारत बनवाने के लिये पर्याप्त नहीं मानी जाती। यही कारण है कि इस पर लगे धन की कल्पनायें की गयी हैं। ये कल्पनायें डेढ़ करोड़ रुपये तक गई हैं। ऐसा ही परिणाम निकाला जा सकता है कि चालीस लाख रुपया महल को मकबरे का रूप देने में और कुरान की आयतें लिखवाने में व्यय हो गया होगा।

(९) ताज महल के गुम्बद के ऊपर उलटा कर रखे कमल का कलस है। Mr- Havell ने इस विषय में लिखा है कि उलटाकर रखे कमल का कलस और गुम्बद भी हिन्दू शिल्प कला का नमूना है जो भारत में बहुत ही प्राचीन काल से चला आता है।

(१०) ताज महल के साथ सराय, नकारखाना और दूसरी बाहर की इमारतें यह प्रकट करती हैं कि यह मकबरा नहीं था। कारण यह कि मकबरे में नौकर-चाकरों के रहने के स्थानों का मेल नहीं खाता।

इन सब प्रमाणों के साथ उन लोगों के अनुमान हैं जो ताज महल को शाहजहां का बना कहते हैं। वे सब परस्पर न मिलने से सन्देह ही उत्पन्न करते हैं।

मुझे खेद इस बात का है कि भारत के विश्वविद्यालयों में पढ़े इतिहास के विद्वान किसी भी नये विचार को या तो समझने की योग्यता नहीं रखते और उसका उतर नहीं दे सकते अथवा वे इतने अभिमान से भर गये हैं कि वे किसी भी उनकी बात न मानने वालों पर मज़ाक उड़ाने से संकोच नहीं करते।

रही बात बाबर की दावत और भवन तथा गुम्बद की, साथ ही मुबारिक मन्ज़िल की बात। वे तो सहयोगी प्रमाण हैं, मुख्य नहीं। मुख्य प्रमाण को छोड़ कर सहयोगी प्रमाणों पर खिल्ली उड़ाना मूर्खों का काम है, कमसे कम विद्वानों का नहीं है।

समाचार समीक्षा

○

जम्मू कश्मीर लोक सम्मेलन, शेख और जयप्रकाश :

शेख अब्दुल्ला द्वारा आयोजित सम्मेलन में जयप्रकाशनारायण ने अपने भाषण में कहा कि जम्मू कश्मीर के बहुत पहले तय हो चुके प्रश्न को फिर से विवाद का विषय बना कर और पाकिस्तान को भी उसमें खींच कर एक त्रिपक्षी गोल-मेज वार्त्ता का शेख अब्दुल्ला का सुझाव भारत सरकार को कभी भी मान्य नहीं होगा। जयप्रकाश के इस भाषण पर राजधानी के राजनैतिक और सरकारी क्षेत्रों की पहली प्रतिक्रिया यही है कि जो प्रश्न स्वयं शेख के नेतृत्व में हल किया जा चुका है उसे इतने वर्षों बाद फिर से उभाड़ने का प्रयत्न बहुत गलत है और किसी भी स्थिति में उसे अन्तर्राष्ट्रीय विवाद का रूप देकर पाकिस्तान जैसे आक्रामक देश को भारत के समक्ष बराबर बनाना भारतीय जनता को कभी सहन नहीं होगा।

शेख साहब के बारे में इस सम्मेलन ने स्पष्ट कर दिया है कि उनकी प्रतिष्ठा जिस तीव्रगति से गिरती जा रही है उससे भी अधिक तीव्रगति से उनकी ईमानदारी गायब होती जा रही है सम्मेलन में दिया गया उनका भाषण इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उनका कहना था कि 'कुछ मित्र कहते हैं कि १९६५ के बाद कोई भारतीय सरकार कश्मीर में जनमत संग्रह नहीं करा सकती। पर वे भूल जाते हैं कि हमें इसकी चिन्ता नही है कि भारत क्या चाहता है अथवा किससे प्रसन्न होगा। हमें अपने लिये तथा औरों के लिये शान्ति चाहिये। हम चाहते हैं कि विश्व जाने तथा समझे कि हम क्या चाहते हैं। हम अपने स्वतन्त्रता के अधिकार के लिये कटिबद्ध हैं चाहे हमें अपनी जानें भी क्यों न गंवानीं पड़ें। उन्होंने नारा भी लगवाया और कहलवाया "स्वतन्त्र कश्मीर के लिए करो या मरो।"

इस सम्मेलन के उद्घाटक श्रीजयप्रकाश नारायण शेख के प्रबल समर्थकों में से प्रमुख रहे हैं। इसी कारण कदाचित् वे इस विचार को लेकर शेख के

सम्मेलन का उद्‌घाटन करने के लिये गये होंगे कि शेख को कुछ सद्‌बुद्धि दे सकें। किन्तु शेखने कटुभाषा का प्रयोग कर समझौतेके इस अवसरको खो दिया शेख की यह कल्पना कि, न केवल भारत और पाकिस्तान अपितु अन्य पड़ोसी देश भी कश्मीर घाटी की स्वतन्त्रता की गारंटी देंगे, यथार्थ से सर्वथा परे ही नहीं अपितु उनमें उत्तरदायित्व की भावना का अभाव प्रदर्शित करती है। श्री जयप्रकाश नारायण सितम्बर १९६५ से पूर्व पाकिस्तान के प्रति बड़े उदार थे और उन्होंने जनता के मन पर यह छाप छोड़ रखी थी कि यदि भारत और पाकिस्तान के मध्य कश्मीर विवाद के शान्तिपूर्ण समाधान के लिये कश्मीर में जनमत संग्रह अनिवार्य हो तो वे इसका विरोध नहीं करेंगे। किन्तु इस सम्मेलन में उन्होंने पाकिस्तान में अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य के लोप की प्रबलतम भर्त्सना की। और एक प्रकार से यह भी प्रकट कर दिया कि पाकिस्तान को कश्मीर के मामले में टाँग अड़ाने का कोई अधिकार नहीं।

इस लोक सम्मेलन का प्रभाव एवं महत्व का निर्णायक रूप तो कुछ काल व्यतीत होने पर ही विदित होगा किन्तु अभी यह बात तो स्पष्ट है ही कि कश्मीर की आंतरिक राजनीतिक संधियों पर इसका कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। यह सत्य है कि अभी तक शेख ने अपने मुस्लिम अनुयायियों की साम्प्रदायिक कमजोरियों को उभारने से स्वयं को बचाये रखा है किन्तु वे इस मामले में कब तक निर्लिप्त रह सकते हैं यह विचार करने की बात है।

हय जिन्दगी है कौम की :

जिस समय नेताजी ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अपने पुनीत अभियान का समारम्भ किया, वह भारत के लिए संक्रान्ति का काल था। देश के सभी राष्ट्रीय नेता सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में जेल की चारदीवारी के अन्दर बन्द थे। तब सुभाष बोस ने ५ जुलाई १९४३ को सिंगापुर में सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा—"भारत को स्वतन्त्र करने के लिए आजाद हिन्द फौज का निर्माण हो चुका है। संसार में यह घोषणा करने का यह अद्वितीय सम्मान ईश्वर ने मुझे दिया है।" कुछ ही दिनों बाद अर्थात् २१ अक्टूबर १९४३ को आजाद हिन्द की अस्थाई सरकार की स्थापना के अवसर पर उन्होंने ऐतिहासिक घोषणा की थी: "इतिहास में आज प्रथम बार विदेशों में बसे भारतीयों में भी राजनीतिक चेतना जाग चुकी है और वे एक संगठन में बँध चुके हैं। वे न केवल अपने देशवासियों की ही भाँति सोच और अनुभव कर रहे हैं वरन् उन्हीं के साथ कदम-से-कदम मिलाकर स्वतन्त्रता के पथ पर चल रहे हैं।" आरजी हुकूमत-ए-आजाद हिन्द की स्थापना की घोषणा

पर भारत की वफादारी की शपथ लेते हुए उन्होंने कहा, "ईश्वर के नाम पर मैं, सुभाषचन्द्र बोस, भारत और ३८ करोड़ देश बन्धुओं को मुक्त कर नेके लिए अपनी अन्तिम श्वास तक स्वाधीनता का पवित्र युद्ध जारी रखूंगा। मैं हमेशा भारत का सेवक बना रहूँगा और अपने भाई बन्धु, भगिनियों की भलाई की ओर देखूंगा, यही मेरा सर्वोपरि कर्तव्य होगा। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी उनकी रक्षा के लिए मैं अपने रक्त की अन्तिम बूंद भी देने को तैयार रहूँगा।"

इस वर्ष २१ अक्टूबर को देश भर में सर्वत्र उल्लास के साथ आजाद हिन्द फौज की स्थापना की रजत जयन्ती मनाई गई। आजादी के आरम्भिक १८ वर्षों में, जो कि नेहरू युग के नाम से देशवासियों पर थोपा जा रहा है, नेताजी एवं आजाद हिन्द फौज के विषय में कुछ किया, लिखा अथवा सराहा नहीं गया। जैसा कि हमने सितम्बर मास की समाचार समीक्षा में संकेत किया था कि प्रथम बार लालकिले की प्राचीर से नेहरू की सुपुत्री प्रधानमन्त्री इंदिरा गांधी ने नेताजी को अपने श्रद्धा सुमन समर्पित किये। रजत जयन्ती समारोह में भी उन्होंने नेताजी को भारत माता का महान् सपूत बताते हुए कहा कि वह गांधी युग में जरूर हुए, किन्तु उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए गांधीजी से भिन्न मार्ग ग्रहण किया। उनके कार्यों से देश में जोश की लहर फैली और संसार में देश का नाम चमका। उनका मार्ग वीरता का मार्ग था। वे स्वतन्त्रता को निकट लाने में सहायक हुए। देश में स्वतन्त्रता के संघर्ष को उनके प्रयत्नों से बल मिला। उन्होंने कहा कि हम आजाद हिन्द फौज के सैनिकों की वीरतापूर्ण बलिदानों की सराहना करते हैं। जयहिन्द का नारा हमारी देश की विशाल जनता का एकता का मन्त्र और प्रतीक बन गया है।

२४ अप्रैल १९४५ को आजाद हिन्द फौज के सर्वोच्च सेनापति के रूप में सैनिकों के नाम अपना अन्तिम सन्देश देते हुए नेताजी ने कहा था, "आपके अतुलनीय बलिदान के फलस्वरूप भारत की भावी पीढ़ी, जो लोग गुलामों के रूप में नहीं अपितु स्वतन्त्र पुरुषों के रूप में पैदा होंगे, आपका यशोगान करेंगे और वे संसार के सामने गर्व के साथ यह कहेंगे कि हमारे पूर्वज मणिपुर, असम और बरमा में लड़े और हार गये किन्तु अपनी क्षणिक विफलता से उन्होंने अन्तिम सफलता तथा अभ्युदय का पथ प्रशस्त कर दिया।" निस्सन्देह आजाद हिन्द फौज के वीर सिपाहियों ने मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए सर्वस्व निछावर करने का जो उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत किया उसका भारत के ही नहीं अपितु विश्व के इतिहास में अद्वितीय स्थान रहेगा। इससे

वर्तमान तथा भावी पीढ़ी सतत प्रेरणा प्राप्त कर अपने देश पर आने वाले प्रत्येक प्रकार के संकट का सामना करने के लिए सदैव तत्पर रहेगी।

केन्द्र और केरल

गतांक में हमने हड़ताल समस्या की समीक्षा करते हुए लिखा था कि केरल ने राष्ट्रपति के अध्यादेश की अवहेलना करते हुए हड़ताल का समर्थन कर एक समस्या उत्पन्न कर दी है। वह समस्या विगत मास में स्पष्टतया उभर कर सम्मुख आई है और देश के राजनीतिक दलों का ध्यान भी उस ओर गया। केरल कांग्रेस ने तो केन्द्रीय नेताओं से यहाँ तक अनुरोध किया कि केरल सरकार को बर्खास्त कर दिया जाय। इस विषय में संविधान की धारा ३५५ का उल्लेख किया जा रहा है। भारतीय जनसंघ ने भी केरल की कम्युनिस्ट सरकार द्वारा केन्द्र के विरुद्ध छेड़े गये अभियान की कटु आलोचना की है और वहाँ की राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करने के लिये एक समिति का गठन कर दिया है। केरल के मुख्यमन्त्री नम्बूदिरीपाद ने इस बात का खण्डन किया है कि राज्य सरकार संविधान की अवज्ञा करने पर तुली हुई है।

संविधान की भावनाओं तथा उसके शब्दों का केरल के मुख्यमन्त्री कितना पालन कर रहे हैं, इसकी सबसे बड़ी कसौटी यह है कि केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल का सामना करने के लिये राष्ट्रपति की ओर से जो अध्यादेश जारी किया गया था उसका केरल सरकार ने कितना पालन किया। नम्बूदिरीपाद ने इस विषय में मुख्यमन्त्री के अपने उत्तरदायित्व की ओर से आँखें फ़ेर कर एक राजनीतिक नेता के रूप में कार्य किया। केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों पर अपने दल का प्रभाव बनाये रखने के लिये उन्होंने न केवल केन्द्रीय सरकार के कार्य की तीव्र आलोचना की अपितु स्वयं ऐसे आदेश और निर्देश जारी किये कि केरल में केन्द्रीय सुरक्षा पुलिस के हाथ ही बंध गये। अपने असंवैधानिक कार्य की कालिमा को छिपाने के लिए उन्होंने पिछले दिनों कई वक्तव्य दिये, गृहमन्त्री से पत्र व्यवहार किया। किन्तु इससे किसी का समाधान नहीं हुआ। अब उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि शान्ति तथा व्यवस्था की रक्षा राज्य सरकार के अधिकारान्तर्गत विषय है। यह सत्य होते हुए भी इस तथ्य को नहीं भुलाया जा सकता कि समस्त राष्ट्र में शान्ति तथा व्यवस्था की रक्षा का उत्तरदायित्व तो केन्द्रीय सरकार पर ही है। जब से मार्क्सवादी कम्युनिस्टपार्टी के नेतृत्व में केरल के संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी है तब से केन्द्र विरोधी भावनाओं को ही वहाँ भड़काया गया है। अब तो यह भी सुना जा रहा है कि उनकी पार्टी एक केन्द्र विरोधी आन्दोलन आरम्भ कर रही है।

क्या ऐसे ही नम्बूदिरीपाद लोकतन्त्र और संविधान की रक्षा करेंगे ? प्रश्न है कि यदि केन्द्र में कम्युनिस्ट शासक के रूप में होते और केरल में कांग्रेस का शासन होता (और वह इसी प्रकार का दुष्कृत्य करती जैसा कि नम्बूदिरीपाद सरकार ने किया है) उस स्थिति में केन्द्र की कम्युनिस्ट सरकार का क्या कर्तव्य होता ?

चीन का मुखड़ा

विगत मास में देश के समाचार पत्रों में चीन की आंतरिक हलचलों के अनेक समाचार प्रकाशित हुए हैं। पीकिंग से प्रकाशित होने वाले साम्यवादी दल के सैद्धातिक पत्र 'रेडफ्लैग' ने घोषणा की है राष्ट्रपति ल्यु शाओ-ची के हाथ से सारे अधिकार छीन लिए गए हैं। उसका कहना है कि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति ने चीन के ख्रुश्चेव अर्थात ल्यु शाओ-ची को इतिहास की रद्दी की टोकरी में डाल दिया है। किन्तु इस आंतरिक स्थिति के बावजूद भारत पर उसकी कुदृष्टि में किसी प्रकार भी कमी नहीं हुई। भारत की उत्तरी सीमा पर वह अभी भी किले-बन्दी में लगा हुआ है। चीनी लाल सेना नेफा में निरन्तर अपने सैनिकों को बदल रही है।

अभी हाल में ही पीकिंग रेडियो के एक प्रसारण में उसने भारतीय कम्युनिस्टों को यह कुमन्त्रणा दी है कि वे वर्तमान सरकार के विरुद्ध एक कुटिल मोर्चा बनाये रहें और जमकर माओ के सिद्धान्तों का अंधानुकरण करें। जिस तरह चीन की जनता ने च्यांग काई शेक की सरकार का तख्ता पलट दिया है, उसी प्रकार भारतीय कम्युनिष्ट भी यदि लगे रहे तो वर्तमान सरकार से मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। इसी प्रकार की अनर्गल बातें आए दिन भारतीयों के नाम, चीन रेडियो से प्रसारित होती रहती हैं। इतना ही नहीं, माओ का साहित्य भी भारत में सरे आम बेचा और वितरित किया जाता है। अब तो वह प्रकाशित भी भारत में ही होने लगा है। जैसा कि विगत मास की समाचार समीक्षा में हमने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रयाग स्थित, मुद्रणालय के कृत्यों की आलोचना करते हुए संकेत किया था। अभी हाल में ही एक समाचार प्रकाशित हुआ था कि उधर चीनी सरकार और इधर उसके ऐजेन्ट भारत में राजनीतकि तोड़ फोड़ में पूरी सतर्कता और सक्रियता से संलग्न हैं। किन्तु हमारी सरकार, ऐसा प्रतीत होता है कि अभी तक भी हाथ पर हाथ रखे बैठी है। यहाँ उसकी नाक के नीचे चीन का दूतावास अपना साहित्य विश्वविद्यालय के छात्रों में तथा श्रमिक संगठनों में वितरित कर रहा है। सरकार का इन तत्वों पर कोई अंकुश नहीं है। न वह ऐसे साहित्य के आने, वितरित

शेष पृष्ठ ४० पर

वेद में अग्नि का स्वरूप

○

रामशरण वशिष्ठ

वेद में अग्नि का वर्णन बहुत विचित्र और बड़े विस्तार से है। अग्नि के अनेक रूप वेद में बताये हैं। हम इनका वर्णन संक्षेप में लिख रहे हैं।

अग्नि शब्द "अञ्चु गति पूजनयो:"। 'अग अगि इण गति 'अर्थ में धातु है जिनसे अग्नि बनता है। अग्नि के तीन अर्थ हैं। ज्ञान, गमन और प्राप्ति पूजन करने योग्य है वह अग्नि कहलाता है।

इसी कारण अग्नि ईश्वर का वाचक है। स्वप्रकाश, स्वरूप, सर्वज्ञ और ज्योतिर्मय होने से ईश्वर का अग्नि शब्द द्योतक है। वेद मन्त्रों में जैसे—

(यजु०—३२-१) 'तदेवग्नि' (ऋ०—२-१-३) में 'त्वं अग्नि'। (ऋ० ८-५८-२) में 'एक एव अग्नि:'। (साम०—१८-३१) में 'अग्निर्ज्योति:'। (अथर्व०—१३-४-५) में 'सो अग्नि: स उ सूर्य्य स उ महायम:' इत्यादि।

जैसे अन्धकार रूपी अज्ञान को प्रभु दूर करते हैं ऐसे सूर्य भी संसार में रात्रि के अन्धकार को दूर करता है। इसलिए सूर्य को भी अग्नि कहा है और कई वेद मन्त्रों में अग्नि शब्द सूर्य का बोधक है। (जैसे—ऋ०—४-१-७ और ऋ०—१०-७-३) में सूर्य बनकर संसार को प्रकाश देता है और गतिमान है। अग्नि विद्युत का भी वाचक है। (जैसे ऋ०—३-२६-७ में)।

प्रकाशमान वस्तु होने के कारण ऐसा कहा गया है और अग्नि भौतिक अग्नि का भी वाचक है। (जैसे—ऋ०—७-१-२, ८-४८-६ में)। और यज्ञ की अग्नि का भी वाचक है। जातवेद अग्नि को कहते हैं।

और परमाणु रूप में अग्नि वायु में, जलों में, वृक्षों में, वनस्पतियों में, पृथिवी में व्यापक है। अग्नि के परमाणु पावका अग्नि बनकर अंतरिक्ष में अपना काम करते हैं और मरुत कहलाते हैं। अथर्व अग्नि बन कर संसार में अपना काम करते हैं और बिजली के रूप में अग्नि कई कार्य करता है। वर्षा का जल समुद्रों से भाप बनकर ऊपर जाकर मेघ बनकर विद्युत के योग से चमकता है और गरजता है।

अग्नि को वेद मन्त्र (१४-२-२) में कन्या का रक्षक पति भी कहा है (Spiritual husband)। अग्नि फलों को पकाता है और भोजन को पचाता

है। (अथर्व०—१९-५५-५) अग्नि कृमि आदि का नाश करके आरोग्यता का कारण बनता है।

शरीरों में अग्नि (ताप) न रहे तो मृतक कहते हैं। पृथिवी की अग्नि से कई धातु बनती हैं।

यज्ञ अग्नि देवताओं का हुत कहलाता है। (ऋ०—१-५९, ८-६३-४) हवि देवताओं तक पहुँचाता है। यज्ञ में घी, सामग्री आदि पदार्थ सूक्ष्म बनकर वायु में जाकर वृष्टि होने में लाभदायक होते हैं और कई रोग यज्ञ अग्नि से दूर होते हैं। (ऋ०—१०-५१-७) अग्नि स्तोम यज्ञ में अग्नि की प्रशंसा मंत्र गायन द्वारा की जाती है और (ऋ०—७-४-२ में) जंगलों में वृक्षों को और तृण आदि पौधों को जलाकर भूमि को खेती के लिए साफ करते हैं। रात को शरद ऋतु में अग्नि जलाकर सर्दी दूर करते है। जँगली जानवरों से रक्षा के लिए अग्नि जलाकर रखते हैं। वे आग के पास नहीं जाते। वेद के कई मन्त्रों में अग्नि के तीन रूप, तीन स्थान, तीन कारण बताये गये हैं। (ऋ०—७-५-७) और (ऋ०—१०-४५-६) में।

अग्नि पहले द्यु-लोक से आयी और भृगु ऋषि ने दो अरणियाँ को रगड़ कर जलाई। अर्थवण ऋषि ने कंवल के फूल से अग्नि प्राप्ति की।

अग्नि के स्वरूप का बहुत सुन्दर वर्णन है। जिसमें कविता और वाक् की सौन्दर्यता और भाषा की उत्तमता पाई जाती है। जैसे अग्नि की सात जिह्वा। धूम उसका झण्डा है। अग्नि सात घोड़ों के रथ पर चलता है।

अग्नि के कई लाभ बताये हैं। अग्नि जलाती है, तपाती है, प्रकाश देती है। अग्नि गलाती है। अग्नि से धातु की शुद्धि करते हैं। अग्नि वर्षा करती है। अग्नि शब्द को दूर-दूर तक ले जाती है। अग्नि जल को भाप बनाती है। भूमि की अग्नि बीज को उगाती है। इन सब गुणों के कारण अग्नि के वेद मन्त्रों में कई नाम आते हैं। 'जातवेद अग्नि', 'वैश्वानर अग्नि', 'इक्षोवाह अग्नि,' 'जठराग्नि,' 'आवाहनीय अग्नि,' 'पावक अग्नि,' 'आर्हपत्या अग्नि,' 'दक्षिणा अग्नि,' 'सोम अग्नि,' 'अथर्व अग्नि,' 'काव्य अग्नि'।

काव्य अग्नि' का भयंकर रूप है। वह मृतक शरीर को जलाती है। मनुष्य को चाहिये कि अग्नि के गुणों की जानकारी प्राप्त करे और लाभ उठाये।

पृष्ठ ३८ का शेष

करने और प्रकाशन करने पर रोक लगाने में समर्थ है और न देश में उसके बढ़ने और विकास को रोकने में सक्षम सिद्ध हुई है। —समीक्षक

दशहरा–दिवाली के शुभ अवसर पर

दशहरा दीवाली के शुभ अवसर पर चलाई योजना कुछ सहयोगियों के आग्रह पर चालू है। चार नए पाठकों को पत्रिका एक वर्ष के लिए उपहार में दीजिए। आप चार सम्बन्धिओं, मित्रों व परिचितों के पते लिखिए जिन्हें आप पत्रिका एक वर्ष के लिए उपहार में देना चाहते हैं। इनका शुल्क केवल रु० १५ (पन्द्रह रुपये) आप हमें भेजें और हम उन चार पाठकों को वर्षभर पत्रिका आपकी ओर से भेजते रहेंगे तथा आपको अपनी ओर से—

एक अनुपम उपहार भेजेंगे

१. २५ नवम्बर तक प्राप्त होने वाले फार्म इस योजना में स्वीकार किए जाएँगे। इसके बाद पूर्वोक्त नियमोंपर ही पत्रिका का शुल्क, आपका अथवा आपके मित्रों का स्वीकार किया जायेगा।

२. उपहार में आप श्री गुरुदत्त की कोई भी एक अथवा अधिक अथवा पत्रिका में विज्ञापित प्रकाशनों में से अपने पसन्द की चुनी हुई तीन रुपये मूल्य की पुस्तकें मँगवा सकेंगे। भेजने का व्यय लगभग एक रुपया भी हम देंगे। चार व्यक्तिओं का शुल्क भेजने पर तीन रुपये तथा आठ व्यक्तिओं का शुल्क भेजने पर ६ रुपये मूल्य की पुस्तकें उपहार में आप मँगवा सकते हैं।

३. दिसम्बर १९६८ का अंक विशेषांक के रूप में होगा। इस अंक का मूल्य ५ रुपये मात्र है परन्तु ग्राहकों को शुल्क के अन्तर्गत ही प्राप्त होगा।

४. शुल्क मनीआर्डर द्वारा भेजें; पाठकों के नाम तथा पते स्पष्ट लिखें उपहार में जो पुस्तक आप मंगवाना चाहें, आप उसका नाम लिख भेजें। नाम न आने पर हम अपनी पसन्द की कोई पुस्तक भेज देंगे जो बाद में परिवर्तित नहीं की जा सकेगी।

५. पिछले अंक में ऊपर भूल से लिखा गया था कि पाँच पाठकों का शुल्क १५ रुपये होगा। चार पाठकों का शुल्क १५ रुपये है। उपहार २५ नवम्बर को सबको एक साथ भेजा जायेगा।

नटराज पुस्तकें

नकटी नाथी	श्री माणिकचन्द्र	२.००	टूटा टी सैट	भगवती प्रसाद वाजपेयी	२.००
नलिनी	,,	?.००	दो मार्ग	प्रकाश भारती	२.००
अधूरा स्वप्न	श्री संजय	२.००	मोपला-गोमान्तक	श्री सावरकर	३.००
छोटे बड़े मनुष्य	,,	२.००	धरती है बलिदान की	श्री शान्ताकुमार	१.००
साम्यवाद से संघर्ष	च्यांग काई शेक	२.००	शक्तिपुत्र शिवाजी		१.५०
बदलती करवटें	श्री मनमोहन सगहल	१.००	सत्यकाम सोक्रातेज (प्लेटो के संवाद)		१.५०

पाकेट माला में श्री गुरुदत्त की रचनाएँ

अन्तिम यात्रा	१.००	नयी दृष्टि	३.००
एक और अनेक	३.००	निष्णात	२.००
एक मुँह दो हाथ	३.००	निर्मल	२.००
कामना	२.००	पाणिग्रहण	३.००
खेल और खिलौने	२.००	प्रेरणा	३.००
गुण्ठन	३.००	बहती रेता	३.००
चंचरीक	१.००	भाग्य का सम्बल	२.००
छलना	२.००	मानव	३.००
जमाना बदल गया—१	२.००	मायाजाल	३.००
,, ,, ,, —२	२.००	यह संसार	३.००
,, ,, ,, —३	२.००	यह सब झूठ है	२.००
,, ,, ,, —४	२.००	युद्ध और शान्ति—१	३.००
,, ,, ,, —५	२.००	,, ,, ,, —२	३.००
,, ,, ,, —६	२.००	लालसा	३.००
,, ,, ,, —७	२.००	लोक परलोक	२.००
,, ,, ,, —८	३.००	विडम्बना	३.००
,, ,, ,, —९	३.००	विद्यादान	२.००
जीवन ज्वार	३.००	वीर पूजा	१.००
देश की हत्या	३.००	संस्खलन	२.००
दो भद्र पुरुष	२.००	सम्भवामि युगे युगे—१	२.००
द्रष्टा	२.००	,, ,, —२	२.००
धरती और धन	३.००	साहित्यकार	२.००
धर्म तथा समाजवाद	३.००	सुमति	२.००

आपका पुस्तकालय और हमारा सहयोग

१. हमारी पुस्तकालय योजना के सदस्य बनिये। केवल दो रुपये मनी-आर्डर द्वारा भेजकर आप हमारे सदस्य बन सकते हैं।

२. हमारी नटराज पाकेट बुक्स में से (सूची पृष्ठ २५ पर) आप अपनी पसन्द की १५ रुपये की चुनी हुई पुस्तकें मंगवाइये और हम केवल १३ रुपये में ये पुस्तकें आपको भेजेंगे। डाक व्यय लगभग दो रुपये हम देंगे। इसके साथ ही—

३. एक लोहे की तार का बना हुआ सुन्दर रैक जिसमें आप अपनी पुस्तकें लगा सकते हैं, बिना मूल्य हम अपनी ओर से आपको भेंट में देंगे।

४. प्रति दो मास बाद जब हमारी नयी पुस्तकें प्रकाशित होंगी, हम आपको सूचना भेजेंगे। तथा आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें सात रुपये में आपको भेजी जायंगी। यदि नवीन प्रकाशनों में से कोई पुस्तक आप नहीं लेना चाहेंगे तो आप उसके स्थान पर कोई अन्य उसी मूल्य की पुस्तक मंगवा सकेंगे।

५. बीच की अवधि में कभी भी आप आठ रुपये मूल्य की पुस्तकें केवल सात रुपये में मंगवा सकेंगे।

भारती साहित्य सदन,
३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

शाश्वत संस्कृति परिषद् का एक महत्वपूर्ण प्रकाशन

श्रीमद्भगवद्गीता—एक अध्ययन

मूल्य : १५ रुपये

पृष्ठ संख्या ४२४ (डिमाई) कपड़े की जिल्द

इस पुस्तक के लेखक हैं श्री गुरुदत्त। भगवद्गीता पर अनेक विवेचनाएँ छप चुकी हैं परन्तु इस विवेचना की अपनी विशेषताएँ हैं—

१. यह विवेचना विषयानुसार है।
२. अत्यन्त सरल भाषा में युक्तियुक्त विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।
३. पुस्तक प्रमाण सहित है।
४. गीता के विषय में बहुत सी भ्रमपूर्ण धारणाओं का प्रमाणयुक्त खण्डन कर, इसका शुद्ध स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक छपकर तैयार है।

भारती साहित्य सदन

३०।६० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

३०।६० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे) नई दिल्ली-१
भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं राष्ट्र भारती प्रेस, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/६०, कनॉट सरकस नई दिल्ली से प्रकाशित।